भूदान-गंगा

[पञ्चम खण्ड]

(५ जून '५६ से ३१ अक्तूबर '५६ तक)

वि नो बा

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ प्रकाशन
रा ज घा ट, का शी

निवेदन

पू० विनोबाजी के गत साढ़े पाँच वर्षों के प्रवचनों में से महत्त्वपूर्ण प्रवचन तथा कुछ प्रवचनों के महत्त्वपूर्ण अंश चुनकर यह संकलन तैयार किया गया है। संकलन के काम में पू० विनोबाजी का मार्ग-दर्शन प्राप्त हुआ है। पोचमपल्ली, १८-४-'५१ से भूदान-गंगा की धारा प्रवाहित हुई। देश के विभिन्न भागों में होती हुई यह गंगा सतत बह रही है।

भूदान-गंगा के चार खंड पहले प्रकाशित हो चुके हैं। पहले खंड में पोचमपल्ली से दिल्ली, उत्तरप्रदेश तथा बिहार का कुछ काल यानी सन् ५२ के अंत तक का काल लिया गया है। दूसरे खंड में बिहार के शेष दो वर्षों का यानी सन् '५३ व '५४ का काल लिया गया है। तीसरे खण्ड में बंगाल और उत्कल की पद-यात्रा का काल यानी जनवरी '५५ से सितम्बर '५५ तक का काल लिया गया है। चौथे खंड में उत्कल के बाद की आन्ध्र और तमिलनाड में कांचीपुरम् सम्मेलन तक की यात्रा यानी अक्तूबर '५५ से ४ जून '५६ तक का काल लिया गया है। इस पाँचवें खंड में कांचीपुरम्-सम्मेलन के बाद की, तमिलनाड-यात्रा का ता० ३१-१०-'५६ तक का काल लिया गया है।

संकलन के लिए अधिक-से-अधिक सामग्री प्राप्त करने की चेष्टा की गयी है। फिर भी कुछ अंश अप्राप्य रहा।

भूदान-आरोहण का इतिहास, सर्वोदय-विचार के सभी पहलुओं का दर्शन तथा शंका-समाधान आदि दृष्टिकोण ध्यान में रखकर यह संकलन किया गया है। इसमें कहीं-कहीं पुनरुक्ति भी दिखेगी ; किन्तु रस-हानि

न हो, इस दृष्टि से उसे रखना पड़ा है। संकलन का आकार सीमा से न बढ़े, इसकी ओर भी ध्यान देना पड़ा है। यद्यपि यह संकलन एक दृष्टि से पूर्ण माना जायगा, तथापि उसे परिपूर्ण बनाने के लिए जिज्ञासु पाठकों को कुछ अन्य भूदान-साहित्य का भी अध्ययन करना पड़ेगा। सर्व-सेवा-संघ की ओर से प्रकाशित १. कार्यकर्ता-पाथेय, २. साहित्यिकों से, ३. संपत्ति-दान-यज्ञ, ४. शिक्षण-विचार, ५. ग्राम-दान पुस्तकों और सस्ता-साहित्य-मंडल की ओर से प्रकाशित १. सर्वोदय का घोषणा-पत्र, २. सर्वोदय के सेवकों से जैसी पुस्तिकाओं को भूदान-गंगा का परिशिष्ट माना जा सकता है।

संकलन के कार्य में यद्यपि पू० विनोबा जी का सतत मार्ग-दर्शन प्राप्त हुआ है, फिर भी विचार-समुद्र से मौक्तिक चुनने का काम जिसे करना पड़ा, वह इस कार्य के लिए सर्वथा अयोग्य थी। त्रुटियों के लिए क्षमा याचना।

—निर्मला देशपांडे

तमिलनाड

[५ जून '५६ से ३१ अक्तूबर '५६ तक]

भूदान-गंगा

(पञ्चम खण्ड)

ग्राम-संकल्प के आधार पर चतुर्विध कार्य

: १ :

[खादी-ग्रामोद्योग-संघ, तमिलनाड् के कार्यकर्ताओं के बीच दिया हुआ प्रवचन ।]

सर्वोदय-विचार व्यवहार्य

आज तक हमारा खादी-ग्रामोद्योग का जो काम हुआ, वह दूसरे ढंग का था । उसमें हमारा संबंध सिर्फ उन लोगों से आता था, जो मजदूरी के लिए कताई करना चाहते थे । किन्तु हमें तो सब गाँववालों के सामने अपनी बातें रखनी चाहिए । हमें ग्राम-संकल्प की ओर ध्यान देना चाहिए । जैसे कोई व्यक्ति अपने लिए संकल्प करता है, तो अपने आसपास अपना विचार फैलाता है; इसी तरह किसी एक गाँव में ग्राम-संकल्प हो जाय, तो आसपास के गाँवों में उस विचार का प्रचार होगा । अब तक हमने जितना खादी-कार्य किया, वह ग्राम-संकल्प तक नहीं पहुँचा । हमने पवनार के नजदीक सुरगाँव में खादी का काम शुरू किया था । वहाँ की जनसंख्या एक हजार थी, जिसमें ३-३॥ सौ लोग खादी पहनने लगे । हम कोई भी ऐसा नमूना नहीं बता सके कि पूरा-का-पूरा गाँव खादीधारी बना हो । लेकिन यह भू-दान-आन्दोलन शुरू होने पर हमें सूझा कि देश का मुख्य प्रश्न भूमि-समस्या हल करें, तो लोगों का खद्दर पर विश्वास बढ़ेगा और फिर ग्राम-संकल्प भी हो सकेगा । सर्वोदय-विचार को सभी अच्छा समझते हैं, पर कहते हैं कि वह व्यवहार्य नहीं, आज के लिए काम का नहीं है । इससे वह आगे न बढ़ सकेगा । वह तभी आगे बढ़ेगा, जब लोग उसे न सिर्फ अच्छा, बल्कि आज के लिए काम का भी विचार समझेंगे ।

ग्राम-संकल्प से यंत्र-बहिष्कार

इसीलिए भूदान-यज्ञ शुरू हुआ, तभी से हम सोचते थे कि यहीं-नहीं

ग्रामदान होना चाहिए। पहले हम थोड़ी-थोड़ी जमीन माँगते थे, फिर छठा हिस्सा माँगना शुरू किया और उसके बाद ग्रामदान की बात चलायी। आज पाँच साल बाद हमें एक हजार पूरे गाँव मिले हैं। हमने इतनी आशा नहीं रखी थी। जिन्होंने ग्रामदान दिया, उन्होंने ग्राम-संकल्प किया है और जहाँ ग्राम-संकल्प होता है, वहाँ उसके पीछे ग्राम-राज्य, ग्रामोदय की सारी बातें आ सकती हैं। हमने सोचा कि अगर भूदान के जरिये ग्राम-संकल्प हो सकता है, तो अब खादी के जरिये भी हो सकेगा। इसका प्रयोग करना है। जहाँ ग्रामदान मिला, वहाँ हमने चरखा, नयी तालीम आदि का काम शुरू करने का सोचा है और कुछ शुरू हुआ भी है। चाहे भूदान के जरिये हो, चाहे खद्दर के, ग्राम-संकल्प होना चाहिए। बिना ग्राम-संकल्प के हमारा काम आगे न बढ़ेगा। जब गाँववाले संकल्प करेंगे कि हम अपने गाँव में खादी पैदा कर उसीका इस्तेमाल करेंगे, गाँव में बाहर का कपड़ा न आने देंगे, तभी काम चलेगा।

इस प्रकार का ग्राम-संकल्प होने के बाद तत्काल एक काम करना होगा और वह है, गाँव की सामूहिक दूकान! गाँव की सारी खरीद-बिक्री उसी दूकान के जरिये चलेगी। मान लीजिये कि उस दूकान के जरिये गाँव में सालभर में एक हजार रुपये का तेल बिका, जो बाहर से खरीदा गया था, तो दूकानवाला गाँववालों की सभा बुलाकर कहेगा कि अपने गाँव में एक हजार रुपये के तेल की आवश्यकता है, तो इतना तेल हम गाँव में ही बनायें। फिर गाँव-सभा अगले साल उसे गाँव में ही पेरने की योजना करेगी। गाँव की आवश्यकता की और भी बहुत-सी चीजें गाँव में ही बनेंगी। इस तरह गाँव के लोग गाँव की ही चीजें इस्तेमाल करने का निश्चय करेंगे, तो यंत्र-बहिष्कार अनायास सिद्ध होगा।

तमिलनाड में नया कार्य

गाँव के लोग गाँव की ही चीजें इस्तेमाल करें, यह बात दो प्रकार से हो सकती है: (१) सरकार कानून द्वारा बाहर की चीजें गाँव में आने से रोके और गाँव की चीजों को 'प्रोटेक्शन' दे या (२) गाँववाले स्वयं निश्चय कर संकल्प करें कि हम बाहर की चीजें न लेंगे। लेकिन सरकार इस तरह करेगी, ऐसा कोई

लक्षण आज दिखाई नहीं देता। लेकिन हम तो जनशक्ति बढ़ाना चाहते हैं। इसलिए हम ग्राम-संकल्प पर ही ज़ोर देंगे। हमने तमिलनाड़ में भूदान के साथ खादी वगैरह दूसरी चीजें जोड़ने का जो तय किया, वह ग्राम-संकल्प और ग्राम-पूर्ति के लिए है। हमें यह विचार तमिलनाड़ में इसीलिए सूझा कि यहाँ सिर्फ खादी-उत्पत्ति ही नहीं, बल्कि कुछ ग्रामोदय का भी काम चलता है। इसलिए हमें लगा कि जिस तरह ग्रामदान की फच्चर ठोंककर ग्राम-संकल्प हो सकता है, उसी तरह खादी की फच्चर ठोंककर ग्राम-संकल्प भी हो सकेगा। हम तो यह चाहते हैं कि जिस तरह कुछ गाँववालों ने संकल्प किया कि चाहे बाहर की दुनिया में जमीन की मालकियत हो, फिर भी हम अपने गाँव में उसे मिटा देंगे, उसी तरह वे यह भी संकल्प करें कि चाहे बाहर की दुनिया में कुछ भी चले, हमारे गाँव में खादी ही चलेगी, ग्रामोद्योग ही चलेंगे, नयी तालीम ही चलेगी। इस तरह के संकल्प के बिना काम न होगा और अभी तक बिना ग्राम-दान के ग्राम-संकल्प भी नहीं हुआ है।

भूदान के साथ खादी, ग्रामोद्योग और नयी तालीम

खादी के जरिये ग्राम-संकल्प हो सकेगा, यह सोचकर हमने भूदान के साथ दो-तीन चीजें जोड़ने का तय किया है। जहाँ खादी, ग्रामोद्योग आये, वहाँ नयी तालीम तो मजे से आती है। तीन साल पहले सर्व-सेवा-संघ में प्रस्ताव आया था कि भूदान के साथ खादी, ग्रामोद्योग भी जोड़े जायँ। उस वक्त किसीने नयी तालीम की बात भी उठायी थी। लेकिन उस वक्त भूदान के साथ और कोई काम जोड़ने की हमारी इच्छा नहीं थी, क्योंकि मैं खद्दर, ग्रामोद्योग और नयी तालीम का काम कर चुका था। मैंने अनुभव से देखा कि भूदान के जरिये ही यह काम होगा, इसलिए एकाग्रता से भूदान के काम में लग गया। लेकिन जब भूदान को कुछ यश मिला और मित्रों का आग्रह था, इसलिए मैंने खादी, ग्रामोद्योग जोड़ने का प्रस्ताव मान लिया। फिर भी नयी तालीमवाला प्रस्ताव मैंने कबूल नहीं किया, क्योंकि केवल प्रस्ताव करने से काम नहीं होता। चीज बनती है, तभी काम होता है। इसीलिए मैं चाहता हूँ कि सब लोग एकाग्रता से इस

काम में लगें। लेकिन अब तमिलनाड में मैंने भू-दान के साथ खादी, ग्रामोद्योग और नयी तालीम, तीनों चीजें जोड़ने का सोचा है।

जातिभेद-निरसन

इनके साथ मैं एक और चौथी भी चीज जोड़ना चाहता हूँ और वह है, जातिभेदों का निरसन। उसकी बहुत जरूरी है और कम-से-कम तमिलनाड में तो बहुत ही जरूरी है। मैं जानता हूँ कि उसके कारण काफी लोगों के मन में आज हमारे लिए जो अनुकूलता है, वह न रहेगी। इसका थोड़ा विरोध भी शुरू हुआ है। हमारे पास एक पत्र भी आया है कि आप भू-दान प्राप्त करने में जगह-जगह शास्त्रों का उपयोग करते थे, पर जातिभेद-निरसन के कार्य में उनका क्या उपयोग होगा? मैं जानता हूँ कि यहाँ पहले से ही कुछ सनातनी थे और आज भी हैं। फिर भी मानता हूँ कि जातिभेद-निरसन का कार्य अपनाकर उतने विरोध का जिम्मा उठाना होगा। मालकियत मिटाने और जातिभेद-निरसन के काम को हम उठाते हैं, तो यहाँ कोई राजनैतिक पार्टी ऐसी नहीं रहती, जो इसमें सहकार्य किये बिना रहे। क्योंकि उनके पास इसके सिवा दूसरा कोई बेहतर कार्यक्रम नहीं है। इसलिए सबको मन से इस कार्यक्रम को मानना होगा; फिर चाहे उनकी आसक्ति चुनाव के साथ जुड़ी हो, इसलिए वे इसमें ज्यादा समय न दे सकें। आरम्भ में सनातनियों का कुछ विरोध रहेगा, पर मुझे उम्मीद है कि वह भी धीरे-धीरे कम होता जायगा, क्योंकि उन्हें कबूल करना पड़ेगा कि यह शख्स शास्त्रों के लिए प्रेम रखता है और इसे शास्त्रों का कुछ ज्ञान भी है। फिर भी ऐसी बात करता है, तो सबके कल्याण के लिए ही करता है। मैंने इसका काशी में अनुभव किया। काशी तो सनातनियों का बड़ा गढ़ माना जाता है। वहाँ के विद्वानों ने अपनी एक बैठक में हमें बुलाया था। हमने अपने विचार उनके सामने रखे, तो बहुत-से उन्हें मान्य हुए।

वेदान्त की बुनियाद

इन चार चीजों के सिवा एक भाई ने गोरक्षण की बात भी जोडने के लिए कहा। लेकिन मैंने कहा कि उसका स्वतंत्र नाम लेने की जरूरत नहीं है।

जहाँ ग्रामदान होता है, वहाँ गोरक्षण की योजना होती ही है। इन चार बातों में बाकी की सब बातों का समावेश हो ही जाता है। लेकिन हमें ध्यान में रखना चाहिए कि इन चारों चीजों का आधार है सर्वोदय-तत्त्वज्ञान, जिसका मूलभूत विचार है कि 'आत्मा में सब भूत हैं और सब भूतों में आत्मा है।' यही वेदांत है और सब धर्मों के लोगों ने भी यही कहा है। इसीलिए हम चाहते हैं कि हमारे कार्यकर्ता इस मूलभूत विचार का अध्ययन करें। हम 'गीता-प्रवचन' का प्रचार इसीलिए करते हैं कि बुनियादी विचार सबके सामने आयें, जिसके आधार पर हम यह चार मीनारवाली इमारत खड़ी करना चाहते हैं।

समनूर (चिंगलपेट)
१०-६-'५६

अंबर का मकसद ग्राम-स्वावलंबन : २ :

[अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ के तमिलनाड-केरल संचालक-मंडल के सवाल के जवाब में पू० विनोबाजी ने दिया हुआ उत्तर।]

अंबर चरखे के बारे में बहुत चर्चा हुई है। सर्व-सेवा-संघ में जो चर्चा हुई, उसका सार यही निकला कि यद्यपि कुछ मतभेद थे, अंबर चरखे को मान्य किया जाय और उसके सूत को और कपड़े को राष्ट्र खादी के तौर पर कबूल करे। सरकार उसे मान्यता देना चाहती है। वह मान्यता किस हद तक दी जाय, मिल के स्पिण्डिल पर रोक लगायी जाय या न लगायी जाय, यह सारी चर्चा सरकार में चल रही है। उसने एक समिति नियुक्त की थी। उसकी रिपोर्ट पेश होगी और फिर सरकार तय करेगी कि उसे कहाँ तक उत्तेजन दिया जाय। वैसे अभी पं० नेहरू ने जाहिर किया था कि मिल के स्पिण्डिल पर रोक लगाने की बात न करनी चाहिए। वह पद्धति ही गलत है। अंबर चरखे को जहाँ तक बढ़ावा दिया जा सकता है, देने को वे राजी हैं। हम लोगों में उसके लिए कुछ असंतोष भी दीखता है कि सरकार अपनी 'पालिसी' तय नहीं कर रही है। उधर,

सरकार शायद इसे बढ़ावा दे, तो खतरा पैदा होगा, यह सोचकर पूँजीवादी चिल्लाने भी लगे हैं। लेकिन इन सबको हम बहुत ज्यादा महत्त्व नहीं देते। पूँजीवादियों का चिल्लाना अपेक्षित ही है। और सरकार सावधानी के साथ या यों भी कह सकते हैं कि हिचकिचाहट के साथ आगे बढ़ेगी। यह भी अपेक्षा के बाहर नहीं है।

आनुषंगिक लाभ उठाने में विरोध नहीं

मैं यही समझा हूँ कि पहले हमारा चरखा जितना पैदा करता था, अंबर चरखा उससे तीन गुना या चार गुना अधिक पैदा करेगा। हम तो पुराने चरखे के ही आधार से गाँवों को स्वावलंबी बनाने की कोशिश करते थे। उसमें हमें पूरा यश नहीं मिला, कुछ गाँव, एक तिहाई या आधे खादीधारी बने। अब हमें सोचना चाहिए कि उससे तीन या चार गुना अधिक पैदा करनेवाला चरखा हमें मिला है, तो उसके आधार से हम गाँव को स्वावलंबी बना सकते हैं या नहीं। सरकार चाहे जो करे, पर हम इसकी ओर इसी दृष्टि से देखते हैं कि इस चरखे के आधार से हम कितना ग्रामोदय फैला सकते हैं। इस चरखे के आधार पर आठ घंटे के काम की कितनी रोजी दी जायगी, आदि हिसाब किया जाता है। जिन्हें कोई रोजगार नहीं है, ऐसे कुछ लोग इसके जरिये रोजी हासिल कर लेते हैं, तो उससे हमारा कोई विरोध नहीं। किंतु हमारी यह दृष्टि नहीं है। हमारा उद्देश्य यही है कि इस चरखे के आधार पर गाँवों को स्वावलंबी बनाया जाय।

'कम्युनिटी प्रोजेक्ट' में प्रयोग किया जाय

हमारे लोग इसके जरिये खादी उत्पन्न करें और बेचने के झमेले में पड़ें, यह मैं नहीं चाहूँगा। सरकार वैसा करे, तो उसे रोकने की भी हमारी इच्छा नहीं है। किंतु सरकार अगर हमसे सलाह पूछेगी, तो हम कहेंगे कि कम्युनिटी प्रोजेक्ट में उसका प्रयोग करो और प्रोजेक्ट्स के क्षेत्र के लोग खादी पहनें। कम्युनिटी प्रोजेक्ट में यह चीज दाखिल किये बिना और उसका याने स्वावलंबन का उसूल मान्य किये बिना सरकार इसे चलायेगी, तो कुछ दिन चला लेगी, लेकिन उसके बाद काम रुक जायगा। लेकिन सरकार किस तरह सोचेगी, यह हम सरकार पर ही

सौंपते हैं। फिलहाल वह ज्यादा नहीं सोचेगी, क्योंकि उसके सामने नये प्रांत बनाने की, चुनाव आदि की समस्याएँ हैं। इसलिए उसकी द्वितीय पंचवार्षिक योजना जोरों के साथ शुरू होने में भी कुछ समय लगेगा। इस हालत में अपना चरखा धीरे से आगे बढ़ेगा, ऐसा मैं समझता हूँ।

किंतु आपसे मेरा यही कहना है कि सरकार की कोई भी मदद, जो हमें पंगु करे, न लेते हुए हम उसे चलायें, तो कुछ नतीजे निकलेंगे, जिसका सरकार पर भी असर होगा। सरकार पर दबाव लाने का भी यही सच्चा और अच्छा रास्ता है।

कावानुरु (दण्डनूर)
११-९-'५६

करुणा से बढ़कर अद्वैत : ३ :

हमारा विश्वास है कि भगवान् ने जिनके हृदय में करुणा रखी है, वे ही इस काम को उठा लेंगे। ईश्वर ने हरएक के हृदय में कुछ-न-कुछ करुणा रखी ही है। दूसरे का दुःख देखकर मानव दुःखी हुए बिना नहीं रह सकता। लेकिन चित्त दुःखी होने पर भी मदद के वास्ते दौड़ पड़ने के निमित्त कुछ पुरुषार्थ की जरूरत होती है। मानव दुःखियों के लिए केवल सहानुभूति रखकर अपना समाधान कर लेता है। बहुत हुआ, तो ईश्वर का स्मरण कर लेता है कि ईश्वर उन्हें मदद करे। किंतु यह नहीं सोचता कि परमेश्वर ने हमें ताकत दी है, तो हम दुःखियों की मदद के लिए दौड़ जायँ। इसके लिए साधारण दया काम नहीं देती, करुणा की जरूरत होती है। करुणा में ताकत होती है, वह मनुष्य को खामोश नहीं बैठने देती। कारुणिक मनुष्य उठ खड़ा होता है और दुःखियों की मदद में अपनी ताकत लगा देता है। जिस तरह समुद्र में अपार जल है, उसी तरह सत्पुरुषों के हृदय में भी परमेश्वर ने अपार करुणा रखी है। इसीलिए वे दुनिया की सेवा के लिए निकल पड़ते हैं।

ऐसे कई सत्पुरुष हिंदुस्तानभर में घूमे और उन्होंने करुणा का विचार समझाया है। शंकराचार्य ने 'करुणा' शब्द से भी बढ़कर एक शब्द निकाला। किसी दुःखी का दुःख देख मदद के लिए जाना 'करुणा' है। शंकराचार्य ने कहा : 'अरे, तुम और हम कौन हैं ? दुनिया में हम-ही-हम तो हैं। अद्वैत है।' इसलिए जैसे मनुष्य खुद को मदद करता है, वैसे ही दूसरों के लिए करेगा। यह समझकर नहीं कि मैं परोपकार कर रहा हूँ, बल्कि यह समझकर कि मैं अपने-आप पर ही उपकार कर रहा हूँ। पाँव में काँटा घुस जाय और दर्द होता हो, तो चट हाथ उसकी मदद में पहुँचता और काँटा निकाल देता है। क्या इसमें हाथ ने कोई परोपकार किया ? हाथ भी मेरा हिस्सा है और पाँव भी। इस तरह शंकराचार्य ने समझाया कि 'भाइयो, तुम सब मिलकर एक ही हो, दूसरी कोई चीज है ही नहीं!' हम इस आंदोलन द्वारा इसी 'अद्वैत' का प्रचार कर रहे हैं।

तिरुपुलिवनम् (चिंगलपेट)
१४-६-'५६

प्रेम और श्रम की प्रस्थापना : ४ :

हिन्दुस्तान सारी दुनिया का एक रूप है। दुनियाभर जितने भेद मौजूद हैं, उतने सब यहाँ हैं। हिन्दुस्तान का एक टुकड़ा लिया जाय, तो उसमें भी ये सारे मिलेंगे। यहाँ कुछ लोग 'द्रविड-प्रदेश' की बात करते हैं, पर उस प्रदेश में भी सब प्रकार के भेद हैं। उसमें कम-से-कम चार भाषा और जंगल के लोगों की बोलियाँ हैं। दुनिया में जितने धर्म हैं, वे सब-के-सब यहाँ हैं। जातिभेद भी भारत के दूसरे किसी हिस्से की तरह यहाँ भी हैं। दुनिया में जितने राजनैतिक पक्षभेद हो सकते हैं, वे सब-के-सब यहाँ मौजूद हैं। जिस तरह मनभर दूध का सबका सब सार द्रव्य प्यालीभर दूध में होता है, उसी तरह दुनिया की और हमारी हालत है।

सब झगड़ों का मूल संघर्ष और पैसा

आप देखते हैं कि जैसे झगड़े द्रविड़ प्रदेश या हिंदुस्तान में हैं, वैसे ही कुल दुनिया में हैं। लेकिन इन सबका मूलरूप एक ही है। मनुष्य ने 'श्रम' का स्थान 'पैसे' को और 'प्रेम' का स्थान 'संघर्ष' को दिया है। आज पैसा और संघर्ष, दोनों बातें दुनिया को सता रही हैं। इन दिनों कुछ लोगों ने यह माना है कि प्रेमतत्त्व से उत्कर्ष नहीं होता, बल्कि संघर्ष से, 'काम्पीटिशन' (स्पर्धा) से होता है। फिर श्रम टालने की कोशिश की जाती और लोगों के दिलों पर पैसा कमाने की धुन सवार हो जाती है।

हम एक-दूसरे की चिंता करें

सारांश, संघर्ष और पैसा, ये दो दोष सब झगड़ों के मूल में हैं, फिर उसे कोई भी नाम दिया जाय। कहीं उसे 'हिन्दू-विरुद्ध-मुसलमान' का नाम दिया जाता है, तो कहीं 'हिंदुस्तान-विरुद्ध-पाकिस्तान' का। अभी आप देख रहे हैं कि पाकिस्तान में डाक्टर खान साहब और अब्दुल गफ्फार खान के बीच झगड़ा पैदा हुआ है। गफ्फार खान कहते हैं कि 'पठानों का भी अस्तित्व मानना चाहिए', तो दूसरा पक्ष कहता है, 'ये सारे प्रांत-भेद मिथ्या हैं, कुल सब एक समुद्र बनना चाहिए।' इस तरह वहाँ इसे 'पठानिस्तान-विरुद्ध-दूसरा पक्ष' का रूप आया है। कहीं इसे 'ब्राह्मण-विरुद्ध-ब्राह्मणेतर' का रूप आता है, कहीं 'व्यापारी-विरुद्ध-ग्राहक-वर्ग', कहीं 'फैक्टरी के मालिक-विरुद्ध-मजदूर', कहीं 'साम्यवादी-विरुद्ध-पूँजीवादी', तो कहीं 'अरब-विरुद्ध-इजराइल' और कहीं 'तमिल-विरुद्ध-सिंहली' का सवाल पेश होता है। इसके पचासों रूप दीखते हैं, पर मूलस्वरूप एक ही है। जिस तरह परमेश्वर अनेक रूप लेता है, उसी तरह राक्षस भी कामरूपी (अनेकरूपी) होता है।

अगर इन सब झगड़ों को खतम करना हो, तो हरएक मनुष्य को शरीर-श्रम से अन्न-उत्पत्ति के काम में अपना योग देना चाहिए। जिसे भूख लगती है, उसे भूख मिटाने के लिए शरीर-परिश्रम का व्रत लेना और दूसरों को जिलाकर जीना चाहिए, दूसरों की सेवा में अपना जीवन समर्पण करना चाहिए। हमें

जन्म से ही समाज की ओर से बहुत सेवा मिल चुकी है, यह सोचकर समाज-सेवा-परायण बनना चाहिए। समाज के साथ या समाज के दूसरे व्यक्तियों के साथ स्पर्धा, होड़ या संघर्ष में नहीं पड़ना चाहिए। आज ही हमने 'कुरल' में पढ़ा कि 'जो मनुष्य सारी दुनिया की सेवा करता है, जो सबके प्राणों की रक्षा करता है, उसे अपने प्राण के लिए डरने का मौका नहीं आता।' तुलसीदासजी ने यही बात दूसरे शब्दों में कही है :

'परहित बस जिनके मन माहीं। तिन कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥'

जिनके मन में परहित बसा हो, उन्हें दुनिया में किसी चीज की कमी नहीं रहेगी।

'हरएक को दूसरे की चिंता करनी चाहिए', यह न्याय जैसे व्यक्ति को लागू होता है, वैसे ही जाति, समाज और देश पर भी लागू होता है। ब्राह्मणों को ब्राह्मणेतरों की चिंता होनी चाहिए और ब्राह्मणेतरों को ब्राह्मणों की। मनुष्य को दूसरे प्राणियों की चिंता होनी चाहिए। इस गाँववालों को उस गाँववालों की, इस प्रांतवाले को दूसरे प्रांतवालों की और इस देश को पडोसी देश की चिंता होनी चाहिए। लेकिन आज हम देखते हैं कि भाषा के अनुसार प्रांत-रचना करने का विचार शुरू हुआ, तो लोगों ने एक-एक जगह के लिए आग्रह रखा। एक प्रांत के कुल-के-कुल लोग कहने लगे कि फलाना स्थान हमारे प्रांत में आना चाहिए, तो दूसरे प्रांत के कुल-के-कुल लोग उसके खिलाफ कहने लगे। यही बात देशों के बीच चल रही है। एक देश के कुल लोग एक बाजू होकर किसी स्थान पर अपना हक बताते हैं, तो दूसरे देश के कुल लोग दूसरी बाजू होकर उस पर अपना हक बताते हैं। इसका अर्थ यही है कि 'हमने प्रेम का स्थान संघर्ष को दिया है।'

काम-वासना बनाम प्रेम

बहुत-सी बातों में बारीकी से सोचना पड़ता है। अगर मनुष्य-जाति खूब संतान उत्पन्न करने में लग जायगी, तो उसका दूसरे जानवरों के साथ झगड़ा शुरू हो जायगा। मान लीजिये, आज हिंदुस्तान की जनसंख्या ३६ करोड़ है और उसके बदले ३६० करोड़ हो जाय, तो वह गायों को खाये बगैर रह न सकेगा।

हिंदू-धर्मी भी कहेगा कि गाय हमारी दुश्मन है। लेकिन आज तो हम खाने के लिए भी उस पशु को जिंदा नहीं रख पायेंगे। कारण हम उसे खाना चाहें, तो पहले उसे घास खिलानी पड़ेगी, पर हम उसे घास का एक तिनका भी न दे सकेंगे। अगर हम सारी जमीन का उपयोग मनुष्य के अन्न के लिए करेंगे, तो फिर उस पशु को मिटाना ही तो होगा। किसी प्राणी को खाना हो, तो भी उसके साथ सहयोग करना पड़ता है। इसलिए उस हालत में हिन्दुस्तान में गाय भी न रहेगी।

काम-वासना प्रेम के विरुद्ध होती है। वह अपना ही सुख देखती है, तो प्रेम दूसरे का। इसलिए यद्यपि आज हिंदुस्तान में गाय और मानव का सहयोग है, फिर भी जनसंख्या बेशुमार बढ़ जाने पर मनुष्य का न सिर्फ गाय के ही साथ, बल्कि मनुष्य के साथ भी झगड़ा होगा। लड़ाइयों में मनुष्य जरूर मारे जायँगे, लेकिन उस वक्त सिर्फ उन्हें मारने भर से काम न चलेगा, उन्हें खाना भी पड़ेगा। लड़ाई चलाने के लिए जरूरी चीज अन्न की कमी रहने पर मनुष्य सोचेगा कि हम मनुष्यों को ही क्यों न खायें? लड़ाई में कई बार ऐसी नौबत आती है कि सिपाहियों को खाना नहीं मिलता। अभी तक हमने मनुष्यों को खाना शुरू नहीं किया है, किंतु काम-वासना से आहत मनुष्य अपनी संख्या बढ़ाता जायगा, तो वह सामनेवाले को न सिर्फ मारेगा, बल्कि खा भी लेगा।

प्रेम का अनुगामी

मैंने जान-बूझकर आपके सामने यह बहुत भयंकर चित्र रखा। आपको सोचना चाहिए, ये सारे बम वगैरह किसलिए बनाये जाते हैं? जब इनका उपयोग होगा, तो क्या कोई भेद किया जायगा? एक देश का मनुष्य दूसरे देश पर बम डालता है, तो उसका किससे द्वेष है? अगर मनुष्यों से है, तो भी उसमें घोड़े, बैल, गायें, सब मारे जायँगे, दवाखाने, घर, पुस्तकालय, स्कूल, सब तोड़े जायँगे। बड़े परिश्रम से दुनियाभर से एक-एक पुस्तक लाकर पुस्तकालय बनाया जाता है और जब बम डालते हैं, तो सारे पुस्तकालय एक क्षण में खतम हो जाते हैं। क्या इन आक्रामकों का पुस्तकालयों से कोई द्वेष होता

किसान पैसा चाहता है, क्योंकि उसे कई आवश्यक चीजें खरीदनी होती हैं। और व्यापारी का जीवन तो पैसे पर ही खड़ा है, क्योंकि वह खुद उत्पादन नहीं करता। क्लर्क वगैरह बीच के लोग पैसे के ही पीछे लगते हैं और सरकार भी डालर-डालर करती है। इस तरह सर्वत्र पैसे की महिमा है। मद्रास के किसान को पैसा चाहिए, क्योंकि वह पंजाब का गेहूँ खरीदना चाहता है। हिंदुस्तान के मनुष्य का अपने देश में हासिल होनेवाले भोगों से समाधान नहीं होता, वह यहीं बैठे-बैठे सारी दुनिया के भोग भोगना चाहता है। वह कहता है कि हिंदुस्तान की चाय फीकी मालूम होती है, चीन की चाय चाहिए, दुनिया की सबसे बढ़िया चाय मुझे चाहिए। कहता है कि सारी दुनिया एक है, तो फिर यह संकुचित वृत्ति क्यों हो कि हम एक ही जगह की चीजें खायेंगे? हम दुनिया के नागरिक हैं, इसलिए दुनियाभर के भोग भोगेंगे। इस तरह ये लोग भोग भोगने में विश्वव्यापक हो गये हैं। इसलिए उन्हें पैसा चाहिए और इसीलिए वे स्पर्धा को मानते हैं।

प्रेम-दारिद्र्य मिटे

अतः आपके तमिलनाड़ में झगड़े चल रहे हैं, इससे दुःखी होने का कोई कारण नहीं। इस तरह के झगड़े तो दुनियाभर चलते हैं। इन दिनों २-४ बड़े मनुष्यों के नाम से झगड़े चलते हैं। उनकी चर्चा अखबारों में होती है और फिर वही गाँव-गाँव चलती है। हम समझ नहीं पाते कि उन लोगों का कौन-सा इतना पुण्य है, जो हर गाँव के लोग उनका नाम लेते हैं। इन दिनों लोगों को संतों के गीत नहीं, झगड़ों की कहानियाँ अच्छी लगती हैं। इसलिए हमें दो बातें करनी होंगी : (१) अपनी सारी शक्ति अच्छे कामों के लिए केन्द्रित कर उसमें एकाग्र होना और (२) पैसे की प्रतिष्ठा तोड श्रम की प्रतिष्ठा कायम करना तथा संघर्ष और स्पर्धा की प्रतिष्ठा तोड़कर प्रेम की कीमत बढ़ाना। हम चाहते हैं कि तमिलनाड़ के लोग यह समझें कि हमारे देश में दारिद्र्य की कोई कमी नहीं है, इसलिए अब प्रेम-दारिद्र्य की जरूरत नहीं। अगर प्रेम परिपूर्ण हो जाय, तो दूसरे दारिद्र्य भी हम मिटा सकेंगे। वे दारिद्र्य उतनी तकलीफ नहीं

देते, जितनी प्रेम-दारिद्रय दे रहा है। भूदान-यज्ञ को आप केवल जमीन के बँटवारे का आंदोलन न समझें, यह तो 'प्रेम समृद्ध करने का आंदोलन' है। कई लोग हमसे पूछते हैं कि क्या भूदान-यज्ञ से अन्नोत्पत्ति बढ़ेगी? तो हम जवाब देते हैं कि भू-दान-यज्ञ से प्रेमवृद्धि होगी। फिर उसके बाद आप चाहेंगे, तो सब लोग मिलकर अन्न की वृद्धि करेंगे। आज हमें सबसे अधिक प्रेम की जरूरत है। अक्सर कहा जाता है कि हिंदुस्तान दरिद्र है। हम भी इसे मानते हैं। किंतु वह दारिद्रय एक-दूसरे के साथ झगड़ा करने से नहीं मिटेगा। हमारे दिल प्रेम से भर जायँ, तो वह कल ही खतम हो जायगा।

संतों का दोष

बड़े आश्चर्य की बात है कि इस प्रदेश में, जहाँ पर वैष्णव और शैव-संतों ने सुंदर-सुंदर भजन गाये, यहाँ फिर से प्रेम की बात सुनाने की जरूरत क्यों पैदा होती है? इसमें केवल लोगों का ही दोष नहीं, इसमें कुछ दोष हमारे संतों का भी है। मैं जरा साहस की भाषा बोल रहा हूँ। संतों ने प्रेम का मार्ग अवश्य बताया, पर इस दुनिया के खयाल से नहीं। इन दिनों लोगों को परलोक की कोई परवाह नहीं होती। पूर्वजन्म, पुनर्जन्म या अगले जन्म खंडित होने चाहिए, आदि बातों की वे चिंता नहीं करते। अगर उनके ध्यान में आ जाय कि प्रेम के बिना हम इसी जन्म में सुखी नहीं हो सकते, तभी काम होगा।

आज लोगों को समझना होगा कि संतों ने लोगों को जिन गुणों का शिक्षण दिया है, उनमें कोई सामाजिक शक्ति है। जैसे इस दुनिया में "पोरुळ" (अर्थ) के बिना नहीं चल सकता, वैसे ही "अरुळ" (भगवत्-कृपा) के बिना भी नहीं चल सकता, ऐसा हमने "कुरल" में पढ़ा है। लेकिन अब बाबा कहना चाहता है कि इस दुनिया का भी "अरुळ" के बिना न चलेगा। मैंने जरा बड़ी बात की। पर समझने की जरूरत है कि धर्म-विचार में भी उत्तरोत्तर विकास हो रहा है और होना चाहिए। कहते हैं कि यह दुनिया याने इसी लोक का प्रतिबिंब है। अगर हम इस दुनिया में नालायक साबित होते हैं, तो परलोक में कभी लायक नहीं साबित हो सकते। जो लड़का हाईस्कूल के लायक नहीं, वह कॉलेज

है ? कहते हैं कि लंदन की लाइब्रेरी में कुल दुनिया की पुस्तकों का संग्रह है, पेरिस और बर्लिन में भी इसी तरह की लाइब्रेरियाँ हैं; पर जब वे एक-दूसरों के नगरों पर बम डालते हैं, तो क्या सोचते हैं कि ये पुस्तकालय बचें ? मतलब यह है कि *मनुष्य काम-वासना से हत होने पर उसकी बुद्धि भी विचार नहीं कर पाती।*

इसके विपरीत प्रेम के साथ संयम आता है। मनुष्य अपनी खुद की वासना पर अंकुश रखकर ही प्रेम कर पाता है। मुझे प्यास लगी हो और मेरे भाई को भी। *अगर उस वक्त मैं अपनी प्यास पर संयम न रखूँ और पहले खुद पानी पी लूँ, तो क्या उस पर प्रेम कर सकूँगा ?* अगर मैं उससे प्रेम करता हूँ, तो पहले उसे पानी पिलाकर ही पीना होगा और उसे पिलाने के बाद न बचे, तो मुझे अपनी प्यास भी सहन करनी होगी।

एक प्रसिद्ध सेनापति की कहानी है। वह लड़ाई में जख्मी होकर रणांगण में पड़ा था। उसके इर्द-गिर्द दूसरे कई जख्मी सिपाही पड़े थे। सेनापति से मिलने कई लोग आये। सिपाहियों के लिए कौन आनेवाला था ? सेनापति मरने की तैयारी में था। उसे प्यास लगी, इसलिए उसने पानी माँगा। जब एक पानी का कटोरा उसे दिया गया, तो उसने देखा कि नजदीक के सिपाही की नजर उस पानी पर है। उसने तुरन्त कहा कि पहले उस सिपाही को पानी पिलाइये। सिपाही को पानी पिलाया गया, लेकिन सेनापति को दूसरा कटोरा भरकर देने के पहले ही वह मर गया। इसीका नाम है, प्रेम।

सारांश, जहाँ प्रेम होता है, वहाँ अपने पर अंकुश रखना ही पड़ता है और जहाँ स्पर्धा का विचार होता है, वहाँ सबसे पहले मुझे मिले, यही भावना होती है। एक छोटी-सी बात है। हम 'गीता-प्रवचन' पर प्रेम से हस्ताक्षर देते हैं, तो जो लोग हस्ताक्षर लेने आते हैं, उनमें हर कोई चाहता है कि पहले मुझे मिले। वह क्या गीता पढ़ेगा, जो धर्म-भावना सीखने के लिए उसे लेता है और फिर भी चाहता है कि मेरा नम्बर पहला हो ? बाबा तो सबको हस्ताक्षर दिये बगैर नहीं जाता। इसलिए कितना अच्छा हो, अगर हर कोई सोचे कि पहले दूसरे गाँव को मिले, हर जाति सोचे कि पहले दूसरी जाति-वालों को मिले।

प्रेम या हाइड्रोजन बम ?

आप कहेंगे कि बाबा तो बिलकुल उल्टी बात करता है। क्या दुनिया में कभी यह बना है? आज तक अनेक संतों ने यही सिखाया, इसी तरह बाबा भी सिखाता है। किंतु याद रखिये, बाबा की बात कबूल किये बगैर दुनिया का चल नहीं सकता, क्योंकि आज विज्ञान इतना बढ़ा है कि दुनिया के सामने सिर्फ दो ही रास्ते हैं। आप प्रेम का तत्त्व कबूल करें, तो ठीक, नहीं तो हाइड्रोजन बम को कबूल करना ही होगा। पहले के जमाने में यह आपत्ति नहीं थी। उस वक्त संत कहते थे, 'प्रेम के मार्ग से चलो, नहीं चलोगे, तो मरने के बाद नरक में जाना पड़ेगा', तो लोग हँसकर कह देते कि 'मरने के बाद की कौन जानता है?' लेकिन अब बाबा आपसे यह नहीं कहता कि हमारी बात न मानोगे, तो मरने के बाद दुःख सहना पड़ेगा, बल्कि यही कहता है कि प्रेम की बात न मानोगे, तो इसी दुनिया और इसी शरीर में हाइड्रोजन बम को मानना पड़ेगा। अगर आपको झगड़े पसंद हैं, तो अपनी सेना खूब बढ़ायें। उधर पाकिस्तान सेना बढ़ा ही रहा है; इधर हिंदुस्तान भी बढ़ायेगा, तो झगड़ा शुरू हो जायगा और दोनों को लड़ाकर दूसरे देश तमाशा देखेंगे। हिंदुस्तान ही नहीं, आज सारी दुनिया की ऐसी हालत हो गयी है कि सन्मार्ग को कबूल करो, नहीं तो विनाश अटल है।

भोग के लिए पैसा चाहिए

इस हालत में हमें सोचना चाहिए कि छोटी-छोटी बातों में भी हम किस ढंग से काम करें। हम अनेक भाषाएँ जानते हैं, इसलिए विभिन्न भाषाओं के अखबार पढ़ पाते हैं। उनमें जो कुछ लिखा रहता है, उससे हमें बहुत दुःख होता है। उनमें पन्ने-पन्ने पर एक-दूसरों को गालियाँ और द्वेष दिखाई देता है। कोई दो-चार मूर्ख झगड़ा करें, तो वे मूर्ख कहलाये जाते हैं। पर इन दिनों तो बड़े अखबारवाले भी इस तरह झगड़ों की बातें, गालियाँ लिखा करते हैं और लाखों लोग उन्हें पढ़ते हैं। समझने की जरूरत है कि यह संघर्ष-तत्त्व, जिसे हमने माना है, बिल्कुल गलत है। इन दिनों हर कोई यही सोचता है कि मुझे पैसा चाहिए।

के लिए लायक नहीं हो सकता। इसलिए इहलोक के लिए जो योग्यता चाहिए, वही अधिक प्रमाण में परलोक के लिए भी चाहिए। समझने की जरूरत है कि मनुष्य में दया, प्रेम, करुणा आदि गुणों की इसी जिंदगी में, इहलोक के लिए ही आवश्यकता है।

विचार बाबा को दौड़ाते हैं

लोग कहते हैं कि बाबा पाँच साल घूमा, अब कब तक घूमेगा? वे यह नहीं कहते कि बाबा ५५ साल तक बैठा रहा, अब क्यों बैठेगा? हम एक जगह बैठने के लिए नहीं जनमे थे। हमें घूमने से कोई थकान नहीं मालूम होती। इंजन के अन्दर भाफ भरी हो, तो वह मजे में दौड़ता है, उसे कोई थकान नहीं मालूम होती। इसी तरह बाबा के अंदर ये सारे विचार भरे हैं और वे ही उसे घुमा रहे हैं। वह जानता है कि ये विचार दुनिया के लिए अत्यंत जरूरी हैं।

एडनूर (चिंगल पेट)
१६-६-'५६

नास्तिकता कैसे मिटे? : ५ :

यहाँ के लोगों को ऐसी खूबी सधी है कि वे खाते-पीते भी गाढ़ निद्रा में सोते रहते हैं। अगर वे जाग जायँ, तो समझ लेंगे कि भूमि का हक सबको है और जब तक हम सबको वह हक नहीं देते, तब तक सच्ची शांति और सुख कभी हासिल नहीं होगा। पचासों प्रकार से वह अशांति और दुःख प्रकट होगा। यहाँ हमने 'द्रविड कजहम्' (तमिलनाड़ का एक राजनैतिक पक्ष, जो 'स्वतंत्र द्रविड़स्तान' की माँग करता है) और नास्तिकों के खिलाफ शिकायतें सुनीं। लेकिन आप सब भूमिहीनों को जमीन देने का काम कीजिये। फिर मैं देखूँगा कि कौन 'कजहम्' काम करता है और कौन नास्तिक सामने आते हैं?

वास्तव में इन सबका मूल है, हमारी निष्ठुरता और कारुण्य का अभाव। पेट की बीमारी के कारण सिर दुखता हो, तो सिर दबाने से काम न चलेगा।

परस्पर विरोध, झगड़े, नास्तिकता आदि सब सिरदर्द हैं और मूल-रोग है, हमारी निष्ठुरता। भूदान के जरिये इसी मूल-रोग पर प्रहार करने का काम हो रहा है। प्रत्यक्ष भूखे भगवान् की सेवा न करते हुए हम मूर्ति की पूजा करते रहें, तो वह आत्मवंचना होगी। हम मानते हैं कि मूर्तिपूजा में भी भक्ति का विकास हो सकता है। लेकिन जब कि परमेश्वर हमारे सामने दरिद्रनारायण का रूप लेकर साक्षात् खड़े हैं और मदद माँग रहे हैं, तो हमें उन्हीं की सेवा करनी चाहिए। यही भूदान-यज्ञ का मूल-विचार है। मैं मानता हूँ कि अपने को आस्तिक कहलानेवाले ही अपने दुर्वर्तन से नास्तिकता का अधिक प्रचार कर रहे हैं। नास्तिकता सदाचारयुक्त जीवन से ही मिटेगी, केवल शब्दों से नहीं।

एड्डुर (चिंगलपेट)
११-६-'५६

विज्ञान-युग में धर्म खूब बढ़ेगा

: ६ :

आज हम 'नम्मारवाव्ठ' के कुछ भजन पढ़ रहे थे, जिनमें महाभक्त कह रहे हैं कि 'कोई बड़ा ज्ञानी हो, तो भी उस ज्ञान से उसका छुटकारा नहीं हो सकता।' उन्होंने यह भी कहा कि 'कोई बड़ा श्रीमान् हो, तो भी उस सम्पत्ति से उसे शाश्वत सुख प्राप्त नहीं हो सकता।'

ज्ञान और संपत्ति से भेद बढ़ता है

वास्तव में इन्हीं दो बातों के पीछे बहुत से लोग लगे हैं। ज्ञान-प्राप्ति की इच्छा रखनेवाले संपत्ति पाने की इच्छा रख सकते हैं और संपत्ति पाने की इच्छा रखनेवाले ज्ञानप्राप्ति की भी। दोनों से छुटकारा नहीं हो सकता, इसलिए कि जिस कारण बंधन है, वह उनसे और पक्का हो जाता है। मनुष्य को ममता और अहंता का बंधन होता है। ज्ञान-प्राप्ति की इच्छा रखनेवाला भी अहंता रखता है, बल्कि बढ़ाता है और धन-प्राप्ति की इच्छा रखनेवाला भी : 'संपत्ति किसके लिए? मेरे लिए और ज्ञान किसके लिए? मेरे लिए। दूसरे संपत्तिहीन और मैं संपत्तिमान्, दूसरे अज्ञानी और मैं ज्ञानी!' इस तरह संपत्ति और ज्ञान

से भेद घटता नहीं, बढ़ता ही है। किन्तु भक्ति में यह खूबी है कि भक्त अपना सर्वस्व समर्पण कर देता है। वह अपने लिए कुछ नहीं रखता। 'मुझे संपत्ति चाहिए, ज्ञान चाहिए' कहने से 'मुझे' कायम ही रहता है। जबतक 'मुझे' खंडित नहीं होता, तबतक बंधन छूट नहीं सकता।

यह बात व्यक्ति को लागू है और समाज को भी। लोग समझते हैं कि हम समाज की सेवा में लगे हैं, तो हमारा बंधन छूट जाना चाहिए। किंतु समाज की सेवा में लगे लोग भी अपने समाज का तो अभिमान रखते ही हैं और उससे अपनी बुद्धि का संकोच कर लेते हैं। देशाभिमानी अपने देश के लिए दूसरे देश के साथ लड़ सकता है। यहाँ तक कि भक्तिमार्ग के विभिन्न पंथों को भी अपने-अपने पंथ का अभिमान होता है। वे अपने पथ के हितार्थ दूसरे पथवालों से झगड़ा और मत्सर भी करते हैं। इस तरह संकुचित भावना, भेद, ममता आदि सब-के-सब व्यापक क्षेत्र में भी कायम रहते हैं। हम देखते हैं कि देश-सेवा के काम में लगे लोग भी, जो कि अपना कोई स्वार्थ नहीं रखते, आपस में झगड़ते और मत्सर करते हैं, क्योंकि उन्हें एक अभिमान होता ही है। इस तरह जिस किसी कारण अभिमान पैदा होता है, वह बंधन-कारक है। केवल देशाभिमान या धर्माभिमान से किसी तरह छुटकारा नहीं हो सकता। बड़े-बड़े लोगों ने लिखा है कि देशाभिमान और धर्माभिमान भी बड़े खतरनाक हो सकते हैं। क्योंकि वह धर्म या पथ 'मेरा' है, इसलिए मैं उसे पकड़ रखता हूँ। कहते हैं कि 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ !' जब कारण पूछा जाता है कि किसका ? तो कहते हैं, 'हमारा'। तमिल-कवि भारती ने भी लिखा है कि 'भारतभूमि सारी दुनिया में श्रेष्ठ है। पर अगर वह 'हमारी' न होती, तो क्या उसे श्रेष्ठ कहते ?'

खुद को खतम करो

इस तरह केवल व्यापक क्षेत्र में काम करने से अभिमान मिट जाता है, ऐसी बात नहीं। अभिमान का आश्रय-स्थान 'मैं' हूँ। बड़े-बड़े साधकों को भी अपने गुरु का अभिमान होता है, यद्यपि वे अन्य सभी अभिमानों से मुक्त हुए रहते हैं। लेकिन भक्ति की यह खूबी है कि उसमें मनुष्य अपने को काटता है।

उससे 'मैं' वाली बात खतम हो जाती और 'हम सब' वाली आती है। 'हम सब' की भाषा आते ही व्यक्ति डूब जाता है। नदी समुद्र में डूब जाती है, तो फिर उसका अभिमान नहीं रहता। जैसे सांसारिक लोगों को अभिमान होता है, वैसे ही पारमार्थिकों और साधकों को भी होता है। इसलिए सार यही है कि हमें अपने आप को भूल जाना चाहिए। जहाँ हमारे 'खुद' का छेद हो जाता है, 'खुद' खतम हो जाता है, वहाँ 'खुदा' प्रकट होता है। जबतक हम अपना छेद नहीं करते, तबतक ईश्वर-भक्ति प्रकट नहीं होती। हाँ, ईश्वर-भक्ति का भी अभिमान हो सकता है। अगर कोई कहे कि 'मैं अपने में ईश्वरभक्ति रखता हूँ और तू नहीं रखता, इसलिए मैं तुझसे श्रेष्ठ हूँ', तो फिर ईश्वरभक्ति ही कहाँ रही? इसलिए जबतक हम अपने को कायम रखते हैं, फिर चाहे ज्ञान के साथ संबंध रखें, चाहे संपत्ति के या धर्म के साथ, तबतक अभिमान मिट नहीं सकता।

विज्ञान समाज-भावना ला रहा है

मैं कोई नया विचार नहीं दे रहा हूँ। यह वेदांत का ही विचार है, जिसका अबतक अमल नहीं हुआ। किन्तु अब उसका अमल हुए बगैर चारा नहीं है। क्योंकि अबतक अभिमान पर सिर्फ वेदांत का ही हमला हो रहा था, पर अब विज्ञान का भी हमला हो रहा है। विज्ञान इतना व्यापक हो गया है कि अब वह व्यक्ति का व्यक्तित्व भी कायम न रहने देगा। विज्ञान के इस जमाने में वही समाज टिक सकेगा, जो अपने को समष्टि का अंश समझेगा। वे ही व्यक्ति टिकेंगे, जो यह मानेंगे कि हम अलग नहीं, सबके अंश हैं। अब राज्यों, पंथों या धर्मों की हदें टिक नहीं सकतीं। विज्ञान की बड़ी भारी बाढ़ आयी है, जिसमें संकुचित और छोटे-छोटे अहंभाव टिक न सकेंगे। अगर कोई कहेगा कि मैं अपना छोटा-सा देश बनाना चाहता हूँ, तो वह देश न टिकेगा। कोई कहता है कि यह मेरा घर है, परंतु उसके अन्दर रहनेवाले चूहे भी घर पर अपना हक बताते हैं। 'मेरा घर' कहनेवाला घर छोड़कर चला जाता है, तो भी चूहे कायम रहते हैं। इसलिए यह कहना गलत है कि यह मेरा घर है। कहना तो यही चाहिए कि 'यह सार्वजनिक घर है, भगवान् का है, यह सब कृष्णार्पण है। उसके प्रसाद के

तौर पर ही मुझे इसका भोग मिल सकता है। आज विज्ञान इसी तरह की भावना ला रहा है।

दुनिया एक हो रही है

आज छोटे-छोटे सवाल भी एकदम अन्तर्राष्ट्रीय बन जाते हैं। हम यह नहीं कह सकते कि यह हमारा घर का सवाल है। लोग कहेंगे कि यह तुम्हारे घर का सवाल है, पर उससे हमें तकलीफ होती है, दुनिया की शांति भग होती है। मान लीजिये, कल अगर अमेरिका में लड़ाई शुरू हो जाय, तो उसका असर हिंदुस्तान के कुल बाजारों पर पड़ेगा। यहाँ के गरीब समझ ही न पायेंगे कि अनाज एकदम से महँगा क्यों हुआ। लड़ाई की ही बात नहीं, साधारण समय में भी अमेरिका में कपास ज्यादा पैदा होने पर हिंदुस्तान के कपास के दाम पर परिणाम होता है, फिर चाहे यहाँ वह कम पैदा हो या ज्यादा। कपास अब सारी दुनिया की वस्तु बन गयी है। इस तरह दुनिया के किसी कोने मे भी कोई सवाल पैदा होता है, तो उसका असर सारी दुनिया पर होता है। विज्ञान के कारण हम सब एक दूसरे के साथ इतने एकरूप हो रहे हैं कि 'मैं और मेरा', 'तू और तेरा' भेद ही मिट जायगा। आज आप यह चर्चा कर ले कि बल्लारी किस प्रांत में जायगा। लेकिन चंद दिनों के बाद यह मूढ सवाल माना जायगा। जैसे आज तमिलनाड का नागरिक भारत का नागरिक है, उसे भारत भर में कहीं भी जाने और काम करने का हक हासिल है। इसी तरह आगे चलकर भारत का नागरिक दुनिया का भी नागरिक होगा। दुनिया का कोई भी मनुष्य किसी भी देश मे जाकर रह सकेगा और काम कर सकेगा। यह हालत बहुत शीघ्र आनेवाली है।

विज्ञान से धर्म बढ़ेगा

इस तरह यह युग अहंता और ममता का छेद करने के लिए खड़ा है। इसलिए जो छोटी-छोटी और संकुचित भावनाएँ रखते हैं, वे दोनों तरफ से मार खायेंगे। इधर से आत्मज्ञान का सिर पर प्रहार होगा और उधर से विज्ञान का पाँव पर। बहुतों को लग रहा है कि विज्ञान बढ़ रहा है, तो धर्म का क्या होगा? हम कहना चाहते हैं कि इस तरह शंका करनेवाले धर्म को मानते ही नहीं। जब विज्ञान, इतना बढ रहा है तो अधर्म टिक न सकेगा और धर्म ही रहेगा।

व्यापक भावना को ही हम 'धर्म' कहते हैं और संकुचित भावना को 'अधर्म'। विज्ञान-युग में व्यापक भावना ही टिकेगी, संकुचित भावना नहीं। इसीलिए हम कहते हैं कि इसके आगे बहुत जोरों से धर्म-विचार फैलेगा। हर कोई कहेगा कि कोई भी चीज मेरी नहीं, सारी दुनिया की है, मैं भी दुनिया का हूँ, कुल दुनिया का दास हूँ। दुनिया एक परिपूर्ण वस्तु है और मैं उसका अवयव। अगर अवयव शरीर से अलग हो जाय, तो वही खतम हो जाय। अभी मैं जीभ से बोल रहा हूँ और आप कानों से सुन रहे हैं। किंतु अगर मेरी जीभ मेरे शरीर से अलग हो जाय, तो वह बोलने का काम न कर सकेगी। आपके कान आपके शरीर से अलग हो जायँ, तो वे सुनने का काम ही न कर सकेंगे। कान और जीभ को अपना स्वतंत्र अभिमान पैदा हो जाय, तो वे मुर्दा बन जायँगे। अवयवों को अपना-अपना अभिमान हो जाय, तो उनका नाश होगा ही, शरीर का भी नाश हो जायगा। भक्ति हमें यही सिखाती है कि हम अवयवमात्र हैं और परिपूर्ण शरीर भगवान्। हम उसके अंश हैं। हमारी कीमत तभी है, जब हम उसके अंतर्गत हों। उससे अलग हो जायँ, तो हमारी कोई कीमत नहीं। विज्ञान भी यही सिखाता है। इसलिए इसके आगे धर्म और भक्ति की खूब चलेगी।

यही कारण है कि भूदान-यज्ञ जोर पकड़ रहा है। अगर विज्ञान की व्यापक बुद्धि न होती, तो जमीन कौन देता? अब लोग समझने लगे हैं कि हम अलग-अलग नहीं रह सकते। अलग रहने की कोशिश करेंगे, तो सुखी न होंगे। पहले लोग इस बात को नहीं समझते थे। पहले भी ज्ञानी और भक्त यह विचार समझाने की कोशिश करते थे, पर उसे विज्ञान की मदद नहीं होती थी। इसलिए उनका उपदेश चंद लोग सुनते थे, बाकी के लोग अनसुना कर देते थे। ज्ञानी कहते कि आपको संयमपूर्वक रहना और ठीक मात्रा में खाना चाहिए, तो सिर्फ चंद लोग वैसा करते थे। लेकिन कल अगर लड़ाई शुरू हो जाय, तो कुल देश राशन कबूल कर लेगा। सब समझेंगे कि हम राशन कबूल न करेंगे और अपनी मर्जी के मुताबिक खायेंगे, तो लड़ाई न लड़ सकेंगे।

आज की लड़ाइयों में क्रूरता नहीं, मूर्खता

मैं कोई लड़ाई की महिमा नहीं गा रहा हूँ, किन्तु यह कहना चाहता हूँ कि

जब तक देश आजाद नहीं होता, तब तक उसे अपना कोई धर्म नहीं रहता। जो कोई भी काम करने के लिए आजाद हो, उसीके सामने कोई कर्तव्य करने की जिम्मेवारी उपस्थित होती है। जब तक हिंदुस्तान परतंत्र था, तब तक उसका यही कर्तव्य था कि उस परतंत्रता से मुक्त होने की कोशिश करें। परतंत्र हालत में दूसरा कोई धर्म हो नहीं सकता। शास्त्रकार स्वतंत्र मनुष्य को ही धर्म की आज्ञा देते हैं, गुलामों को नहीं। 'स्वतंत्रः कर्ता' इस तरह पाणिनि ने व्याकरण में कर्ता की व्याख्या की है।

आजादी के बाद हम विश्व-मानव बनें

किन्तु हमारा देश जिस तरह स्वतंत्र हुआ, उसी तरह हमारे लिए धर्म उपस्थित हो गया। जब हमारे राष्ट्र की दुनिया में एक हस्ती मान्य हुई, तब उसके लिए सारी दुनिया में कर्तव्य भी पैदा हुआ। अब हमारे बच्चों को यही खयाल होना चाहिए कि हम सारी दुनिया के नागरिक हैं और हमें सारी दुनिया की सेवा करनी है। जब तक देश आजाद नहीं था, तब तक हम पर देश को आजाद करने की जिम्मेवारी थी, इसलिए हम भारतीय थे। किंतु जब हम आजाद हो गये, तो विश्व-मानव बन गये। अब हमारे सामने कोई छोटी चीज नहीं हो सकती। स्कूल में बच्चों को यह नहीं सिखाया जाना चाहिए कि तुम फलाने प्रांत के रहनेवाले हो।

वैसे देखा जाय, तो हम न तो किसी प्रांत में, न किसी गाँव में और न किसी घर में ही रहते हैं; हम तो एक देह में रहते हैं। इसलिए अगर छोटी चीज बोलनी है, तो कहना होगा कि हम इस देह के धारी हैं। छोटी-से-छोटी और सच्ची कल्पना यही है। कहा जाता है कि हम फलाने घर में रहते हैं। पर क्या हम पूरे-के-पूरे घर में भर जाते हैं? हम तो घर की एक कोठरी में रहते हैं और उसमें भी कोठरीभर नहीं। हम रहते हैं, सिर्फ एक शरीर में। इसलिए इस शरीर को सेवा के लायक रखना और उसके जरिये समाज की सेवा

आज जो लड़ाइयाँ होती हैं, वे विश्व-व्यापक होती हैं। इसीलिए मैंने विश्वयुद्धों को 'दिव्ययुद्ध' कहा है। उनमें विचार संकुचित नहीं, व्यापक होते हैं। जहाँ एक शख्स दूसरे का गला काटता है, वहाँ बड़ी क्रूरता होती है। पर जहाँ मनुष्य ऊपर से बम डालता है, वहाँ वह जानता भी नहीं कि नीचे कौन है। उसे आज्ञा हुई, इसलिए उसने बम डाल दिया। इसलिए उसमें क्रूरता नहीं, मूर्खता होती है। आज की लड़ाइयों में लाखों लोग त्याग के लिए तैयार हो जाते हैं। उसमें मूर्खता है, इसलिए उसका परिमाण बुरा होता है। फिर भी उनके पीछे व्यापक बुद्धि होती है और इसीलिए वह बुराई ज्यादा दिनों तक टिक नहीं सकती। उसका पर्यवसान बहुत बड़ी बुराई में होता है। इसलिए मनुष्य उससे डरता है।

अहंता पर दुतरफा हमला

कहने का तात्पर्य यह है कि अहंभाव पर विज्ञान का बहुत बड़ा हमला हो रहा है और आत्मज्ञान का हमला तो पहले से है ही। जहाँ इस तरह दुतरफा हमला हो, वहाँ सिवा इसके कि सब लोग एक दूसरे पर प्यार करें, और क्या होगा ? भू-दान-यज्ञ में हम मुख्य बात यही कहते हैं कि 'मेरा घर' वाली बात छोड़ो और समझो कि यह घर सबका है और सबमें मैं भी एक हूँ, इसलिए मेरा है। यह एक ही घर मेरा नहीं, दूसरे सब घर भी मेरे हैं। इसके सिवा वेदांत और क्या हो सकता है ? भक्ति भी इससे ज्यादा क्या हो सकती है ? विज्ञान भी यही कह रहा है। इसलिए हमें निरुत्साह न होना चाहिए। आगे आनेवाला जमाना बहुत अच्छी तरह भक्ति और धर्म का सच्चे अर्थ में पुरस्कार करेगा। यह बात भी याद रखनी चाहिए कि भिन्न-भिन्न धर्मग्रंथों में जो मूर्खता का अंश है, वह सब का-सब जल जायगा और हरएक धर्म में जो स्वच्छ अंश है, वह उज्ज्वल रूप में प्रकट होगा। इसी श्रद्धा से बाबा काम कर रहा है।

पेरुमक्म् (चिंगलपेट)
२०-६-'५६

जब तक देश आजाद नहीं होता, तब तक उसे अपना कोई धर्म नहीं रहता। जो कोई भी काम करने के लिए आजाद हो, उसीके सामने कोई कर्तव्य करने की जिम्मेवारी उपस्थित होती है। जब तक हिंदुस्तान परतंत्र था, तब तक उसका यही कर्तव्य था कि उस परतंत्रता से मुक्त होने की कोशिश करें। परतंत्र हालत में दूसरा कोई धर्म हो नहीं सकता। शास्त्रकार स्वतंत्र मनुष्य को ही धर्म की आज्ञा देते हैं, गुलामों को नहीं। 'स्वतंत्रः कर्त्ता' इस तरह पाणिनि ने व्याकरण में कर्त्ता की व्याख्या की है।

आजादी के बाद हम विश्व-मानव बनें

किन्तु हमारा देश जिस क्षण स्वतंत्र हुआ, उसी क्षण हमारे लिए धर्म उपस्थित हो गया। जब हमारे राष्ट्र की दुनिया में एक हस्ती मान्य हुई, तब उसके लिए सारी दुनिया में कर्तव्य भी पैदा हुआ। अब हमारे बच्चों को यही खयाल होना चाहिए कि हम सारी दुनिया के नागरिक हैं और हमें सारी दुनिया की सेवा करनी है। जब तक देश आजाद नहीं था, तब तक हम पर देश को आजाद करने की जिम्मेवारी थी, इसलिए हम भारतीय थे। किंतु जब हम आजाद हो गये, तो विश्व-मानव बन गये। अब हमारे सामने कोई छोटी चीज नहीं हो सकती। स्कूल में बच्चों को यह नहीं सिखाया जाना चाहिए कि तुम फलाने प्रांत के रहनेवाले हो।

वैसे देखा जाय, तो हम न तो किसी प्रांत में, न किसी गाँव में और न किसी घर में ही रहते हैं; हम तो एक देह में रहते हैं। इसलिए अगर छोटी चीज बोलनी है, तो कहना होगा कि हम इस देह के धारी हैं। छोटी-से-छोटी और सच्ची कल्पना यही है। कहा जाता है कि हम फलाने घर में रहते हैं। पर क्या हम पूरे-के-पूरे घर में भर जाते हैं? हम तो घर की एक कोठरी में रहते हैं और उसमें भी कोठरीभर नहीं। हम रहते हैं, सिर्फ एक शरीर में। इसलिए इस शरीर को सेवा के लायक रखना और उसके जरिये समाज की सेवा

करना हमारा कर्तव्य है। इस तरह छोटा भूगोल तो यही है कि हम इस देह के निवासी हैं और उसके जरिये हमें सेवा करनी है।

लेकिन जब यह सवाल उठता है कि सेवा किसकी करनी है, तो इसका उत्तर छोटा न होना चाहिए। परतंत्र देश का उत्तर छोटा हो सकता है, पर आजाद देश का यही उत्तर होना चाहिए कि हम इस देह के जरिये सारे विश्व की सेवा करना चाहते हैं। इधर यह देह और उधर वह विश्व! दोनों के बीच दूसरी कोई चीज खड़ी न होनी चाहिए। आजादी के बाद हमारा सारे विश्व के लिए कर्तव्य हो जाता है। हम जो भी छोटी-सी चीज करेंगे, सारी दुनिया का खयाल रखकर करेंगे। हम बोलते हैं, तो हमें ऐसा सावधान होकर बोलना चाहिए कि कुल दुनिया हमारी आवाज सुननेवाली है। हम विश्व की सेवा करनेवाले विश्व-मानव हैं, इससे कम बात बच्चों को न सिखानी चाहिए।

अभी भाषा के अनुसार प्रांत-रचना करने की बात चली है। वह बात अच्छी है। उसके मानी यह नहीं कि हम छोटे बनना चाहते हैं या छोटे-छोटे प्रांतों को अपना देश बनाना चाहते हैं। यह सब हम इसीलिए कर रहे हैं कि लोगों की भाषा में राज्य-कारोबार चले, तो वह लोगों के लिए आसान होगा। यह रचना केवल सुलभता के लिए है, संकुचित बनने के लिए नहीं। मैं यह सब इसलिए कह रहा हूँ कि आजादी के बाद देश के सामने जो कर्तव्य है, उसका अभी तक हमें भान नहीं है। आप देखते हैं कि आजादी के पहले गांधीजी जैसे महान् पुरुष भी हिंदुस्तान छोड़ते नहीं थे। उन्हें अमेरिका, जापान आदि कई देशों का बुलावा आया, लेकिन उन्होंने इनकार कर दिया। किन्तु आज छोटे-छोटे लोगों को भी विदेश जाने का मौका मिलता है। इसका अर्थ यही है कि अब हमारी जिम्मेदारी व्यापक बनी है, यह नहीं कि छोटे-छोटे लोगों को नाहक अपना देश छोड़कर दुनिया में घूमना चाहिए। अब हम एक स्वतंत्र देश के नाते दुनिया में दाखिल हुए हैं, दुनिया का एक अंग बने हैं।

भारत की विशेषता न भूलें

भारत प्राचीन काल से एक विशाल देश के तौर पर प्रसिद्ध है। उसकी

अपनी एक सभ्यता है। उसने आजादी भी अपने ढंग से हासिल की। दुनिया भर में आजादी की लड़ाइयाँ हुई हैं। हर देश का आजादी का इतिहास बड़ा गौरवास्पद और पवित्र होता है। फिर भी हिंदुस्तान की आजादी की लड़ाई का इतिहास एक विशेष ही पवित्रता रखता है, यह हमें समझना चाहिए। इसीलिए कुल दुनिया को हिंदुस्तान से अपेक्षा है। यहाँ पर भूदान का एक छोटा-सा काम चल रहा है, पर दुनियाभर के लोग उसे देखने के लिए आते हैं। हमारी यात्रा में रोज ऐसे दस-पाँच रहते ही हैं। कई देशों में तो भूमि-समस्या है ही नहीं, फिर भी वे यह देखने आते हैं कि इस देश में एक नया प्रयोग हो रहा है, प्रेम और करुणा के जरिये एक बड़ा भारी आर्थिक मसला हल करने की कोशिश की जा रही है। हिंदुस्तान ने आजादी के लिए एक नया तरीका आजमाया था और अब वह अपनी भूमि-समस्या हल करने के लिए भी एक नया ढंग अपना रहा है। उसकी खूबी क्या है, यही जानने के लिए विदेशी लोग आते हैं। इस तरह आज हम सारी दुनिया के बाजार में बैठे हैं। हमारी तरफ सारी दुनिया की आँखें लगी हैं।

हमारी एक बैठक में एक विदेशी भाई आये थे। ४-५ हजार की भीड़ थी, जिसमें भाई-बहनें, बच्चे सब बैठे थे। जब हमने प्रार्थना में पाँच मिनट का मौन रखने के लिए कहा, तो कुल-का-कुल समाज बिलकुल शांत हो गया। बच्चे तो बोलने के आदि होते हैं, लेकिन वे भी शांत रहे। वे विदेशी भाई कहने लगे : 'यह बात तो हिंदुस्तान में ही बन सकती है। हमारे देश में बड़े-बड़े भक्तजन इकट्ठा होकर मौन रखते हैं, लेकिन यहाँ तो कुल-का-कुल समाज पहले से कोई आदत न होते हुए भी मौन रखता है, यह बड़ी आश्चर्य की बात है! आखिर यह कैसे बना?' हमने कहा : 'यह भारत की विशेषता है।'

सारांश, भारत की कुछ विशेषता है, जिससे दुनिया को लाभ होगा, इसी आशा से दुनिया हमारी ओर देखती है। इसलिए हम जब कभी हिंदुस्तान के लोगों को यह कहते सुनते हैं कि हम फलानी भाषा या प्रांतवाले हैं, तो यही समझते हैं कि ये अपने कर्तव्य को भूल गये हैं। शिक्षकों को सोचना चाहिए कि क्या हिंदुस्तान के प्राचीन लोगों ने हमें जो सिखाया, उससे छोटी चीज हम

सिखायेंगे ? जिन दिनों देश में आम-दरफ्त के साधन नहीं थे, उन दिनों केरल से शंकराचार्य निकला, उसने हिंदुस्तान भर घूमकर सब लोगों को धर्म की दीक्षा दी और हिमालय में समाधि ले ली। उसका जन्म हिंदुस्तान के इस सिरे में हुआ और समाधि उस सिरे में! उसने चारों दिशाओं में चार मठों की स्थापना की। उस वक्त एक मठवाला दूसरे मठवाले से मिलने जाता, तो २-३ साल लग जाते। आज तो मद्रास से दिल्ली छह घंटे में जा सकते हैं। पर उन दिनों भी वह शख्स अपने शिष्यों को इतने दूर-दूर के अन्तर पर बिठाता है, तो उसकी कितनी व्यापक श्रद्धा है। वह कुल भारत को अपना देश समझता था। इसलिए हमारी शोभा इसीमें है कि हम बच्चों को उससे कुछ अधिक याने विश्व-मानव बनने का पाठ पढ़ायें।

भूमि-समस्या का हल छोटी चीज

हिंदुस्तान की कुछ शक्ति है, जिससे हमें सारी दुनिया की सेवा करनी है। अगर हम उसे विकसित करें, तो दुनिया की अधिक सेवा कर सकेंगे। हिंदुस्तान में भूमि-समस्या मौजूद है, जो कानून से हल हो सकती है और मारपीट से भी। दोनों तरीकों से दुनियाभर में काम हुआ है, लेकिन हिंदुस्तान में यह तीसरा ही तरीका आजमाया जा रहा है। अगर हमने इस तरीके से काम किया, तो न सिर्फ हिंदुस्तान की भूमि-समस्या हल होगी, बल्कि सारी दुनिया की सेवा भी होगी। कारण इससे सारी दुनिया को यह रास्ता मिल जायगा कि अपनी समस्याएँ प्रेम, शांति, अहिंसा से हल हो सकती हैं। जो लोग भू-दान-आन्दोलन की तरफ भूमि-समस्या के हल की दृष्टि से देखते हैं, वे उसकी महिमा ही नहीं जानते। भूमि-समस्या हल करने के लिए पैदल यात्रा नहीं करनी पड़ती, युवकों को घर-बार छोड़ संन्यासियों की तरह घूमने की तैयारी नहीं करनी पड़ती। लेकिन यह सब इसीलिए जरूरी है कि इनके जरिये प्रेम के तरीके की स्थापना हो रही है।

आज एक भाई का दान-पत्र आया, जिसमें एक पत्र भी था। पत्र में उसने लिखा था कि 'यह आन्दोलन तीन सालों से चला है। हमारे पास भूमि पड़ी है, पर हाथ से छूटती नहीं थी, कुछ मोह था। लेकिन अब तीन साल बाद हम मोह

से मुक्त हो रहे हैं, यह खुशी की बात है। हम बाबा को इतना-इतना दान दे रहे हैं।' वह दान दे रहा है, इसलिए हमें उसका उपकार मानना चाहिए; लेकिन उसके बदले वही हमारा उपकार मानता है। उसे इस बात का दुःख रहा कि मन में मोह था, जो छूट नहीं पाता था। अब वह छूट रहा है, इसकी खुशी में वह दान दे रहा है। हम उसके दान को उतना महत्त्व नहीं देते, जितना उसके पत्र को देते हैं। ऐसी सैकड़ों मिसालें बनी हैं। अनेक ने पूरी श्रद्धा से अपनी-अपनी प्रिय वस्तुएँ दान दी हैं और उनके बदले कुछ नहीं माँगा। इस तरह इससे देश को निष्काम कर्मयोग की दीक्षा मिल रही है। लोग समझते हैं कि एक पुण्यकार्य हो रहा है, उसमें कुछ देना चाहिए।

हमें दुनिया की सेवा करनी है

हमें अपने देश की समस्याएँ ऐसे ढंग से हल करनी होंगी, जिससे विश्व की सेवा हो। आपका देवीकुलम् मलाबार में जाता है या नहीं, इससे दुनिया की कोई सेवा नहीं होगी। लेकिन जब दोनों प्रांतों में से कोई भी एक प्रांत उठकर कहे कि 'भाई, तुम जैसा कहो, वैसा होगा,' तो उससे दुनिया की सेवा होगी। अगर हर प्रांत यह कहे कि 'यह मेरा है' और फिर यह झगड़ा बीच में किसी तरह तय हो, तो उससे दुनिया की सेवा न होगी। आपको अपनी समस्या ऐसे ढंग से हल करनी चाहिए, जिससे सारी दुनिया उन्नत होकर उसकी कुछ सेवा हो सके। मैं आपके सामने सिर्फ मिसाल के तौर पर भू-दान की बात रख रहा हूँ। इन दिनों मेरे सामने हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के झगड़ों की बातें आती हैं। उस समस्या को हम नजर-अंदाज नहीं कर सकते। उसे भी हमें ऐसे ढंग से हल करना चाहिए कि कुल दुनिया के लिए मिसाल हो।

हकों नहीं, कर्तव्यों पर जोर

दूसरी बात यह है कि अपने देश की शक्ति किस बात में है, इसे पहचानना होगा। क्या हिंदुस्तान की शक्ति और अन्य देशों की शक्ति में कोई फर्क है? हिंदुस्तान की सबसे बड़ी बात यह है कि हम 'मर्यादा' को सबसे श्रेष्ठ गुण

समझते हैं। रामचंद्र को 'मर्यादा-पुरुषोत्तम' कहा गया है। हम स्वातंत्र्य से भी बढ़कर मर्यादा को कीमत देते हैं। इसीलिए हम हकों पर नहीं, बल्कि कर्तव्यों पर जोर देते हैं। हम इसका विचार नहीं करते कि छोटे भाई का हक क्या है, बच्चों के, पति-पत्नी के, स्त्री-पुरुषों के, मालिक-मजदूरों के या शिक्षक-विद्यार्थियों के हक क्या हैं। किन्तु दूसरे राष्ट्रों के लोग इसी तरह के हकों का विचार करते हैं। इग्लैंड में ४०-५० साल पहले वोट का हक हासिल करने के लिए स्त्रियाँ उठ खड़ी हुई थीं। लेकिन ये विद्वान् अंग्रेज लोग उन्हें वह हक देने के लिए तैयार नहीं थे। इसलिए उन स्त्रियों ने पार्लमेंट में जाकर पुरुषों पर अंडे फेंके। इस तरह वहाँ स्त्रियों को अपने हकों के लिए पुरुषों के खिलाफ आन्दोलन करना पड़ा। पर हिन्दुस्तान में ऐसा कोई आन्दोलन नहीं करना पड़ा। इसका कारण यही है कि हम हकों पर नहीं, कर्तव्यों पर जोर देते हैं।

इसलिए विद्यार्थियों, शिक्षकों, स्त्रियों और पुरुषों, सबको अपने-अपने कर्तव्यों के बारे में सोचना चाहिए। अगर हम कर्तव्य की चिंता करेंगे, तो हक सहज ही आ जायँगे। पुरुषों का कर्तव्य है कि स्त्रियों के हकों की रक्षा करें और स्त्रियों का कर्तव्य है कि पुरुषों के अधिकारों पर आक्रमण न हो। मैं मेरा अधिकार देखूँ और आप अपना अधिकार देखें, यह विचार ही गलत है। आपके अधिकारों की मैं चिन्ता करूँ और मेरे अधिकारों की आप चिन्ता करें, इसीका नाम है कर्तव्य-बुद्धि, मर्यादा-बुद्धि और यही हिंदुस्तान की विशेषता है। संस्कृत भाषा में 'हक' के लिए शब्द ही नहीं है। उसके लिए एक ही शब्द बताया जाता है, 'अधिकार'। लेकिन उसका अर्थ होता है, 'कर्तव्य'। 'मनुष्याधिकारः', 'गृहस्थाधिकार' याने मनुष्य का कर्तव्य, गृहस्थ का कर्तव्य। कर्तव्य करने में हकों की रक्षा सहज ही हो जाती है। किंतु जहाँ हकों की रक्षा करने का खयाल होता है, वहाँ हमेशा कर्तव्यों का खयाल होता है, ऐसी बात नहीं।

संपत्तिवान् पिता की हैसियत में

भू-दान-यज्ञ आन्दोलन में हम भूमिवानों को समझाते हैं कि आपका यह

कर्तव्य है कि भूमिहीनों को जमीन दें। हम भूमिहीनों से यह नहीं कहते कि उठ खड़े हो जाओ और जमीन छीन लो। कुछ लोग हम से पूछते हैं कि इस तरह आप भूमिहीनों को कैसे जगायेंगे ? हम उन्हें समझाते हैं कि यह भारत का तरीका है। अगर बाप अपना कर्तव्य करता है, तो पुत्र का कर्तव्य पुत्र करता ही है। यह कबूल करना होगा कि आज भूमिवान्, संपत्तिवान् और पढ़े-लिखे लोग बाप की हैसियत में हैं। जिस क्षण वे अपना कर्तव्य समझेंगे, उसी क्षण उनके बच्चे भी अपना कर्तव्य समझ लेंगे। हम कहना चाहते हैं कि हिंदुस्तान के गरीब इतने कृतज्ञ हैं कि उनका आपके साथ क्या प्रेम-संबंध है, यह ध्यान में लेकर आप अपना कर्तव्य करें, तो वे आपके लिए मर-मिटने के लिए तैयार होंगे।

जहाँ हम भूमिवान्, संपत्तिवान् और पढ़े-लिखे लोगों को जगाते हैं, वहीं उनके साथ दूसरों को भी जगाया जाता है। माता यही करती है। वह बड़े लड़के से कहती है : 'बेटा, उठो, उठने का समय हो गया।' लेकिन वह इतने जोर से कहती है कि छोटा लड़का भी समझ लेता है। कभी-कभी बड़े लड़के से पहले छोटा ही लड़का माँ की बात समझ लेता है। फिर बड़ा लड़का शर्म के मारे उठता है। कभी बड़े को देखकर छोटा भी उठ जाता है। दोनों को जगाना होता है, फिर भी माँ बड़े का ही नाम लेकर जगाती है। इसी तरह बाबा सबको जगाना चाहता है, पर वह बड़ों का नाम लेकर कहता है कि 'भूमिवानो, संपत्तिवानो, विद्वानो ! अपना कर्तव्य करो।' इतना कहने से दूसरों को भी अपना-अपना कर्तव्य करने के लिए पुकारा जाता है। फिर हम भूमिहीनों से कह सकते हैं कि तुम्हें जमीन मिली है, तो अब शराब पीना छोड़ो, आलस छोड़ो। इस तरह भू-दान-यज्ञ में हिंदुस्तान का गुण ध्यान में लेकर काम किया जा रहा है। हमारे देश का गुण है, मर्यादा-शीलता और हकों पर जोर देने की अपेक्षा कर्तव्यों पर जोर देना। इससे भिन्न तरीके से जो काम होता है, उससे दुनिया के मसले हल नहीं होते, बल्कि बढ़ते ही हैं।

सारांश, मैंने आज दो बातें समझायीं : (१) यद्यपि हम छोटी-सी देह में रहते हैं, तो भी कुल दुनिया की सेवा करनेवाले विश्व-मानव हैं। आजादी के बाद

हमें यह बात समझनी ही होगी। इसलिए हमारे हृदय में छोटे-छोटे संकुचित अभिमान न होने चाहिए। (२) अपने देश का विशेष गुण ध्यान में लेकर उसके जरिये देश की समस्याएँ हल करनी चाहिए।

मधुरान्तकम् (चिंगलपेट)
२१-६-'५६

समाज की उन्नति के लिए संयम और करुणा : ८ :

समाज और व्यक्ति का सुख भिन्न नहीं, समाज के सुख में ही व्यक्ति का सुख निहित है। इसके अलावा व्यक्ति को अपना नैतिक और आध्यात्मिक विकास स्वतंत्र रूप से करना चाहिए। इस आध्यात्मिक प्रगति की कोई सीमा नहीं है। यह सतत चालू रह सकती है और रहनी चाहिए। आज लोग व्यक्ति की उन्नति का मतलब खूब अर्थ-संपादन करना लगाते हैं। इसी तरह उनकी यह भी इच्छा रहती है कि अर्थ-संपादन करने का मौका सबको मिले। दुनिया में आगे बढ़ने का यही अर्थ लगाया जाता है कि कीर्ति, पैसा या सत्ता खूब प्राप्त हो। लेकिन यह बिल्कुल ही गलत है, यह अर्थ समाज के हित के विरुद्ध है। व्यक्ति की उन्नति का सही अर्थ यही है कि मनुष्य की आत्मा उत्तरोत्तर ऊपर उठे और उसकी आध्यात्मिक उन्नति हो। उसमें मनुष्य नैतिक-स्तर से ऊपर उठते-उठते परमेश्वर के स्तर तक पहुँच सकता है।

करुणा के बिना उन्नति नहीं

अगर समाज-रचना अच्छी बनती है, तो व्यक्ति की उन्नति के लिए अनुकूलता पैदा होती है। समाज की सेवा में सबकी शक्ति लगे, इसके लिए दो गुणों की जरूरत है : (१) करुणा और (२) संयम। मन में सबके लिए करुणा हो, तो मनुष्य दूसरों का दुःख सहन न कर सकेगा। आज दुनिया में दुःख बहुत है, लेकिन लोग दिल सख्त कर उस ओर ध्यान नहीं देते। जो आस्तिक कहलाते हैं, वे कहते हैं कि हम क्या कर सकते हैं? दुःख मिटानेवाला तो ईश्वर है।

जो नास्तिक होते हैं, वे कहते हैं कि जिसका दुःख वही सहे, हम क्या करें? इस तरह नास्तिकों ने दुखियों का दुःख मिटाने का भार उन दुःखियों पर ही सौंपा है, तो आस्तिकों ने ईश्वर पर। लेकिन न तो नास्तिक यह पहचान रहे हैं और न आस्तिक ही कि दुखियों का दुःख मिटाने का कुछ भार हम पर भी है। इसीलिए हम सबसे ज्यादा जोर करुणा पर देते हैं। सभी संतों के जीवन का सार-सर्वस्व करुणा है। फिर चाहे वे राम का नाम लेते हों, चाहे कृष्ण का या शिव का। चाहे वे मोक्ष का नाम लेते हों, चाहे निर्वाण या परमानंद का। हमें दुनिया में ऐसे काम करने चाहिए, ऐसे आन्दोलन उठाने चाहिए, जिनके जरिये लोगों में करुणा के भाव पैदा हों। लोग सोचते हैं कि अभी जो पंचवर्षीय योजना चल रही है, उससे हिंदुस्तान की दौलत बढ़ेगी, हिंदुस्तान सुखी होगा। लेकिन वह सारी योजना तभी सफल होगी, जब लोगों को एक दूसरे पर प्यार करने का महत्त्व मालूम होगा और उनके हृदय में करुणा पैदा होगी।

समाज-जीवन में संयम की जरूरत

दूसरी बात यह है कि सामाजिक जीवन में संयम की बहुत जरूरत है। संयम याने अपने भोगों की मात्रा और नाप तय करना। अगर हम अपने भोगों की मर्यादा नहीं रखते, तो दूसरों के साथ, समाज के साथ टक्कर आना लाजिमी है। जो भोग सबको नहीं मिल सकता, उसे भोगने का हमें हर्गिज अधिकार नहीं, यह भावना सबके मन में स्थिर होनी चाहिए। 'कुरल' के एक अध्याय में चोरी का संबंध संयम के साथ जोड़ा गया है। उसमें कहा गया है कि अगर हम अपने भोगों की मर्यादा नहीं रखते, तो चोरी ही करना शुरू करते हैं। रात को जो चोरी होती है, वह बिलकुल छोटी है। मूर्ख लोग वैसी चोरी करते हैं। किंतु बिलकुल दिन-दहाड़े, सूर्य-प्रकाश में चोरियाँ की जाती हैं और उनके करनेवाले दुनिया में सम्मानित भी होते हैं। ऐसी विपरीत स्थिति हो गयी है। हम अपना खुद का जीवन देखें, तो मालूम होगा कि हम कितनी चोरियों में हिस्सा लेते हैं। इसलिए अपना भोग उत्तरोत्तर कम करना चाहिए, एक-एक वस्तु जो हम नाहक अपने पास रखते हैं, कम करनी चाहिए। हमें अपनी यह मर्यादा अवश्य

समझ लेनी चाहिए कि हम सबके साथ रहें। हाँ, सबके पीछे रह सकते हैं, परंतु आगे नहीं बढ़ सकते। सबको जितना भोग सुलभ हो, उतना ही हम ले सकते हैं; पर उससे भी कम लें, तो बेहतर है। सारांश, समाज के हर व्यक्ति में करुणा और संयम ये दो गुण होंगे, तो समाज की रचना अच्छी बनेगी।

आजकल 'स्टैण्डर्ड आफ लिविंग' (जीवन-स्तर) बढ़ाने की बात की जाती है। उसका मतलब यह है कि आज जिस तरह जिंदगी बसर की जाती है, उससे अधिक सुखमय हो। आज खाने को पूरा नहीं मिलता, तो वह मिलना चाहिए। दूध बहुत कम मिलता है, तो ज्यादा मिलना चाहिए। कपड़ा बहुत कम मिलता हो, तो ज्यादा मिलना चाहिए। लेकिन जो लोग बहुत ज्यादा कपड़ा इस्तेमाल करते हैं, उन्हें अपना कपड़ा कम करना चाहिए, क्योंकि ज्यादा कपड़ा पहनने से हवा का 'स्टैंडर्ड' कम हो जाता है। सबसे महत्त्व की चीजें हैं : हवा, पानी, सूर्य-प्रकाश और आसमान। इनमें किसी प्रकार की कमी न करनी चाहिए। सारांश, जीवन की कुछ चीजें जो आज नहीं मिल रही हैं, अवश्य बढ़ानी चाहिए। कुछ हम नाहक ज्यादा इस्तेमाल करते हैं, वे कम करनी चाहिए। इस तरह जीवन योग्य बनना चाहिए। आज की हिंदुस्तान की हालत में जीवन का स्तर ऊँचा बढ़ाना आवश्यक है। सुख बढ़ाया जाय, यह हम भी मानते हैं, किन्तु दो बातें ध्यान में रखनी चाहिए : (१) मेरा सुख पहले बढ़े, यह खयाल गलत है। सारे समाज का सुख बढ़े और उसके साथ मेरा भी बढ़े या उसके पीछे बढ़े, यही खयाल रहे। (२) केवल पदार्थ बढ़ाने से सुख नहीं बढ़ता।

भू-दान की सफलता के लिए संयम और करुणा

जहाँ जीवन-मान बढ़ाने की बात चलती है, वहाँ हमें यह समझना चाहिए कि सारे समाज का सुख बढ़ाया जाय, हमारा व्यक्तिगत सुख नहीं। इसलिए हर एक यह विचार करे कि मैं अपने लिए कम-से-कम भोग लूँ। सारे समाज का सुख बढ़े, इसके लिए अंकुश हो, संयम हो। भू-दान-यज्ञ की सफलता के लिए भी ये दो गुण बहुत जरूरी हैं। अक्सर लोग हमसे पूछते हैं कि 'हम जमीन देंगे, तो

ही है। वे समझते हैं कि कागजों के साथ परिचय होना चाहिए, परिस्थिति के साथ नहीं। तभी अच्छा न्याय दिया जाता है।

वे यह भी समझते हैं कि गाँव के लोग जितना उत्तम न्याय दे सकते हैं, उससे उत्तम न्याय मद्रासवाले दे सकेंगे, क्योंकि वे किसीका चेहरा देखते नहीं और सिवा कागज के और कुछ जानते नहीं। लेकिन मद्रास के लोग कुछ तमिल जानते हैं, इसलिए उतना उत्तम न्याय नहीं दे सकेंगे, जितना कि दिल्ली-वाले दे सकेंगे। पहले तो दिल्ली में भी उत्तम न्याय नहीं मिलता था, उसके लिए लंदन जाना पड़ता था। सारांश, न्याय देनेवाले जितनी दूर रहेंगे, उतना ही वे उत्तम न्याय दे सकेंगे, ऐसा उनका खयाल है।

किन्तु इस पर हम कहते हैं कि सबसे दूर तो परमात्मा है, फिर उसीके हाथों में न्याय सौंप दो। वह बहुत दूर है, इसलिए तटस्थ भी रह सकता है और वह बिलकुल हृदय के अंदर रहता है, इसलिए हर बात जानता भी है। इस तरह उसमें दोनों गुण हैं, इसलिए हम न्याय-अन्याय की बातें उसी पर सौंप दें और प्रेम की बातें करें। हमारा अनुभव है कि लोगों को प्रेम के लिए राजी किया जाय, तो हर झगड़े का फैसला आसान हो जाता है। इसलिए हम झगड़ों को कोई महत्त्व नहीं देते। यही समझाना चाहते हैं कि भूदान-यज्ञ के जरिये हम करुणा का विचार फैलाते जायँ, तो सारे झगड़े यों ही खतम हो जायँगे।

चेंदाल (चिंगलपेट)
२७-६-'५६

आज दोपहर में एक अंग्रेज बहन के साथ बातचीत हो रही थी। वह हिंदुस्तान में कई साल रह चुकी है और यहाँ काफी गरीब हैं, यह देख भारत की कुछ सेवा भी करना चाहती है। उसे तीव्र इच्छा है कि यहाँ कुछ सद्भावना प्रकट करें। हिंदुस्तान में गरीबी के कारण कई समस्याएँ हैं। हमने उससे कहा कि 'गरीबी के साथ ही समस्याएँ होती हैं, ऐसी बात नहीं; अमीरी या समृद्धि के साथ भी कई विकट समस्याएँ पैदा होती हैं।' उस बहन ने कहा : 'शायद अमेरिका में जो प्रश्न पैदा होते हैं, वे ज्यादा कठिन होते हैं, बनिस्बत गरीबी के सवालों के।' मेरा खयाल है कि यह बात सही है।

समस्थिति में ही समाज की सुरक्षा

कुछ लोगों ने मान रखा है कि जीवन का मान जितना ऊँचा जायगा, उतना ही सुख बढ़ेगा। लेकिन भगवान् ने मनुष्य की रचना ऐसी नहीं की है। मनुष्य को तब सुख होता है, जब वह बीच की हालत में रहता है। यह मध्यस्थ भूमि कहाँ है, इसका ठीक से पता नहीं चलता। अति-दारिद्र्य होने पर कई प्रकार के पाप पैदा होते हैं। अति-समृद्धि होने पर भी कई प्रकार के पाप होते हैं। इसलिए मनुष्य जब सुख और दुःख दोनों से अलग रहता है, तभी उसे शांति और समाधान प्राप्त होता है। न अधिक सुख और न अधिक दुःख, ऐसी बीच की हालत में चित्त प्रसन्न रहता है। जिस तरह दुःख में खतरा है, उसी तरह सुख में भी है। रास्ता सीधा और समतल हो, तो बैल सुखी से गाड़ी खींचते हैं और गाड़ीवान को भी कोई तकलीफ नहीं होती। कई दफा अच्छे रास्ते पर यह सो भी जाता है। लेकिन रास्ता बहुत ज्यादा उतार का हो, तो खतरा है, क्योंकि वहाँ बैल एकदम जोरों से आगे दौड़ना शुरू करते और गाड़ी गड्ढे में गिर जाने का डर रहता है। उस वक्त गाड़ीवाला आराम से सो नहीं सकता। इसी तरह जब ऊँचे चढ़ने का रास्ता हो, तो भी खतरा है; क्योंकि उस रास्ते पर बैल आगे बढ़ते ही नहीं और गाड़ी रुक जाती है। गाड़ीवान

को अपनी ताकत लगानी पड़ती है, तब कहीं गाड़ी आगे बढ़ती है। सारांश, ऊपर चढ़ना दुःख और नीचे उतरना सुख की हालत है। सुख में इन्द्रियाँ बिलकुल भोग-परायण बनती और जोर करती हैं। जहाँ दुःख, तकलीफ का मौका आता है, वहाँ वे आगे नहीं बढ़तीं, कोई काम नहीं करतीं। इसलिए जहाँ समान रास्ता है, समत्व-बुद्धि, सम-स्थिति है, वहाँ समाज सुरक्षित और मनुष्य का मन भी सुरक्षित है। इसीको हम 'साम्ययोग' कहते हैं।

हर क्षेत्र में साम्ययोग आवश्यक

'साम्ययोग' की महिमा हम अपने शरीर में भी देखते हैं। शरीर के वात, पित्त और कफ में से कोई भी एक धातु बढ़ जाय, तो शरीर खतरे में पड़ जाता है। किन्तु जहाँ तीनों धातु समान रहते हैं—धातुसाम्य होता है, वहाँ उत्तम आरोग्य रहता है। यह साम्ययोग हमें हर दिशा में साधना चाहिए। आध्यात्मिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में भी उसकी जरूरत है। समाज में कोई ऊँचा और कोई नीचा हो, तो वह समाज आगे न बढ़ेगा। गाड़ी के दो बैलों में एक बहुत ऊँचा और दूसरा बहुत छोटा हो, तो गाड़ी आगे बढ़ नहीं सकती। गाड़ी के बैल भी करीब-करीब समान होने चाहिए। आज देश में कुछ लोग पंडित हैं, तो कुछ बिलकुल ही निरक्षर। पंडितों को अक्ल तो बहुत होती है, पर वह व्यवहार में काम नहीं आती। और जो निरक्षर हैं, उनके पास काम के लिए जरूरी भी अक्ल नहीं होती। इसलिए दोनों मिलकर समाज का कोई कल्याण नहीं होता। बड़े-बड़े गड्ढे और टीलोंवाली जमीन हो, तो खेती नहीं हो सकती। खेती तभी अच्छी होती है, जब जमीन समतल हो। मनुष्य का चित्त भी जब समान होता है, तभी उसे शांति प्राप्त होती है। अगर उसे बहुत हर्ष हुआ, तो भी उसका परिणाम बुरा होता है। हमने ऐसी खबरें सुनी हैं कि किसीको लाटरी में दो लाख रुपये मिलने का तार आने पर बहुत हर्ष हुआ और उसीमें वह मर गया। इसी तरह एकदम अतिदुःख आ पड़े, तो उसका भी बुरा परिणाम होता है। इसीलिए भगवान् बार-बार गीता में कहते हैं कि हर्ष और शोक से भिन्न, सुख-दुःख से भिन्न समान-स्थिति में चित्त को रखो।

धर्म बाधक बन गया

आज समाज में अनेक प्रकार की उच्च नीचता दीखती है। जाति-भेदों के कारण जो उच्च-नीचता आती है, वह सारे समाज का बल बनने ही नहीं देती। प्राचीनकाल में जो वर्ण बने, वे कर्म-विभाग की व्यवस्था के लिए बने थे। घर में तरह-तरह के काम होते हैं। कोई रसोई बनाता है, कोई झाड़ू लगाता है; पर उनके बीच उच्च-नीचता नहीं होती, बल्कि प्रेम होता है। लेकिन आज के जातिभेद में यह हालत नहीं रही। आज कोई कर्मभेद तो नहीं रहा। जिसे जो काम करने की इच्छा होती है, उसे वह कर लेता है। फिर भी अपनी-अपनी जाति के अभिमान कायम हैं, उच्च-नीचता कायम ही रखते हैं। इस कारण कोई समूह नहीं बनता और जबतक समूह नहीं बनता, तबतक कोई भी सामाजिक कार्य नहीं हो सकता। कोई भी धार्मिक कार्य हो, तो भी उसमें सब लोग इकट्ठा नहीं हो सकते। शिव-भक्तों का एक पंथ, तो वैष्णवों का दूसरा पंथ! और वैष्णवों में भी राम का एक पंथ, तो कृष्ण का दूसरा पंथ चलता है। उसमें कुछ सगुण भक्तिपंथ होते हैं, तो कुछ निर्गुण। फिर कुछ लोग दूसरे धर्मवाले होते हैं, जो कहते हैं कि हम अल्लाह का ही नाम लेंगे, राम का नहीं। रामनाम हमारे लिए बिलकुल खतरनाक है, दुनिया में इससे खराब नाम हो ही नहीं सकता। इस तरह जो धर्म सब को प्रेम से बाँधने के लिए पैदा हुआ, उसकी यह हालत हो गयी है। 'धारणात् धर्म' सबका धारण करता है, इसीलिए वह धर्म है। किंतु आज वही विभाजन करनेवाला साबित हुआ है।

एक सत्पुरुष की कहानी है। उसने भक्ति के लिए एक मंदिर बनवाया। लेकिन देखा कि उसमें सिर्फ हिंदू ही आते हैं, मुसलमान नहीं। उन दिनों वहाँ मुसलमानों का राज्य था। उसने सोचा, मुसलमान नहीं आते, यह ठीक नहीं। इसलिए उसने मंदिर की मसजिद बना दी। फिर मुसलमान तो बड़े प्यार से आने लगे, लेकिन हिंदुओं ने आना छोड़ दिया। वह सत्पुरुष दुःखी हुआ और सोचने लगा कि क्या करना चाहिए? फिर उसने मसजिद तोड़कर उसका पैखाना बनाया। तब बादशाह गुस्सा हो गया। मंदिर की मसजिद बनायी, तब

उसे रंज नहीं हुआ था। बादशाह ने सत्पुरुष से पूछा, तो उसने जवाब दिया: 'इसका परिणाम देखो, तो तुम्हारे ध्यान में आ जाय कि मैंने यह क्यों किया। मंदिर बनाया, तो मुसलमान नहीं आते थे और मसजिद बनायी, तो हिंदू नहीं आते थे। लेकिन अब पैखाना बनाया, तो सब आने लगे।' इसलिए 'सेक्युलर स्टेट' से बेहतर कुछ नहीं है। सारांश, धर्मवालों ने आज इतने भेद बढ़ाये हैं कि धर्म साधक होने के बदले बाधक हो रहा है।

विवेक के साथ साम्ययोग

समाज में उच्च-नीचता के भेद रहें, तो समाज बनता ही नहीं। आज गाँव में कुछ लोगों के पास जमीन है, तो कुछ के पास नहीं। ऐसे गाँव में अगर पानी का इन्तजाम किया जाता है, तो जिनके पास जमीन है, उन्हींको लाभ होता है; भूमिहीनों को कुछ नहीं। अवश्य ही पानी से पैदावार बढ़ती है, तो मजदूरों को भी ज्यादा मजदूरी मिलती है। किंतु उससे विषमता नहीं मिटती, परस्पर द्वेष कम नहीं होता। इसलिए जो यह सोचते हैं कि हम पैदावार बढ़ायेंगे, तो सब सुखी होंगे, वे पूरा नहीं सोचते। सुख के लिए साम्ययोग की ही स्थापना करनी होगी।

कुछ लोग कहते हैं कि सर्वत्र साम्ययोग कैसे स्थापित होगा? क्योंकि किसी-को ज्यादा भूख लगती है, तो किसीको कम। आखिर सब को समान खाना कैसे खिलाया जा सकता है? क्या मनुष्य और गाय को समान खाना खिलाया जायगा? किन्तु इस तरह पूछनेवाले साधारण विचार भी नहीं समझते। साम्ययोग का अर्थ यह नहीं कि विवेक ही न किया जाय या तर-तम-भाव ही न रखें। साम्ययोग की उत्तम मिसाल तो माता है। वह अपने सब बच्चों के लिए समान प्रेम रखती है। फिर भी २० साल के लड़के को ज्यादा रोटी खिलाती है, तो ५ साल के लड़के को कम। कोई लड़का बीमार हो, तो वह घर का सारा दूध उसीको देगी, तगड़े लड़के को न देगी। इसे 'विषमता' या 'भेद' नहीं, 'विवेक' कहते हैं। इस प्रकार का विवेक मनुष्य को हमेशा रखना ही पड़ता है। उसके बिना कोई काम हो ही नहीं सकता। सारांश, हमें विवेक के साथ साम्ययोग लाना होगा।

कुछ का जीवन-मान घटाना भी पड़ेगा

साम्ययोग के बिना दुनिया के प्रश्न कभी मिट नहीं सकते, वे गरीबी में भी कायम रहेंगे और अमीरी में भी। दोनों तरफ दो प्रकार के पाप होंगे। भले ही उस पाप का बाहरी स्वरूप बदले, पर आंतरिक रूप एक ही रहेगा। इसलिए हमें दुनिया के प्रश्न हल करने हों, तो वैज्ञानिक ढंग से ही साम्ययोग लाना होगा। इसके अनुसार जहाँ उत्पादन कम हो, वहाँ उसे बढ़ाना होगा और जहाँ नाहक किसी चीज की उत्पत्ति बढ़ायी जाती हो, वहाँ उसे कम करना होगा। कुछ लोगों की समृद्धि को घटाना होगा। कुछ समृद्ध पुरुष ऐच्छिक दारिद्र्य लें, तो उससे वे सुखी होंगे। एक डाक्टर के पास एक गरीब बीमार आया। डाक्टर ने उसे अपने पास रखकर खूब खिलाया-पिलाया और मजबूत बनाकर भेज दिया। डाक्टर की कीर्ति सुनकर एक श्रीमान् बीमार भी उसके पास आया। डाक्टर ने उसे कुछ दिन फाके कराये और फिर घी, शक्कर खाने की मनाही कर दी। श्रीमान् ने उससे कहा कि 'तुम गरीब पर प्रेम करते हो, मुझ पर नहीं।' तो, डाक्टर ने कहा : तुम्हारे शरीर का वजन बहुत बढ़ गया था, इसलिए तुम्हें घी-शक्कर की मनाही करना और तुम्हारा वजन घटाना ही तुम पर प्रेम करना है। उस गरीब को खाना नहीं मिलता था, इसलिए उसे अच्छी तरह खिलाना ही उस पर प्रेम करना था। इसी तरह जिन लोगों ने अपना 'स्टैंडर्ड' बहुत बढ़ा रखा हो, उन्हें जरा नीचे उतरना होगा, जीवन सादा बनाना होगा, तभी उन्हें आरोग्य-लाभ होगा।

हिंदुस्तान जैसे देश में उत्पादन बढ़ाना जरूरी है, परंतु उसके साथ यह भी देखना चाहिए कि किन चीजों को बढ़ाया जाय? आज हमारी बढ़िया-से-बढ़िया जमीन में तम्बाकू बोयी जाती है। आन्ध्र में कृष्णा-गोदावरी के बीच की उत्तम जमीन, कर्नाटक का धारवाड़ जिला, गुजरात का खेड़ा जिला, बिहार का गंगा-किनारे का प्रदेश आदि सबमें तम्बाकू पैदा की जाती है। इस तरह उत्तम जमीन का उपयोग तम्बाकू के लिए करने के मानी हैं, मिट्टी में से सोना निकालने के बदले कूड़ा-कचरा निकालना! लेकिन तम्बाकू विदेशों में भेजने से

पैसा मिलता है, इसलिए आज सरकार भी उसे उत्तेजन दे रही है। इस तरह गलत काम चलते रहेंगे, तो जीवन-मान बढ़ने पर भी खतरा रहेगा।

आज दुनिया में तरह-तरह के प्रश्न पैदा हो रहे हैं। कहीं भी शांति और समाधान नहीं है। हम मानते हैं कि गीता ने जिसका बार-बार जिक्र किया है, वह 'साम्ययोग' जब तक नहीं आता, तब तक दुनिया सुखी न होगी। हमारा यह दावा है कि हम भूमिहीनों को जमीन दिलाते हैं और भूमिवानों से जमीन माँगते हैं, इसमें दोनों पर प्रेम करते हैं।

चुनमपेट (चिंगलपेट)
२८-६-'५६

व्यक्तिगत मालकियत बनाम अहिंसा-शक्ति : ११ :

ईसा मसीह के शिष्यों ने सामूहिक जीवन का प्रयोग किया था। १०-२० लोगों ने इकट्ठा होकर अपनी व्यक्तिगत मालकियत छोड़ दी और अपना एक 'कम्यून' बनाया। 'कम्यूनिजम' शब्द उसीसे बना है। किंतु वह प्रेम का कार्य था और आजकल लोगों ने जो 'कम्यूनिजम' चलाया है, वह द्वेष पर खड़ा है। इसलिए इन दोनों में बहुत अन्तर है। माँ प्रेम से बच्चे को थपकियाँ लगाती है, तो बच्चे को वह अच्छा लगता है, उससे उसे नींद आती है। पर उसके बदले अगर कोई उसे तमाचा लगाये, तो अच्छा न लगेगा। माँ का प्रेम से थपकाना और दूसरे किसीका द्वेष से तमाचा जड़ना, दोनों में बहुत अन्तर है। इसी तरह इन दोनों में भी अन्तर है। ईसा के शिष्यों ने मालकियत छोड़ने का जो प्रयोग किया था, उसी तरह के प्रयोग अनेक सत्पुरुषों ने अनेक देशों में किये हैं। किंतु वे सारे व्यक्तिगत प्रयोग थे। आज विज्ञान के जमाने में सामूहिक प्रयोग करने चाहिए। विज्ञान में भी इसी तरह होता है। पहले प्रयोगशाला (लेबोरेटरी) में छोटे-छोटे प्रयोग होते हैं और वहाँ जो यशस्वी होते हैं, उनका अमल सामाजिक जीवन में होता है। किसीने एक अच्छी चक्की बनायी और यह सिद्ध हुआ कि वह अच्छा

काम देती है, तो वह सर्वत्र फैलेगी। चंद व्यक्तियों ने ही प्रयोग कर अंबर-चरखे जैसा एक उत्तम चरखा बनाया। अब उसे सर्वत्र फैलाने का काम चलेगा। इस तरह जो नये-नये शोध होते हैं, वे हमेशा छोटे पैमाने पर—व्यक्तिगत तौर पर, प्रयोगशाला में होते हैं।

व्यक्तिगत मालकियत छोड़ने में लाभ

व्यक्तिगत मालकियत छोड़े बिना अहिंसाशक्ति प्रकट न होगी, इसलिए पुराने सत्पुरुषों ने व्यक्तिगत मालकियत छोड़ने के प्रयोग कर उसका अनुभव लिया। उससे बहुत लाभ हुआ। फिर उन्होंने उसका एक शास्त्र बनाया, जो आज हमें उपलब्ध है। अब जमाना आया है कि मालकियत मिटाने का सामूहिक कार्यक्रम उठाया जाय। याने एक-एक गाँव के लोग अपने कुल गाँव को परिवार समझें। परिवार में बाप, माँ और लड़का कम-ज्यादा कमाई करते हैं, पर बाप यह नहीं कहता कि मैंने एक रुपया कमाया, इसलिए मैं एक रुपये का खाऊँगा। बाप का एक रुपया, माँ के आठ आने, लड़के के चार आने, सब मिलकर परिवार की सामूहिक कमाई बनती है। इसी तरह गाँव का परिवार समझकर अपनी-अपनी जमीन, संपत्ति, बुद्धि और शक्ति सब कुछ ग्राम-परिवार की सेवा में अर्पण करने का मौका अब आया है। सोचने की बात है कि परिवार में व्यक्तिगत मालकियत न रखने से क्या आपको कोई हानि हुई? बल्कि उल्टी बात है, याने इस दुःखमय संसार में भी कहीं आनंद है, तो घर में ही है। कुटुम्ब में व्यक्तिगत मालकियत त्याग देने से आपको दुःख नहीं, आनंद होता है। अब वही प्रयोग व्यापक कर दो और अपनी मालकियत गाँव को अर्पण कर दो, कृष्णार्पण करो। इस तरह ग्राम की सामूहिक मालकियत कर देने से कृष्णार्पण का जीवन बनेगा। हम जो कुछ करें, गाँव को समर्पण कर दें। फिर गाँव की तरफ से हमें जो प्रसाद मिलेगा, वह भगवत्प्रसाद होगा। उससे गाँव की ताकत बढ़ेगी।

कुछ लोग कहते हैं कि मालकियत मिटाने की बात कानून के खिलाफ है। किसीने मेहनत करके कमाई की, तो उसे छीन लेना कानून के खिलाफ होगा। किंतु जब मनुष्य अपने हाथ से मालकियत छोड़ता है, तो वह कानून के खिलाफ

नहीं है। इसीलिए हमारा आन्दोलन कानून के खिलाफ नहीं, बल्कि कानून के ऊपर है। इस तरह जब मनुष्य ऊपर के स्तर पर चढ़ेगा, तो कानून भी ऊपर चढ़ेगा। अपनी इच्छा से अपनी सेवाएँ समाज को समर्पण करने में हम कुछ खोयेंगे नहीं, बल्कि बहुत पायेंगे।

तिड़ीवनम् (द० अर्काट)
३-७-'५६.

'हमारा काम पूरा हुआ !' : १२ :

"हम तमिलनाड को कोरा कागज (blank cheque) देना चाहते हैं। जितने दिन आप बाबा का उपयोग करना चाहते हो, कर सकते हो। यहाँ आने पर हमने अपने लिए समय का कोई सीमा-बंधन नहीं रखा है। यह दक्षिण का अन्तिम प्रदेश है, इसलिए इस प्रदेश में यह कार्य भी अन्तिम सीमा तक पहुँचना चाहिए। भूदान-यज्ञ का उत्तर का यश लेकर हम यहाँ आये हैं। अब परिपूर्ण कीर्ति लेकर आगे बढ़ेंगे। हमारे धार्मिक लोग ऐसी ही यात्रा करते थे। गंगा का पानी लाकर रामेश्वर के सिर पर अभिषेक करते थे, तो आधी यात्रा हो जाती थी। फिर रामेश्वर से समुद्र का पानी लेकर काशी जाते थे और वहाँ काशी विश्वनाथ पर उसका अभिषेक करते थे, तब यात्रा पूरी होती थी। बिहार की लाखों एकड़ जमीन, लाखों दाता और उड़ीसा के हजार ग्राम-दान लेकर हम यहाँ आये हैं। अब यहाँ समग्र ग्राम-रचना का काम कर, उसे लेकर हम फिर उधर जाना चाहते हैं। बिहार में यह सिद्ध हुआ कि एक प्रांत में लाखों लोग लाखों एकड़ जमीन दे सकते हैं। उड़ीसा में यह सिद्ध हुआ कि हजारों ग्रामदान हो सकते हैं, जमीन की मालकियत मिट सकती है। अब एक तरह से हमारा काम खतम हुआ है। याने इस पद्धति से काम हो सकता है, यह सिद्ध हो गया। इससे ज्यादा एक मनुष्य क्या कर

सकता है ? इसलिए जहाँ तक हमारा ताल्लुक है, इस काम की परिणति हो चुकी है। इसीलिए हमने यहाँ भूदान के साथ दूसरे काम जोड़ने का सोचा है।

तिंडीवनम्
१-७-'५६.

गांधी-विचारवालों के पीछे तीन रिपु

: १३ :

गांधीजी के जाने के बाद हम पर बहुत बड़ी जिम्मेवारी आती है। हममें से कुछ लोग सरकार में गये हैं, उन्हें जाना था, जाना योग्य भी था। किंतु वहाँ जाने के बाद वे उसमें इस तरह फँस गये हैं कि मूल-विचार हाथ में रहता है या नहीं, ऐसी आशंका होने लगी है। आप ही सोचिये, हिन्दुस्तान में कितनी बार गोलियाँ चलीं। जिन्होंने यह कराया, वे गांधीजी के विचार को माननेवाले थे। वे कहते हैं कि लाचारी से ऐसा करना पड़ता है। पर जब 'गांधी-विचार' भी लाचार होता है, तो दुनिया को बचानेवाला दूसरा कौन-सा विचार है ? लेकिन इस तरह एक पक्ष मोह में फँसा है।

दूसरा पक्ष रचनात्मक काम में तो लगा है, लेकिन उनके काम को सरकारी मदद मिल रही है, इसलिए उनमें त्याग का माद्दा कम रहा है। रचनात्मक काम के लिए यह एक बड़ा खतरा है, ऐसा हम मानते हैं।

कुछ लोग भिन्न-भिन्न राजनैतिक पक्षों में हैं, जिनके पीछे चुनाव लगा है।

इस तरह हमारे ही लोगों के, जो गांधी-विचार को माननेवाले हैं, पीछे तीन रिपु लगे हैं। इस हालत में प्रश्न होता है कि गांधी-विचार कैसे बचेगा ? लेकिन हम निराश नहीं हैं। भगवान् ने कहा है कि जहाँ योग नष्ट हुआ, वहाँ वह फिर से अवतार लेता है। गांधी-विचार की ताकत नष्ट नहीं हुई है। भगवान् किसी-न-किसीको पैदा करता है, निमित्त बनाता है और विचार चलता है !

तिंडीवनम्
१-७-'५६.

भक्ति याने 'न मम'

भक्ति के दो प्रकार माने गये हैं। एक प्रकार ऐसा है, जिसमें भक्त परमेश्वर से चिपककर उसे पकड़ रखता है। उसके लिए प्रसिद्ध उपमा है, बंदर के बच्चे की। बंदर के बच्चे अपनी माँ से चिपके रहते हैं। भक्ति का दूसरा प्रकार वह है, जिसमें भक्त सब कुछ परमेश्वर पर छोड़ देता और मानता है कि जो कुछ करता है, परमेश्वर ही करता है। उसके लिए बिल्ली की मिसाल प्रसिद्ध है। बिल्ली का बच्चा अपनी ओर से कोई कोशिश नहीं करता, बिल्ली ही बच्चे को उठाती है।

हम अपनी बुद्धि से ईश्वर को पकड़े रहें

जब तक मनुष्य की बुद्धि चले, तब तक उसे ही अपनी ओर से ईश्वर को पकड़े रहना चाहिए। जब कि उसकी बुद्धि हर विषय में काम करती है, तब उसे उन विषयों से हटाकर ईश्वर में लगाना उसका काम है। किन्तु बुद्धि पूरी शान्त हो जाय, तो उस हालत में सारा कारोबार भगवान् पर सौंप देना पड़ता है। इस तरह भक्ति का यह दूसरा प्रकार ऊँचा प्रकार है। मनुष्य को यह तबतक सध नहीं सकता, जबतक परमेश्वर को अपनी ओर से मजबूत पकड़ने की उसकी वृत्ति न हो। जबतक मनुष्य व्यवहार करता और अनेक विषयों में पड़ा रहता है, तबतक भक्ति का काम ईश्वर पर छोड़ना केवल ढोंग होगा। पूरा प्रयत्न परमेश्वर पर छोड़ देना कोई छोटी बात नहीं है। हमें बुद्धि है और मन-इन्द्रियाँ हैं। वे सारी काम करती हैं। भूख की प्रेरणा होती है, तो हम उठते और भूख मिटाने का काम करते हैं। शौच की प्रेरणा होने पर उठकर बाहर चले जाते हैं। बारिश होती हो, तो घर के अंदर ही चले जाते हैं। इस तरह हम चौबीसों घंटे अपनी बुद्धि का उपयोग करते हैं, अपने लिए कोशिश करते रहते हैं। ऐसी स्थिति में हमने भक्ति परमेश्वर पर सौंप दी, यह कहना कोई अर्थ नहीं रखता। इसका मतलब यही होता है कि हम संसार का कार्य अपने प्रयत्न से करेंगे और सारा परमार्थ ईश्वर की मर्जी पर छोड़ देंगे। हिंदुस्तान में पारमार्थिक कार्य की

बात चलती है, तो बहुत-से लोग कहा करते हैं कि 'सब कुछ भगवान् करायेगा।' किंतु जीवन का कार्य तो हम निजी प्रयत्न से करते हैं। मतलब यह हुआ कि उनमें निज के कार्य के लिए जो प्रेम है, वह भगवत्-कार्य के लिए नहीं है।

भक्ति के बिना ईश्वरार्पण कैसे ?

हमारे लिए भक्ति का यही रास्ता है कि हम जितनी मजबूती से अपने जीवन को पकड़े हुए हैं, उतनी ही मजबूती से परमेश्वर को भी पकड़े रहें। परमेश्वर पर छोड़ देने की बात उसके बाद आयेगी। होना तो यह चाहिए कि हमने ईश्वर को पकड़ रखा है और उसका परिणाम उसके हाथ में सौंप देते हैं। इसलिए हमारे हाथ में एक काम है और ईश्वर पर हम दूसरा काम सौंपते हैं। जितना प्रयत्नवाद है, उतना हम अपनी ओर से करते हैं और उसका फल ईश्वर के हाथ में सौंप देते हैं। फल की बात तो प्रयत्न करने के बाद आती है, उसके पहले नहीं। इसी तरह ईश्वर पर सब कुछ सौंपने की बात तो तब आती है, जब हम ईश्वर को अच्छी तरह पकड़ रखें और फिर उसके फल का सवाल आये। इस तरह हमें अपना कर्तव्य करना है और फल ईश्वर पर छोड़ देना है। अगर हम भक्ति करना अपना कर्त्तव्य नहीं समझते, तो भक्त होने का दावा ही छोड़ देते हैं। फिर उस भक्ति के परिणामस्वरूप होनेवाली मुक्ति की वासना भी हमें न करनी चाहिए, उसे भी ईश्वर पर ही छोड़ देना चाहिए।

इसलिए भक्ति के ये जो दो प्रकार हैं, वे अलग-अलग मार्ग नहीं हैं। एक के बाद दूसरे का क्षेत्र आता है। आज हम ऐसी हालत में हैं कि हमने अभी भक्ति का आरंभ ही नहीं किया। जब हम उसका आरंभ करेंगे, उसमें स्थिर हो जायेंगे, तब उसके फल का सवाल आयेगा। फिर यह फल ईश्वर पर सौंपने की बात आयेगी। लेकिन जब हमने भक्ति का आरंभ ही नहीं किया, उसमें स्थिर ही नहीं हुए, उसका फल प्राप्त ही नहीं हुआ, तो ईश्वर पर सौंपने की बात आती ही नहीं। हमने बोया ही नहीं, तो फसल क्या आयेगी? हमने बोया ही नहीं और कहते हैं कि जो फसल आयेगी, वह ईश्वर को समर्पित करेंगे। जब बोया ही नहीं, तो क्या ईश्वर को घास अर्पण करेंगे? इसलिए जब हम

भक्ति का आरंभ ही नहीं करते, तो ईश्वरार्पण की बात ही नहीं आती। किंतु हिन्दुस्तान में ईश्वरार्पण की बात को करीब-करीब प्रयत्नहीनता का रूप आ गया है। वह एक केवल शब्द ही रह गया है, उसका अर्थ हम नहीं समझते। इस हालत में भक्ति की उत्पत्ति ही नहीं होती। जब भक्ति की उत्पत्ति ही नहीं होती, तो उसके फल के समर्पण का, कृष्णार्पण का सवाल ही नहीं पैदा होता।

ममता छोड़ने में ही भक्ति का आरंभ

हिन्दुस्तान में लोग मंदिरों में जाते हैं, पूजा-अर्चा बहुत चलती है, तीर्थ-यात्राएँ होती हैं। उनके लिए लोग बहुत पैसा खर्च करते और समय देते हैं। हम कबूल करते हैं कि इसमें कुछ थोड़ी श्रद्धा का अंश है, पर उसे 'भक्ति' का नाम नहीं दे सकते। वह तो बहुत ही छोटी चीज है। उतना भी हम न करें, तो हमारा जीवन नीरस ही बन जाय। यह समझना उचित न होगा कि हम पूजा-अर्चा आदि करते हैं, तो हमने भक्ति का आरंभ कर दिया। भक्ति का आरंभ तो तब होता है, जब हम *ममता को तोड़ना शुरू करते हैं, अपना अलग* जीवन नहीं रखते और समाज के जीवन में मिल जाते हैं। भक्ति का अर्थ ही यह है कि हम अपना जीवन सेवा में लगायें। हमारे जीवन का सेवा के बिना कोई उद्देश्य ही नहीं है। इस तरह भक्ति का आरंभ होने के बाद ईश्वरार्पण की बात आती है। आज की हालत में सारा संसार, सारा जीवन बिलकुल गलत ढंग से चल रहा है। ऐसी हालत में कुछ नामस्मरण कर लेना या स्तोत्र कह लेना तो बच्चों की-सी बात है। बच्चे स्तोत्र वगैरह बोलने लग जाते हैं, तो अच्छा लगता है। हमारा चौबीसों घंटे परिश्रम चल रहा है, वह अगर केवल हमारे और हमारे परिवार के लिए हो, तो उसमें भक्ति है ही कहाँ?

पूछा जा सकता है कि क्या भक्ति के लिए घर-द्वार छोड़ना पड़ेगा? नहीं उसकी जरूरत नहीं है। होना तो यह चाहिए कि अपने घर को भी 'सारे समाज का एक हिस्सा' समझें और सबकी सेवा के एक साधन के तौर पर उससे काम लें। सारा शरीर अच्छा चले, इसलिए हम पाँव में धँसा काँटा निकालते हैं, तो

हम पाँव की नहीं, शरीर की सेवा करते हैं। अगर वह पाँव काटकर अलग रखा जाय, तो उसमें धँसा काँटा निकालने की जरूरत न रहेगी। पाँव शरीर का हिस्सा है, इसीलिए वह काँटा सारे शरीर को तकलीफ देता है, यह सोचकर हम उसे निकालते हैं। अगर हम पाँव को शरीर से अलग समझेंगे, तो शरीर का प्रेम ही न रखेंगे। उस हालत में हम न तो शरीर की सेवा कर सकेंगे और न पाँव की ही। अगर कोई शख्स पाँव को मजबूत बनाने के लिए खूब बैठकें लगाता हो, पर यह कहकर पेट को न खिलाये कि पेट के साथ मेरा क्या संबंध है, तो पाँव भी क्षीण हो जायँगे। इसी तरह अपना घर समाज का एक अंग है, यह समझकर हम घर की सेवा करें, तो वह समाज-सेवा का ही अंश होगा।

भक्ति याने 'न मम'

हमें मुख्य चिंता कुल समाज की सेवा की होनी चाहिए और अगर हम गाँव में रहते हैं, तो गाँव की सेवा की होनी चाहिए। अपने परिवार के पास जो कुछ हो, वह सब समाज की सेवा में लगाना चाहिए। अपने बच्चे की तालीम का इन्तजाम करना है, तो उसके निमित्त से गाँव के कुल लड़कों की तालीम की चिंता करें, तो भक्ति का आरंभ होगा। इसलिए जहाँ मनुष्य अपनी ममता को काटता है, वहाँ भक्ति का आरंभ हो जाता है। भक्ति का कुल अर्थ है : **'न मम'**, यह मेरा नहीं है, अर्थात् परमेश्वर का है, सारे समाज का है। जब हमें यह भावना लगे कि 'यह शरीर, यह घर, ये बाल-बच्चे, जो मेरे माने जाते हैं, मेरे नहीं, सारे समाज के हैं। इसलिए अगर हम उनके पोषण की योजना करते हैं, तो समाज-सेवा के लिए ही करते हैं,' तो भक्ति का आरंभ हो जाता है। उसके बाद 'मैं भक्ति करनेवाला हूँ, उसका फल मुझे मिलना चाहिए, मुझे मुक्ति चाहिए' ये सब वासनाएँ ईश्वर पर सौंप देनी चाहिए। इसीको 'ईश्वरार्पण' कहते हैं। याने भक्ति का फल ईश्वर को सौंपना है। हम भक्ति करते ही नहीं, तो फल ईश्वर के हाथ में क्या सौंपेंगे ?

सामान्य श्रद्धा और भक्ति

यह जो भासता है कि 'हम नामस्मरण आदि करते हैं, मंदिर जाते हैं,

तो भक्ति होती है', यह बिलकुल गलत है। यह तो केवल बच्चों की क-ख-ग अक्षर सीखने जैसी बात हो गयी, वह कोई साहित्य का अध्ययन नहीं हुआ। सामान्य नाम-स्मरणादि केवल अक्षर-पाठ हैं। उनसे भी मनुष्य को लाभ हो सकता है, भक्ति के लिए श्रद्धा पैदा हो सकती है। इस तरह नाम-स्मरणादि से जिसका हृदय श्रद्धावान् बना हो, वह भक्ति के लिए तैयार हो सकता है। इसलिए हिन्दुस्तान में अभी 'भक्तिमार्ग' के नाम से जो चलता है, वह भक्ति नहीं, बल्कि थोड़ी-सी श्रद्धा टिकाने की बात है। इसके लिए भी हम अपने देश का गौरव समझते हैं कि इतनी श्रद्धा तो यहाँ कायम है। इसीके आधार पर हम भक्तिमार्ग की स्थापना करने की हिम्मत करते हैं, अगर यह सामान्य श्रद्धा ही नहीं होती, तो भक्तिमार्ग का आरंभ ही न हो पाता।

हमने देखा है कि हमारी सभाओं में हजारों लोग—बच्चे, बूढ़े, भाई, बहन—अत्यन्त शान्ति से और श्रद्धा हमारी बात सुनते हैं। हम उन्हें कोई भोग नहीं दिलाते, बल्कि त्याग की बातें सुनाते हैं। जमीन, संपत्ति, श्रमशक्ति, बुद्धि आदि का दान देने के लिए कहते हैं। पर कोई मंत्री गाँव में आता है, तो आप उसे पुल बनाने या स्कूल, दवाखाना खोलने के लिए कहते हैं। याने आप उससे कुछ-न-कुछ माँग ही करते हैं। वह भी आपकी माँग पूरी करने का वादा करता है। फिर वह उसे पूरी करे या न करे, यह तो भगवान् ही जाने, पर कबूल अवश्य करता है। सारांश, उससे आप लेने की बात करते हैं। लेकिन हम तो आपको देने की बात समझाने आये हैं। भारत में आज जो सर्वसामान्य श्रद्धा है, वह भी न होती, तो हमारी त्याग की बात सुनने के लिए कोई नहीं आता। इसलिए हमारे मन में उस श्रद्धा के लिए आदर है। फिर भी अगर लोग सदासर्वदा क-ख-ग ही रटते रहेंगे, साहित्य में पढ़ेंगे ही नहीं, तो कैसे चलेगा? मनुष्य जिन्दगी भर भगवान् के मंदिर में जाकर नमस्कार करता है, पर उसके जीवन पर उसका कोई परिणाम नहीं होता। वह दूकान में जाकर बैठेगा, व्यापार करेगा, तो वैसा ही झूठ चलायेगा, जैसा कि दूसरे चलाते हैं। अब क्या वह जो सारा झूठ बटोरा होगा, उसे भगवान् को अर्पण किया जायगा? तात्पर्य यह कि जिस चीज का व्यवहार और जीवन पर कोई

परिणाम नहीं होता, वह भक्ति ही नहीं है। भक्ति का लक्ष्य यही है कि उसका जीवन पर परिणाम होता है। भक्त का हृदय करुणावान् बनता है, उसे छीन लेने की नहीं, बल्कि देने की प्रेरणा होती है। उसे यही चिन्ता रहती है कि किस तरह मैं चंदन की तरह समाज-सेवा में घिस जाऊँ।

करुणा और व्यवस्था

जहाँ त्याग की भावना आती और हृदय में करुणा पैदा होती है, वहाँ भक्ति का आरम्भ होता है। भक्ति का सर्वोत्तम लक्षण यही है। इसलिए हमारा दावा है कि भूदान-यज्ञ से भक्तिमार्ग की स्थापना होगी, क्योंकि इसके जरिये हरएक को करुणा का शिक्षण दिया जा रहा है। अगर दुनिया में करुणा के लिए अवकाश न रहता, तो वह जीने लायक ही न रहती। हमें किसी को कुछ देने का, किसी पर प्यार करने का, किसी के लिए त्याग करने का मौका मिलता है; इसीलिए जीवन में रुचि है। कल अगर देश में ऐसी कोई योजना हो कि करुणा के लिए कोई अवकाश ही न रहे, तो मुझे जीने की कोई रुचि न रहेगी। यूरोप के लोग दूसरे ढंग से सोचते हैं। वे नहीं समझते कि करुणा की भी कोई जरूरत होती है। उन्हें तो व्यवस्था की ही जरूरत मालूम होती है। हम भी व्यवस्था की जरूरत तो समझते हैं, परंतु करुणा की जगह व्यवस्था को देना नहीं चाहते।

कुछ लोग कहते हैं कि 'गरीबों के लिए दरिद्रालय (पुअर हाउसेज) खोल देने चाहिए और उन्हें वहाँ जाने के लिए कहना चाहिए। गरीबों पर करुणा रखने और उनकी सेवा करने का मौका न आये, इसलिए यह व्यवस्था कर देनी चाहिए। हम समझते हैं कि इस तरह करुणा की जगह व्यवस्था को दी जाय, तो जीवन नीरस बन जायगा। पर वे लोग उल्टा सोचते हैं। वे समझते हैं कि मनुष्य पर करुणा का प्रसंग आना समाज-रचना की न्यूनता है। अच्छी समाज-रचना में कभी करुणा का प्रसंग न आयेगा, वह बला न आयेगी। हम कहते हैं कि व्यवस्था जरूर अच्छी की जाय, पर हर हालत में करुणा के लिए अवसर बना रहे। अगर करुणा का मौका ही न आये, तो हम

समझेंगे कि मनुष्य की जरूरत ही नहीं रही। फिर हमारे जन्म की जरूरत ही क्या रही? परमेश्वर अगर चाहेगा, तो मनुष्य को जन्म दिये बिना ही दुनिया की व्यवस्था कर लेगा।

मान लीजिये कि इतनी अच्छी व्यवस्था हो जाय कि हमारे लिए कुछ काम ही न रहे, भगवान् स्वयं ही हर पेड़ को पानी देने की व्यवस्था कर लें, मुझे पेड़ को पानी देने की जरूरत न रहे, तो पेड़ मेरी तरफ देखते रहेंगे और मैं उनकी तरफ। मुझे भूख लगेगी, तो पेड़ मेरे पास न आयेंगे और पेड़ों को कुछ हुआ, तो मैं भी उनके पास न जाऊँगा। इसका मतलब यह हुआ कि पेड़ आज जिस हालत में हैं, उसी हालत में मैं भी आ जाऊँगा। फिर मनुष्य-जन्म की खूबी और रुचि ही क्या रही? अगर इतनी आदर्श व्यवस्था हो जाय कि बच्चों को तुलसी के पेड़ को पानी देने की जरूरत ही न रहे, तो हमारे जीवन को कार्य ही क्या रहेगा? भगवान् ने सृष्टि की रचना की है, उसमें भी बहुत अपूर्णता रखी है। हमें भूख लगती है, यह भी ईश्वर की योजना की न्यूनता ही मानी जायगी। किंतु अगर ईश्वर ऐसी परिपूर्ण योजना कर देता कि हमें कुछ भी काम करने को बाकी न रहता, तो हमारा जीवन भी व्यर्थ हो जाता।

इसीलिए हम कहना चाहते हैं कि समाज की व्यवस्था उत्तम करो, पर कितनी भी उत्तम व्यवस्था हो, तो भी करुणा की जरूरत रहेगी ही। इस करुणा को ही हम भक्ति का आरंभ समझते हैं। इस भक्ति का आपके हृदय को स्पर्श होगा, तो भूदान का काम शीघ्र हो जायगा।

किलियापुर (दक्षिण अर्काट)
५-७-'५६.

हम अपने इन शब्दों को महत्त्व नहीं देते। हम व्याख्यान को गौण समझते हैं। हर गाँव में यही देखते हैं कि कोई चैतन्यवान् प्राणी है या नहीं? वे हर जगह होते हैं। जैसे लोहचुंबक लोहकणों को खींच लेता है, वैसे ही गाँव-गाँव के सज्जनों को खींचने की शक्ति हममें होनी चाहिए।

दो बार घूमने का रहस्य

आज एक भाई ने हमसे पूछा: 'आपने दो बार घूमने का शुरू किया है, तो पाँच बजे तक आपका घूमने का ही कार्यक्रम चलेगा। फिर गाँव में क्या काम होगा? घूमना ही मुख्य काम हो जायगा। इस तरह क्या आप शरीर को तकलीफ दे-देकर लोगों पर असर डालना चाहते हैं?' मैंने उनसे कहा: 'जिसे आप घूमना कहते हैं, वह हमारी प्रार्थना है। श्रुति की आज्ञा है कि घूमते रहो: "चरैवेति, चरैवेति।" इसीलिये हम घूमते रहते हैं। घूमते रहने से ही कार्य होता है, सो नहीं, बैठे-बैठे भी काम हो सकता है। लेकिन हमें ऐसी प्रेरणा हुई और हम लोगों के पास जाते हैं, तो हमें अच्छा लगता है और लोगों को भी अच्छा लगता है।' उन्होंने यह भी कहा कि 'दो-दो बार घूमा करेंगे, तो गाँव में जाकर बातें करना, झाड़ू लगाना आदि न कर सकेंगे।' इस पर हम यह कहना चाहते हैं कि ऐसे बाह्य कार्यों पर हमारा ज्यादा विश्वास नहीं है। यह नहीं कि ये काम गलत हैं, पर उनकी शक्ति सीमित है। मुख्य शक्ति तो अन्तर की है, भगवद्भक्ति की है। हमारी यात्रा भगवद्प्रार्थना के तौर पर चल रही है और उतने से हमारे हृदय को प्रसन्नता होती है। हम नहीं समझते कि बहुत ज्यादा लोगों के साथ चर्चा करेंगे, तो उसका असर होगा। यह ठीक है कि लोक-संपर्क होना चाहिए। वह तो हो ही जाता है, बाकी कार्य भगवद्प्रार्थना से होते हैं।

हमारा सब कुछ प्रार्थना

वैसे प्रार्थना बैठकर भी हो सकती है, परंतु हम घूमकर प्रार्थना करना

पसंद करते हैं, क्योंकि इसमें आलस्य करने का कोई संभव नहीं रहता। हमें सब लोगों के दर्शन होते हैं। हिन्दुस्तान के लोगों में यह पागलपन है कि वे समझते हैं कि दर्शन से कुछ मिलता है। मुझे भी वैसा ही विश्वास है। आप लोगों के दर्शन होते हैं, उसी से मेरा काम होगा। दो-दो बार घूमूँगा, तो ज्यादा लोगों का दर्शन होगा। तात्पर्य यह है कि बाहर की कृतियों से ज्यादा काम नहीं होता, अन्तर की प्रेरणा से ही होता है। हम तो केवल आप लोगों के दर्शन के लिए घूमते है। उससे हमें तृप्ति होती है। हमारा ध्यान इसी तरफ होता है कि हम कितने लोगों को प्रेम से खींचते हैं। हमारा अनुभव है कि कुछ-न-कुछ खींचे जाते हैं, यह भी हम करते हैं, सो नहीं। वह तो करनेवाला करता है। पर हम घूमते हैं, तो हमारे लिए एक सिद्धि होती है, हमें एक साधना मिल जाती है, एक निमित्तमात्र कार्य हो जाता है। किंतु हमारा घूमना घूमना नहीं, हमारा बोलना बोलना नहीं और हमारी चर्चा चर्चा भी नहीं है। हमारा घूमना, फिरना, चर्चा करना आदि जो कुछ भी है, सब भगवद्प्रार्थना है।

ओलिपिडयम पट्,
६-७-'५६.

: १५ :

सामूहिक साधना

योगी एकांत में बैठकर ध्यान-चिंतन करता है। वही चिंतन सब लोग मिलकर भी कर सकते हैं। इस सामूहिक चिंतन से अपार लाभ होता है। कोई भी साधना जबतक व्यक्तिगत रहती है, तब तक उसकी शक्ति सीमित रहती है। जब उसे सामूहिक रूप आता है, तो उसकी असलीयत प्रकट हो जाती है। वास्तव में हम किसी एक शरीर में कैद नहीं, व्यापक हैं। हम किसी बंगले में रहते हैं, तो उसमें से एक ही कोठरी में हमारा निवास होता है। इसी तरह सब देह में रहते हुए भी एक विशेष देह में हम रहते हैं। किंतु अगर पूछा जाय कि कहाँ रहते हो? तो जवाब मिलता है: "फलाने-फलाने मकान में।" यह सही है कि उस घर की एक कोठरी में हमारा निवास है, फिर भी उस घर में जितनी कोठरियाँ हैं, सभी को हम अपनी ही गिनते हैं।

सामूहिक भोग से त्याग

वास्तव में साधना तो व्यक्तित्व के निरसन में ही होती है। हम अपना जो व्यक्तिगत जीवन समझते हैं, जिसमें भोग आदि बातें आती हैं, वह भी अगर सामूहिक समझा जाय, तो उसमें निवृत्ति होती है। जब भोग भी सामूहिक तौर पर बँट जाता है, तो उस भोग का निरसन हो जाता है, उसे त्याग का रूप आ जाता है। भोग त्याग की बराबरी में आ जाता है। इसी तरह अगर अपनी आध्यात्मिक उन्नति की कामना भी व्यापक हो जाय, तो दोषनिवृत्ति हो जाती है। जैसे मेरा घर, मेरा भोग आदि अहंकार, एक व्यक्ति में प्रकट होते हैं, वैसे मेरी उन्नति, मेरी साधना, मेरी मुक्ति, यह भी अहंकार की वस्तु हो जाती है। फिर भी इसमें कोई शक नहीं है कि जिस कोठरी में हम रहते हैं, उसकी जिम्मेवारी हम पर होती है। इसलिए उसे स्वच्छ रखना हमारा कर्तव्य होता है। यों तो हमारी जिम्मेवारी कुल घर की है, पर खास कोठरी साफ करने की जिम्मेवारी ज्यादा आती है। इसी तरह यद्यपि व्यक्तिगत साधना की जिम्मेवारी हरएक पर विशेष रहती है, तो भी साधना का दोष तब मिट जाता है, जब साधना सामूहिक होती है। इसलिए भक्ति सामूहिक ही जाननी चाहिए। ध्यान, योग, चिंतन, सद्‌गुण आदि सब कुछ सामूहिक होने चाहिए। यह ठीक है कि कोई भी चीज सामूहिक होने के पहले व्यक्ति की प्रयोगशाला में उसका प्रयोग होता है; किंतु प्रयोगशाला में जो संशोधन होता है, वह कुल समाज के लिए होता है।

हमारे पूर्वजों ने और आज भी कई बड़े पुरुषों ने व्यक्तिगत तौर पर अनेक प्रकार की साधनाएँ आजमायीं और अच्छे तरीके ढूँढ निकाले। अब विज्ञान के इस जमाने में समय आया है कि वह साधना बाँट दी जाय।

सामूहिक दान से अभिमान-मुक्ति

भूदान, संपत्तिदान आदि पहले कभी न हुए, ऐसी बात नहीं। ये पहले भी हुआ करते थे। कुछ लोग गरीबों को प्रेम से दान देते थे और ब्राह्मणों, मंदिरों को जमीन देते थे। इस तरह स्पष्ट है कि दान की यह बात कोई नये सिरे से शुरू नहीं हुई है। फिर भी पहले के दान व्यक्तिगत गुण पर चलते थे, इसलिए उनकी शक्ति सीमित होती थी। उनसे इस दुनिया में कुछ अच्छा काम जरूर

बनता था। इस दुनिया में बहुत ज्यादा अच्छा न बना, तो वे यह समाधान भी कर लेते थे कि उसका अच्छा फल परलोक में मिलता है। इसमें कोई शक नहीं कि इन व्यक्तिगत पवित्र कार्यों का कुछ-न-कुछ अच्छा परिणाम होता ही था, किंतु भूदान और संपत्तिदान में सामूहिक तौर पर यह साधना की जाती है। आज तक करीब पाँच लाख से ज्यादा लोगों ने दान दिये हैं और हमारी कोशिश है कि हिन्दुस्तान में कम-से-कम तीन करोड़ परिवारों (घरों) से दान मिले। हिन्दुस्तान में कुल छह करोड़ परिवार होंगे और उसमें से तीन करोड़ लोगों के पास कम-ज्यादा जमीन अवश्य होगी। इतने व्यापक परिमाण में हम भूदान चाहते हैं। इसी तरह संपत्तिदान भी हरएक से चाहते हैं। बच्चा भी रोज आधा घंटा कातेगा, तो महीनेभर में १५ घंटे देश को दे सकेगा। उसकी यह उपासना होगी, धर्म-बुद्धि की योजना होगी। बच्चा रोज आधा घंटा कातता है, तो महीनेभर में एक रुपये की या कम-से-कम आठ आने की तो कमाई दे सकता है। मतलब यह कि बच्चा भी श्रमदान के तौर पर संपत्तिदान दे सकता है। इस दान के परिणाम का उतना महत्त्व नहीं, जितना कि इस बात का है कि बच्चा यह महसूस करेगा कि मैंने समाज के लिए कुछ समर्पण किया। इस तरह सारा समाज-समूह ही समर्पण करता है, तो अहंकार खत्म हो जाता है। सब लोग भोजन करते हैं, तो किसी को भोजन का अहंकार नहीं होता। किन्तु व्यक्तिगत तौर पर दान देने पर 'मैं दाता और मैंने दान दिया' इस प्रकार का अभिमान रह जायगा। यहाँ तक होता है कि एक योगी को भी दूसरे योगी की कीर्ति सुनने पर मत्सर होता है। इस तरह यह अभिमान बड़ा सूक्ष्म होता है।

जिसे हम व्यक्तिगत-साधना कहते हैं, उसमें भी बड़ा खतरा और डर रहता है। लेकिन वह चीज जब सामूहिक तौर पर होती है, तो उसका अहंकार क्षीण हो जाता है। विज्ञान के जमाने में अब व्यक्तिगत अहंकार के लिए बहुत अवकाश नहीं। करीब-करीब यही कहना होगा कि इसके लिए अब ज्यादा जगह नहीं रहेगी, क्योंकि विज्ञान के कारण दुनिया में व्यापक शक्तियाँ फैल गयी हैं और फैल जायँगी। उसके अनुपात में जब आत्मज्ञान की शक्तियाँ भी सामूहिक तौर पर प्रकट होंगी, तभी हम विज्ञान पर अंकुश रख सकेंगे, अन्यथा नहीं।

सामूहिक गुण-विकास का आंदोलन

आज भूदान और संपत्तिदान लाखों लोगों का दिल खींच रहा है, क्योंकि यह एक सामूहिक गुण-विकास का आन्दोलन है। केवल करुणा-बुद्धि से सारे समाज की सेवा में अपनी अल्प ताकत समर्पित करने की बात है। उस सेवा का भी कोई अहंकार नहीं है। आज इसी दृष्टि से देखने वाले कार्यकर्ता बढ़ रहे हैं कि हम क्या सेवा करेंगे? सेवा तो महान् पुरुष अपनी लोकसंग्रह की शक्ति से करते हैं। हम तो अपना कर्जा दे रहे हैं। हमने समाज से भर-भरकर पाया है। जन्म से आजतक समाज के अनंत उपकार लिये हैं। उन उपकारों का थोड़ा-सा बदला देते हैं, तो उसे सेवा का नाम भी क्या देना? यह तो ऋण-मुक्ति का अल्प प्रयत्न है। इस आन्दोलन में लाखों लोगों ने दान दिया, लेकिन हम महत्त्व इसी बात को देते हैं कि इसमें अनेक साधक कूद पड़े हैं।

इरम्बाई (दक्षिण अर्काट)
७-७-'५६

आजादी से दिल जुड़ते हैं

: १६ :

यह एक छोटी-सी जगह है, पर इसके साथ एक सभ्यता जुड़ी हुई है। फ्रांसीसी लोगों का अपना एक संस्कार है, जो इस भूमि को प्राप्त है। हमें इस संस्कार की कुछ कल्पना, कुछ अनुभव प्राप्त हैं। क्योंकि जब हम कॉलेज आदि में अध्ययन करते थे, तब हमारी 'सेकण्ड-लैंग्वेज' फ्रेञ्च थी। उन दिनों फ्रेञ्च भाषा और साहित्य का हमें काफी परिचय हुआ। यद्यपि बीच में विस्मृति के ४० साल गये, इसलिए अब हमारा वह फ्रेञ्च का ज्ञान खो गया है, फिर भी फ्रांसीसी लोगों ने दुनिया को कुछ देनें दी हैं, उन्हें हम कैसे भूल सकते हैं। उन्होंने दुनिया को 'पाश्चर' जैसे महान् वैज्ञानिक दिये हैं, 'रूसो' जैसे क्रांतिकारी वहाँ पैदा हुए हैं, 'विक्टर ह्यूगो' जैसे महान् साहित्यिक वहाँ हुए हैं और 'पास्कल' जैसे तत्त्वज्ञानी वहाँ से निकले हैं। इस तरह की जो देनें फ्रांसीसी लोगों ने दी हैं, उनके लिए हम कृतज्ञ हैं।

*विचारों और संस्कारों की लेन-देन बढ़े

भारत का गौरव हरएक भारतवासी जानता है। भारतीय साहित्य की तुलना हम दुनिया के किसी साहित्य से नहीं कर सकते। विशेषकर वेदों से लेकर उपनिषद्, गीता, वेदान्त आदि जो महान् तत्त्वज्ञान संस्कृत में मिलता है, उसकी मिसाल दुनिया में अन्यत्र नहीं। भारत का इतना गौरव होने पर भी हमें बाहर से लेने की बहुत-सी चीजें हैं। हम यह नहीं कह सकते कि हम पूर्ण हैं और हमें कहीं से कुछ लेना ही नहीं है। हाँ, हम पूर्ण होना चाहते जरूर हैं। इसलिए जहाँ-जहाँ जो-जो अच्छाई मिलेगी, उसका हमें संग्रह करना चाहिए। हिंदुस्तान में ढाई सौ साल से अंग्रेजी भाषा चली और हमें उसका काफी ज्ञान हुआ। इसके लिए हम उनका उपकार मानते हैं। इसी तरह फ्रांसीसी लोगों ने भी हमें काफी चीजें दी हैं, जिसके लिए हम उनका भी उपकार मानते हैं। ऐसी सभी अच्छी चीजें हमें अपने में जोड़नी चाहिए। हम चाहते हैं कि दूसरे राष्ट्र भारत की भी अच्छी चीजें लें। मैं कोई बाहरी सामान की बात नहीं करता, वह व्यापार तो चलेगा ही। किंतु मैं एक आध्यात्मिक व्यापार की बात करता हूँ। हमें बाहर से काफी लेना है और उन्हें भी हमसे बहुत कुछ लेना है। इस तरह विचारों की और संस्कारों की लेन-देन जितनी बढ़ेगी, उतनी हम बढ़ाना चाहते हैं। हम संकुचित नहीं बनना चाहते, छोटे नहीं बनना चाहते। हम अपने जीवन के इर्द-गिर्द कोई बाड़ लगाना नहीं चाहते, अपने देश के इर्द-गिर्द 'सिग्फ्रिड' और 'मैजिनो लाइन' खड़ी करना नहीं चाहते। हम चाहते हैं कि हमारे और दूसरे देशों के बीच विचारों का आदान-प्रदान खूब चले। भूदान-यज्ञ का सिद्धान्त है कि कुल दुनिया सबके लिए है। इसलिए यहाँ विचारों के आदान-प्रदान में कोई रुकावट न होनी चाहिए।

सत्ता के कारण सद्विचार के प्रचार में रुकावट

हम जरूर चाहते हैं कि पांडिचेरी में 'फ्रेंच-कल्चर' (फ्रांसीसी संस्कृति) की विशेषता चले। हम उसकी उपासना करें, उसका पोषण करें, उसका शोधन

और उसकी पूर्ति करें। हम फ्रेञ्च-संबंध जरूर रखना चाहते हैं। आप देखते हैं कि भारत आजाद हुआ, फिर भी हमारा इंग्लैण्ड के साथ बहुत अच्छा संबंध है। हम ऐसा ही संबंध बढ़ाना चाहते हैं, किन्तु इसके लिए यह जरूरी नहीं कि एक देश दूसरे देश का कब्जा रखे। मेरा विचार आप समझें, इसलिए यह जरूरी नहीं कि मेरी आप पर हुकूमत चले। इसके विपरीत जब आप पर मेरी सत्ता न हो, तभी मैं आपको अपना विचार अच्छी तरह से समझा सकता हूँ। बाबा हमेशा कहता है कि उसकी आज्ञा कहीं न चले। वह तो विचार समझाना चाहता है और यह भी चाहता है कि लोगों को विचार कबूल करने या न करने की स्वतंत्रता रहे। जहाँ यह स्वतंत्रता नहीं होती है और किसी पर हमारी सत्ता चलती है, वहाँ वास्तव में हम सद्‌विचार दे ही नहीं सकते।

आप देखते हैं कि जब हिन्दुस्तान पर इंगलैण्ड की सत्ता थी, तो यहाँ अंग्रेजी भाषा के खिलाफ काफी वृत्ति थी। किंतु आज जब कि वह सत्ता नहीं रही, तो हम अंग्रेजी की महिमा अच्छी तरह समझते हैं। यह नहीं हो सकता कि कुल हिन्दुस्तान के लोग नाहक ही अंग्रेजी पढ़ा करेंगे। किंतु जो अंग्रेजी सीखेंगे, वे अच्छी तरह सीखेंगे, आदरपूर्वक सीखेंगे और उससे पूरा लाभ उठायेंगे। हम जानते हैं कि आज हिन्दुस्तान में अंग्रेजी की इज्जत पहले से ज्यादा है और हम उसे समझते हैं। आज उनकी सत्ता, वह जुल्म नहीं रहा, हम आजाद हुए हैं। जो अंग्रेजी सीखना नहीं चाहते, उनके सिर पर वह लादी न जायगी। पहले तो छोटे-छोटे काम के लिए भी अंग्रेजी सीखनी पड़ती थी, पर अब वैसा नहीं होगा। किंतु साहित्य के लिए, दुनिया के साथ संबंध रखने के लिए, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए, हम अंग्रेजी जरूर सीखेंगे और बहुत आदर के साथ सीखेंगे।

हिन्दुस्तान के लोग ज्ञान के प्यासे हैं। जब कि सारी दुनिया में विद्या का प्रसार नहीं था, उस समय में भी हिन्दुस्तान के लोग विद्या की उपासना करते थे। इसलिए हम अंग्रेजी की तरह फ्रेञ्च भाषा का भी अध्ययन करेंगे और फ्रेञ्च साहित्य तथा संस्कार को ग्रहण करना चाहेंगे। फ्रांसीसियों ने अक्ल के साथ पांडिचेरी की सत्ता छोड़ दी, इसलिए उनकी संस्कृति का अच्छी तरह ग्रहण होगा। क्योंकि उसमें कुछ अच्छाई और कुछ सच्चाई है, इसलिए हम उसे

छोड़ना न चाहेंगे। ३०० साल से यहाँ संस्कृति का एक सुंदर केन्द्र बना है, उसे हम तोड़ना नहीं चाहेंगे, बल्कि उसका पोषण और विकास ही करना चाहेंगे। किंतु यह तब बनता है, जब हम कोई चीज किसी पर लादते नहीं।

आजादी की महिमा

भूदान-यज्ञ की सत्ता लोगों पर बहुत चलती है। हम जहाँ-जहाँ जाते हैं, वहाँ हजारों लोग उत्सुकता से हमारी बातें सुनते हैं। कारण बाबा किसी पर कोई विचार लादता नहीं, प्रेम से समझाता है। बाबा के हाथ में कोई सत्ता नहीं है, वह सत्ता नहीं चाहता और न उसकी सत्ता पर श्रद्धा ही है। यह सबसे बड़ी बात है। किसी को हमारी बात नहीं जँचती, इसलिए वह उसे नहीं मानता, तो वह हमें प्यारा है। किसी को हमारी बात जँचती है, इसलिए वह उसे मानता है, तो वह भी हमें प्यारा है। इसीलिए हम दिल खोलकर अपनी बातें लोगों के सामने रखते और लोग कान खोलकर उन्हें सुनते हैं। वे जानते हैं कि इसमें उन्हें पूरी आजादी है। आजादी की यह महिमा है कि उससे लोगों के दिल जुड़ जाते हैं। अगर दुनिया के सब देशों में आजादी रही तो परस्पर संबंध बहुत बढ़ेगा। किंतु 'स्वतंत्रता' का अर्थ केवल राजनैतिक आजादी नहीं, बल्कि विचार-स्वतंत्रता ही सच्ची स्वतंत्रता है; इस बात को लोग समझेंगे, तो दुनिया के आधे दुःख मिट जायँगे। कितनी खुशी की बात है कि फ्रासीसी लोगों का हिन्दुस्तान के लोगों के साथ प्रेम-संबंध बन रहा है। पोर्तुगीजों के साथ भी वैसा ही प्रेम-संबंध बन सकता है, अगर वे भी फ्रासीसियों की तरह अक्ल से काम लें।

आर्य-द्रविड़-वाद बेबुनियाद

हिन्दुस्तान के लोगों में कुछ गुण हैं और कुछ दोष भी। उनमें एक बड़ा भारी गुण यह है कि वे बुराई को जल्द-से-जल्द भूल जाते हैं। अंग्रेजों ने २५० साल हिन्दुस्तान पर कब्जा रखा था, तो कितने बुरे काम हुए। किंतु आज इंगलैंड के साथ हिन्दुस्तान का मधुर संबंध है। पुरानी गलत बातें लिख रखने का हमें अभ्यास ही नहीं है। आजकल जिसे 'इतिहास' नाम दिया जाता

है, उसमें दुनिया भर का सारा कूड़ा-कचरा इकट्ठा किया जाता है और वह सारा का सारा बेचारे बच्चों पर लादा जाता है। यह पश्चिम के लोगों ने ही शुरू किया है। हिन्दुस्तान के लोगों को इतिहास का शौक नहीं था। संस्कृत भाषा में अध्यात्मशास्त्र, संगीत, वैद्यकशास्त्र, आदि जीवन के अनेक विषयों पर हज़ारों ग्रंथ लिखे गये हैं, परन्तु आधुनिक अर्थ में जिसे 'इतिहास' कहते हैं, उसपर कुछ नहीं लिखा गया है। फलाना राजा कब मरा, इसे याद रखने की जिम्मेदारी हम जिन्दा लोगों पर क्यों लादें? क्या मरे हुए लोगों की याद रखने के लिए ही हम जनमे हैं? क्या भगवान् ने हमारे लिए कोई पुरुषार्थ नहीं रखा? हिन्दुस्तान के लोग इतिहास नहीं जानते। हिन्दुस्तान में हज़ारों राजा हुए, कई बड़े-बड़े राजा हुए, लेकिन हमारी जनता उनके नाम भी नहीं जानती। कुल हिन्दुस्तान में एक ही राजा का नाम मालूम है। राजा राम, राजा राम।

'राजा राम' का अर्थ यह न समझें कि वह कोई आर्य राजा था। वह तो हृदय का राजा है। हमारे हृदय में जो महामोह रावण है, उसका विनाश करनेवाला है। उसमें आर्य-द्रविड़-संघर्ष की कोई बात नहीं। यह भेद भी पश्चिम के लोगों ने ही निकाला है। यहाँ जितने भेद हो सकते थे, उतने पैदा करने की उन्होंने कोशिश की। हिन्दू और मुसल्मानों में पहले से कुछ थोड़ा भेद था, फिर भी काफी प्रेम-संबंध बना रहा। किंतु अंग्रेजों ने उस भेद को बढ़ाने की कोशिश की और उसमें वे काफी यशस्वी हुए। इसी तरह उन्होंने उत्तर और दक्षिण का भेद भी पैदा करने की कोशिश की। उन्होंने सेना के दो विभाग बनाये थे। पंजाब के लोगों का बलवा दबाने के लिए वे मद्रास की पलटनें भेजते थे और मद्रास के लोगों को दबाने के लिए गुरखाओं को। जिस राजा राम का गायन उत्तर और दक्षिण के सब संतों ने किया, उसे भी उन्होंने आर्य-द्रविड़-भेद में रंग दिया। इस देश के असंख्य सत्पुरुषों ने रामनाम के स्मरण में अपना चरितार्थ माना है। राम के बारे में सिर्फ उत्तर के संतों ने ही नहीं लिखा। तमिलभाषा की सर्वोत्तम कृति 'कंबन् की रामायण' है और मलयालम् की सर्वोत्तम कृति भी 'एलुतच्छन् की रामायण' है। हम पूछना चाहते हैं कि कंबन् और एलुतच्छन् किस भ्रम में थे? क्या उन्हें उस बात का पता ही नहीं था,

जिसका कि अंग्रेज इतिहासकारों को था। वे लोग तो रामेश्वर के समुद्र का पानी काशी में ले जाकर, काशी विश्वनाथ पर उसका अभिषेक करने में सार्थकता समझते थे और काशी के पास रहनेवाले लोग गंगा का पानी रामेश्वर ले जाकर वहाँ भगवान् पर उसका अभिषेक करते थे।

दक्षिण का 'रामानुज' उत्तर में गया और वहाँ उसका 'रामानंद' जैसा महान् शिष्य बना। कबीरदास, तुलसीदास आदि अत्यंत महान् संत रामानद के शिष्यों में से ही थे। केरल से शंकराचार्य निकले और हिमालय में जाकर उन्होंने समाधि ली। उन्हें आज का राम-रावण-संघर्ष, राम उत्तर का और रावण दक्षिण का आदि सब बातें मालूम ही नहीं थीं। वे समझते थे कि सारे भारत पर हमारा हक है। शंकराचार्य यह नहीं समझते थे कि मलाबार हमारा है, दक्षिण-देश हमारा है, बल्कि उन्होंने तो उस जमाने की राष्ट्रभाषा यानी संस्कृत में ग्रंथ लिखे। शंकराचार्य के ग्रंथों का जितना अध्ययन दक्षिण में होता है, उत्तर में उससे कम अध्ययन नहीं होता। महाराष्ट्र के ज्ञानदेव, तुकाराम आदि संतपुरुष शंकराचार्य के ही शिष्य थे। उधर बंगाल में रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद भी शंकर के ही शिष्यों में से थे। लेकिन इन दिनों अंग्रेज इतिहासकारों ने आर्य-द्रविड़ का भेद सिखाया, जिसके कारण यहाँ के लोग बेवकूफ बने हैं।

कुछ लोग तो यहाँ तक बोलने लगे हैं कि हम अपनी खिचड़ी अलग पकायेंगे, अपना छोटा-सा घर बनायेंगे। अरे, तुम्हारा तो कन्याकुमारी से लेकर काश्मीर तक—सारे भारत पर हक है, फिर संकुचित क्यों बनते हो? जिस जमाने में रेल, हवाई जहाज आदि आमदरफ्त के साधन नहीं थे, उस जमाने मे भी उन्होंने सारे हिन्दुस्तान को एक माना। तो आज हवाई जहाज आदि के जमाने में हम छोटे कैसे बन सकते हैं? शंकराचार्य ने एक बड़ा पराक्रम किया। हिन्दुस्तान के चार सिरों पर चार आश्रम स्थापित किये, उत्तर में बद्रीकेदार, दक्षिण में शृंगेरी, पूरब में जगन्नाथपुरी और पश्चिम में द्वारिका। उन आश्रमों के बीच डेढ़ हजार मील का फासला था। उन दिनों एक आश्रम के शिष्य को दूसरे आश्रम में सलाह-मशविरा करने के लिए जाना हो तो दो साल

घूमना पड़ता था। उस जमाने में यह सारा हुआ, तो इस जमाने में जब कि आमदरफ्त के साधन बहुत बढ़े हुए हैं, ये द्रविड़ लोग क्यों घबड़ा रहे हैं? चार दिशाओं में जाकर चार ही नहीं, बल्कि दस दिशाओं में जाकर वे दस आश्रम स्थापित कर सकते हैं। अपने प्रेम से, कर्तृत्व से, विद्या से वे सारा भारत जीत सकते हैं। उन्हें कौन रोक रहा है? परन्तु यह सारी अंग्रेज इतिहासकारों की शिक्षा है, जिससे यह भेद पैदा हुआ है।

पोर्तुगीज फ्रेंचों से सबक सीखें

सारांश, भारत के लोग राजा राम के सिवा दूसरे किसी भी राजा को नहीं पहचानते। मुझे बचपन की एक बात याद आ रही है। उन दिनों लोकमान्य तिलक, आपके यहाँ के चिदंबरम् पिल्लै आदि पर अंग्रेजों ने Sedition के, राजद्रोह के मुकदमे चलाये और उन सबको इसीके लिए सजा देते चले गये कि वे राजा की सत्ता न मानते थे। मैंने एक बार कहा था कि ये कंबख्त लोग भारत को कैसे नहीं समझ पाते? भारत का हर शख्स राजद्रोही है, क्योंकि यहाँ के लोग राजा राम के सिवाय और किसी राजा को कबूल ही नहीं करते। वह अन्तर्यामी, सब के हृदय में रमनेवाला, सब के हृदय पर सत्ता चलाने वाला है और उसी राम को हम मानते हैं। इसलिए यहाँ ऐतिहासिक दर्शन की कोई कीमत ही नहीं है। हिन्दुस्तान के लोग कूड़ेकचरे का ढेर इकट्ठा करना जानते ही नहीं। इसीलिए हम सबकी बुराइयाँ भूल जाते हैं।

फिर भी इन पोर्तुगीजों के पीछे न जाने क्या भूत लगा है। वे बिचारे बिलकुल डर गये है। अगर पोर्तुगीजों की एक संस्कृति है, तो उसका प्रचार क्यों नहीं करते। अगर पोर्तुगाल की संस्कृति में लोगों पर जुल्म करने की ही बात हो, तो वह दूसरी बात है। अगर उनके पास कोई अच्छी चीज है, तो भारत उसे ले सकता है। वे समझते हैं कि गोवा पर कब्जा रखना हमारे लिए बहुत लाभदायी है, लेकिन अगर पोर्तुगाल गोवा को छोड़ेगा, तो उसके लिए वह बहुत लाभदायी होगा। फिर उनका व्यापार अच्छी तरह चल सकता है, उनकी कोई सभ्यता हो, तो वह भी यहाँ टिक सकती है। उससे ईसाई लोगों की इज्जत बढ़ेगी और साथ-साथ सारी दुनिया में प्रेम पैदा होगा।

वैज्ञानिक की मति भी डाँवाडोल

आज दुनिया की हालत ऐसी है कि प्रत्येक राष्ट्र भयभीत दिखाई दे रहा है। इस समय दुनिया में जितना भय का साम्राज्य है, उतना पहले कभी नहीं था। इन दिनों बड़े जोरों के साथ ऐटम और हाइड्रोजन बम के प्रयोग चल रहे हैं, जिससे दुनिया की हवा बिगड़ रही है। जिस तरह बच्चे दिवाली में पटाकों का खेल खेलते हैं, उसी तरह इनका यह खेल चल रहा है। इधर रूस प्रयोग करता है, तो उधर अमेरिका, इंगलैण्ड भी उसमें अपना जोर लगा रहा है। फ्रान्स बेचारा अलग रो रहा है कि 'भगवन्, हम कितने दुर्दैवी हैं कि हमारे पास ऐसे बम बनाने के लिए पैसा नहीं है!' यह चार बड़ों की कहानी है, जो बिलकुल कमर कस कर दुनिया की हवा बिगाड़ने के लिए तैयार बैठे हैं। दुनिया के वैज्ञानिकों ने जाहिर किया है कि लड़ाई की बात तो छोड़ ही दीजिये, पर इन बमों का प्रयोग ही करना खतरनाक है।

सोचने की बात है कि इन वैज्ञानिकों ने ही ये सारे बम बनाये हैं और अब वे ही उसका निषेध कर रहे हैं। इसका मतलब यह है कि वैज्ञानिक पेट के लिए गुलाम बनकर हुक्म के मुताबिक काम करते हैं। वे अपनी आजादी भूल गये हैं। वैज्ञानिकों को हमेशा अपनी आत्मा की प्रतिष्ठा रखनी चाहिए। उन्हें यह जाहिर कर देना चाहिए कि वही शोध हम करेंगे, जिससे दुनिया का कल्याण हो, हम किसी के हुक्म से काम नहीं करेंगे। किंतु इन दिनों साम्राज्यवादियों का हुक्म होते ही ये वैज्ञानिक ऐसे शस्त्रास्त्र बनाने के लिए जुट जाते हैं। औरों का क्या नाम लें, बेचारे छोटे-छोटे वैज्ञानिक पेट के लिए दास बन ही जाते हैं, परन्तु आईन्स्टीन जैसे महान् वैज्ञानिक ने भी किसी जमाने में एटम बम बनाने के लिए उत्तेजन दिया था। उसे लगा कि अगर ये शस्त्रास्त्र बनें, तो शायद दुनिया हिंसा से बच सकेगी। इस तरह इतने बड़े वैज्ञानिक की बुद्धि भी डाँवाडोल हो गयी।

महाभारत की कहानी है, द्रौपदी को सभा में लाया गया और सवाल पूछा गया था कि, क्या द्रौपदी माल है? क्या उसपर किसी का हक हो सकता है?'

तो "भीष्म-द्रोण-विदुर भये विस्मित"—भीष्म जैसे ज्ञानी भी उसका जवाब नहीं दे सके। आज का लड़का भी कहेगा कि इसका जवाब देना क्या कठिन है? द्रौपदी माल नहीं है। किन्तु भीष्म ज्ञानी थे परन्तु उन्हें मोह हो गया। यही हालत आईन्स्टीन की हो गयी थी। लेकिन वह पीछे पछताया और मरने के पहले कह गया कि ये बम आदि बंद होने-चाहिए। फिर भी वह चलता ही है।

नम्रता से ही उच्चता

यह सारी हालत इसीलिए है कि हर कोई कहीं न-कहीं अपना बल और सत्ता कायम रखना चाहता है। आजकल एक राष्ट्र, दूसरे राष्ट्र का कब्जा लेकर राज्य नहीं कर सकता। अभी पोर्तुगाल जो कर रहा है, वह तो पुराने जमाने का अवशेष है। किंतु वह जमाना जा रहा है, और उसके साथ वह अवशेष भी जायगा। इन दिनों एक नयी भाषा निकली है, जिसमें Sphere of influence की बात चलती है। कोई कहता है कि फलाने मुल्क पर हमारा influence (वजन) है और फलाने पर तुम्हारा। हम कहना चाहते हैं कि तुम्हारा इन्फ्लुएन्स बहुत बढ़ेगा, अगर तुम उसकी चाह छोड़ दोगे।

लक्ष्मी के स्वयंवर की कहानी है। सब राजा-महाराजा वहाँ अभिलाषा लेकर गये थे। हर कोई सोचता था कि मैं सबसे सुंदर हूँ, इसलिए लक्ष्मी मेरे ही गले में माला डालेगी। लेकिन लक्ष्मी ने समय पर जाहिर किया कि 'जिसे मेरी इच्छा न होगी, उसीके गले में मैं माला डालूँगी।' वे सारे इच्छा लेकर आये थे, इसलिए बेवकूफ साबित हुए। फिर लक्ष्मी ऐसा मनुष्य ढूँढ़ने निकली जिसे उसकी चाह न हो। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वह क्षीरसागर में पहुँची और विष्णु भगवान् के गले में माला डाल उनके चरणों की सेवा करती हुई आज तक बैठी है।

ये मूर्ख समझते नहीं कि वजन उसी का बढ़ता है जो उसे चाहता नहीं। ईसा मसीह ने अपने शिष्यों को शिक्षण देते हुए कहा था कि 'तुम्हें कहीं भोजन के लिए बुलाया जाय, तो वहाँ बिलकुल आखिरी स्थान पर बैठो। फिर अगर कोई तुम्हें वहाँ से उठायेगा, तो उससे ऊपर का स्थान ही देगा, लेकिन तुम अगर ऊपर बैठ गये, तो कोई तुम्हें वहाँ से उठाकर नीचे भी बिठायेगा।' सइका

नहीं है, आपको जो ग्रन्थ अच्छा लगे, पढ़ सकते हैं। यह भारतीय संस्कृति है। यहाँ के प्रमुख बाशिन्दों, हिन्दू लोगों की मनःस्थिति और भावना का असर दूसरोंपर भी हुआ है। हमने पूछा कि तमिलनाड में कौन-सा ग्रन्थ सब लोग पढ़ते हैं ? तो जवाब मिला : ऐसी कोई किताब नहीं है। कोई "कुरल" पढ़ता है, कोई 'तिरुवाचकम्' पढ़ता है, तो कोई गीता। जिस ग्रंथ से जिसकी आत्मा को तृप्ति होती है, वह उस-उस ग्रन्थ को पढ़ता है। भारत में प्राचीन काल से विचारों की बहुत उदारता रही है। इसलिए हम भिन्न भिन्न लोगों की भावनाओं को अच्छी तरह सहते और उनका स्वागत भी करते हैं। इसीलिए हिन्दुस्तान में दुनिया भर के लोग आकर रहे हैं, जैसा कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने गाया है : 'भारतेर महामानवेर सागर-तीरे।' यह भारत महामानवों का समुद्र है।

मुसलमान लोग कहते हैं कि 'कुरान' ही एक किताब है और दूसरी कोई किताब नहीं है। ईसाई कहते हैं कि 'बाइबिल' ही एक किताब है और कोई किताब ही नहीं। इस तरह का आग्रह हिन्दुओं में नहीं है। हमने ऐसे कई हिन्दू देखे हैं, जिनमें हमारे कुछ मित्र भी हैं, जो बहुत प्रेम से बाइबिल पढ़ते और कहते हैं कि उसमें से हमें स्फूर्ति मिलती है। यह जो उदारता है, वह स्वतंत्रता का मूल है। इसीलिए हम आशा रखते हैं कि हम हिन्दुस्तान में सच्चा स्वातंत्र्य प्रकट करेंगे।

परमेश्वर में मस्त भारत

एक घटना मैं आपके सामने रख रहा हूँ, जो कोई छोटी नहीं है। हिन्दुस्तान का कुल इतिहास देखने पर यह चमत्कार दीख पड़ता है कि हिन्दुस्तान जब वैभव के शिखर पर था और इसके हाथ में अत्यधिक सत्ता थी, उस समय भी हिन्दुस्तान के किसी भी राजा ने बाहर के किसी भी मुल्क पर आक्रमण नहीं किया। यहाँ से धर्म-प्रचार के लिए बौद्ध भिक्षु और उनके संघ निकल पड़े, पर वे अपने साथ कोई सत्ता नहीं ले गये। वे चीन, जापान, मलाया, लंका और इधर एशिया माइनर तक गये, परन्तु उनके साथ सत्ता का कोई संबंध नहीं रहा। वे केवल प्रेम और ज्ञान लेकर गये थे, विचार समझाने गये थे। यह

एक बड़े महत्व की बात है कि किसी देश के ५ हजार साल के इतिहास में दूसरे देशों पर आक्रमण की कोई घटना नहीं घटी। इसलिए दुनिया के सोचनेवाले लोग हिन्दुस्तान पर श्रद्धा रखते और समझते हैं कि इस देश में कुछ विशेषता है। विख्यात चीनी लेखक लिन् युटांग ने हिन्दुस्तान और चीन के अच्छे-अच्छे वचनों का एक संग्रह किया है और उसकी प्रस्तावना में लिखा है कि 'India is a God-intoxicated land' अर्थात् हिन्दुस्तान के लोग किसी मदिरा-मस्त के समान परमेश्वर में मस्त हैं। उनकी यह बात सही है, क्योंकि हमने अपने लिए मोक्ष की बात मानी है। हमने कोई छोटी आजादी की नहीं, बल्कि बड़ी आजादी की बात सामने रखी है। हम किसी के गुलाम न बनेंगे और न किसी को गुलाम ही बनायेंगे, हम किसी से न दबेंगे और न किसी को दबायेंगे। न किसी से डरेंगे और न किसी को डरायेंगे। यही सच्ची निर्भयता और यही सच्ची स्वतंत्रता है।

राजनैतिक आजादी के बाद सामाजिक आजादी

राजनैतिक आजादी एक छोटी चीज है उसके बाद सबको सामाजिक आजादी मिलनी चाहिए। ऊँचनीचभाव मिटना चाहिए, हरिजन-परिजनभेद मिटने चाहिए, मालिक-मजदूर का आर्थिक भेद, भूमिमालिक और भूमिहीन आदि सारे भेद मिटने चाहिए। इतना बड़ा कार्य हमें करना है। फिर देश में सच्ची स्वतंत्रता का वातावरण फैलेगा, स्वतंत्रता हमारी जीवन-निष्ठा बनेगी। तो उसका परिणाम सारी दुनिया पर होगा और दुनिया उससे बचेगी। ये सारे शस्त्रास्त्र दुनिया को कभी न बचायेंगे। शस्त्रास्त्रों से तो दुनिया तंग आ गयी है। जिन्होंने हाथ में शस्त्र उठाये हैं, वे समझ नहीं पा रहे हैं कि इसके आगे उनकी क्या गति होगी। रावण ने शिवधनुष हाथ में उठाया, तो उसके कारण वह गिर पड़ा। ये सारे ऐटम और हाइड्रोजन बम बनानेवाले बम बनाते हैं पर वे उन्हींके सिर पर गिरेंगे। हमें बड़ा आश्चर्य होता है कि ऐसे औजार बनानेवाले उस पर काबू नहीं रख पाते। इस तरह की बेकाबू ताकत उन्होंने पैदा की है। शिव के अधिष्ठान पर जो शक्ति होती है, वही कल्याणकारी शक्ति

हमने स्वराज्य के लिए कोशिश की और दूसरो की गुलामी से मुक्त हुए, इतने से स्वराज्य की प्रीति पूर्ण नहीं होती। कोई भी जानवर दूसरे के पंजे से मुक्ति चाहता है और उसके पंजे में आने पर दुःखी होता है। बिल्ली पर कुत्ता हमला करे, तो उसे अच्छा नहीं लगता, पर चूहे पर हमला करना उसे अच्छा लगता है। इसी तरह हम किसी के दास हो जायँ, तो हमें दुःख होता और उससे मुक्त होते हैं, इतने से यह सिद्ध नहीं होता कि हम सचमुच स्वातंत्र्यप्रेमी हैं। हाँ, हम सुखप्रेमी हैं, इतना इससे अवश्य सिद्ध हो सकता है। परतंत्रता के कारण कई दुःख पैदा होते हैं, इसलिए उन दुःखों से मुक्ति की इच्छा होना सुखप्रीति के कारण भी संभव है। इसलिए सुखप्रेमी लोग भी स्वतंत्रता के आन्दोलन में शरीक होकर उसके लिए कुछ त्याग भी कर सकते हैं। किंतु स्वराज्य के बाद वे सुखभोग में ही लग जाते हैं। तब वे सुखभोग को बढ़ाने की इच्छा रखते हैं। उन्हें अपने सुखभोग के लिए दूसरों को दबाने की प्रेरणा भी होती है। कई राष्ट्रों का यह इतिहास है कि दूसरों की गुलामी से मुक्त होने की कोशिश कर स्वयं मुक्त हुए, तो उसके बाद दूसरों को दबाना आरंभ कर दिया। इसलिए हम अगर सचमुच स्वातंत्र्यप्रेमी है, तो जिन लोगों को हमने दबा रखा है, उन्हें फौरन मुक्त करना चाहिए।

भारत में विचार स्वातंत्र्य की परंपरा

हम समझते हैं कि भारत में स्वतंत्रता की जितनी कद्र है, उतनी शायद ही दूसरे किसी देश में हो। आप देखेंगे कि यहाँ किसी भी प्रकार की कैद, रीति-रिवाजों के विशिष्ट बंधन, सबको लागू नहीं हैं। आप किसी भी देवता की उपासना करना चाहते हों, तो कीजिए, किसी की भी न करना चाहते हो, तो मत कीजिए। आप जिस प्रकार का तत्त्वज्ञान रखना चाहते हों, रखिए और नहीं रखना चाहते, तो मत रखिए। रीति-रिवाज भी आप चाहें जो रख सकते हैं। फलाना ग्रंथ पढ़ना ही चाहिए, ऐसी कोई जिम्मेवारी आपपर

नहीं है, आपको जो ग्रन्थ अच्छा लगे, पढ़ सकते हैं। यह भारतीय संस्कृति है। यहाँ के प्रमुख बाशिन्दों, हिन्दू लोगों की मनःस्थिति और भावना का असर दूसरोंपर भी हुआ है। हमने पूछा कि तमिलनाड में कौन-सा ग्रन्थ सब लोग पढ़ते हैं? तो जवाब मिला : ऐसी कोई किताब नहीं है। कोई "कुरल" पढ़ता है, कोई 'तिरुवाचकम्' पढ़ता है, तो कोई गीता। जिस ग्रंथ से जिसकी आत्मा को तृप्ति होती है, वह उस-उस ग्रन्थ को पढ़ता है। भारत में प्राचीन काल से विचारों की बहुत उदारता रही है। इसलिए हम भिन्न भिन्न लोगों की भावनाओं को अच्छी तरह सहते और उनका स्वागत भी करते हैं। इसीलिए हिन्दुस्तान में दुनिया भर के लोग आकर रहे हैं, जैसा कि रवीन्द्रनाथ टाकुर ने गाया है : 'भारतेर महामानवेर सागर-तीरे।' यह भारत महामानवों का समुद्र है।

मुसलमान लोग कहते हैं कि 'कुरान' ही एक किताब है और दूसरी कोई किताब नहीं है। ईसाई कहते हैं कि 'बाइबिल' ही एक किताब है और कोई किताब ही नहीं। इस तरह का आग्रह हिन्दुओं में नहीं है। हमने ऐसे कई हिन्दू देखे हैं, जिनमें हमारे कुछ मित्र भी हैं, जो बहुत प्रेम से बाइबिल पढ़ते और कहते हैं कि उसमें से हमें स्फूर्ति मिलती है। यह जो उदारता है, वह स्वतंत्रता का मूल है। इसीलिए हम आशा रखते हैं कि हम हिन्दुस्तान में सच्चा स्वातंत्र्य प्रकट करेंगे।

परमेश्वर में मस्त भारत

एक घटना मैं आपके सामने रख रहा हूँ, जो कोई छोटी नहीं है। हिन्दुस्तान का कुल इतिहास देखने पर यह चमत्कार दीख पड़ता है कि हिन्दुस्तान जब वैभव के शिखर पर था और इसके हाथ में अत्यधिक सत्ता था, उस समय भी हिन्दुस्तान के किसी भी राजा ने बाहर के किसी भी मुल्क पर आक्रमण नहीं किया। यहाँ से धर्म-प्रचार के लिए बौद्ध भिक्षु और उनके संघ निकल पड़े, पर वे अपने साथ कोई सत्ता नहीं ले गये। वे चीन, जापान, मलाया, लंका और इधर एशिया माइनर तक गये, परन्तु उनके साथ सत्ता का कोई संबंध नहीं रहा। वे केवल प्रेम और ज्ञान लेकर गये थे, विचार समझाने गये थे। यह

एक बड़े महत्व की बात है कि किसी देश के ५ हजार साल के इतिहास में दूसरे देशों पर आक्रमण की कोई घटना नहीं घटी। इसलिए दुनिया के सोचनेवाले लोग हिन्दुस्तान पर श्रद्धा रखते और समझते हैं कि इस देश में कुछ विशेषता है। विख्यात चीनी लेखक लिन् युटांग ने हिन्दुस्तान और चीन के अच्छे-अच्छे वचनों का एक संग्रह किया है और उसकी प्रस्तावना में लिखा है कि 'India is a God-intoxicated land' अर्थात् हिन्दुस्तान के लोग किसी मदिरा-मस्त के समान परमेश्वर में मस्त हैं। उनकी यह बात सही है, क्योंकि हमने अपने लिए मोक्ष की बात मानी है। हमने कोई छोटी आजादी की नहीं, बल्कि बड़ी आजादी की बात सामने रखी है। हम किसी के गुलाम न बनेंगे और न किसी को गुलाम ही बनायेंगे, हम किसी से न दबेंगे और न किसी को दबायेंगे। न किसी से डरेंगे और न किसी को डरायेंगे। यही सच्ची निर्भयता और यही सच्ची स्वतन्त्रता है।

राजनैतिक आजादी के बाद सामाजिक आजादी

राजनैतिक आजादी एक छोटी चीज है उसके बाद सबको सामाजिक आजादी मिलनी चाहिए। ऊँचनीचभाव मिटना चाहिए, हरिजन-परिजनभेद मिटने चाहिए, मालिक-मजदूर का आर्थिक भेद, भूमिमालिक और भूमिहीन आदि सारे भेद मिटने चाहिए। इतना बड़ा कार्य हमें करना है। फिर देश में सच्ची स्वतंत्रता का वातावरण फैलेगा, स्वतंत्रता हमारी जीवन-निष्ठा बनेगी। तो उसका परिणाम सारी दुनिया पर होगा और दुनिया उससे बचेगी। ये सारे शस्त्रास्त्र दुनिया को कभी न बचायेंगे। शस्त्रास्त्रों से तो दुनिया तंग आ गयी है। जिन्होंने हाथ में शस्त्र उठाये हैं, वे समझ नहीं पा रहे हैं कि इसके आगे उनकी क्या गति होगी। रावण ने शिवधनुष हाथ में उठाया, तो उसके कारण वह गिर पड़ा। ये सारे ऐटम और हाइड्रोजन बम बनानेवाले बम बनाते हैं पर वे उन्हींके सिर पर गिरेंगे। हमें बड़ा आश्चर्य होता है कि ऐसे औजार बनानेवाले उस पर काबू नहीं रख पाते। इस तरह की बेकाबू ताकत उन्होंने पैदा की है। शिव के अधिष्ठान पर जो शक्ति होती है, वही कल्याणकारी शक्ति

है। शिव से अलग शक्ति, राक्षसी है, विनाशकारी-संहारिणी शक्ति है। हाथ में शस्त्रास्त्र धारण किये हैं परन्तु छाती में धड़कन है और ये समझते हैं कि हम निर्भय बने, क्योंकि सामनेवाले के पास यह शस्त्र नहीं है। अगर उसके पास भी यह शस्त्र आ जाय, तो इनका शस्त्र निकम्मा साबित होगा।

समझने की बात है कि बहादुरी और निर्भयता शस्त्रास्त्रों का नहीं, आत्मा का गुण है। इस गुण को हमें प्रकट करना चाहिए। राजनैतिक आजादी प्राप्त हुई, इसके मानी यह है कि हमारा जो खेत हमारे हाथ में न था, वह हाथ में आ गया। अब तो उसमें बोना है, मेहनत-मशक्कत करनी है, तब कहीं फसल आयेगी और फिर हम भोग कर सकेंगे। खेत आने से भोग का आरंभ होता है, यह समझना गलत है। इसलिए राजनैतिक आजादी के बाद 'कर्मयोग' का आरम्भ होना चाहिए। आध्यात्मिक उन्नति का क्षेत्र तबतक नहीं खुलता, जब तक राजनैतिक आजादी प्राप्त नहीं होती। अब आजादी के बाद पाण्डिचेरी और भारत को आध्यात्मिक उन्नति का क्षेत्र खोलना चाहिए। भारत पर यह जिम्मेवारी है, क्योंकि हिन्दुस्तान के इतिहास में किसी राजा ने बाहर के देशों पर आक्रमण नहीं किया। इस देश के लोगों को इसका भान होना चाहिए कि स्वराज्य-प्राप्ति के बाद हमारे सामने दुनिया की सेवा करने का मिशन उपस्थित है। हरएक देश का अपना-अपना मिशन होता है। सारे विश्व में सामंजस्य निर्माण और अविरोध की स्थापना करने का मिशन भारत को प्राप्त हुआ है। इस आध्यात्मिक कार्य के लिए हमें तीन प्रकार के कार्य करने होंगे।

सब सेवा में लगें

सर्वप्रथम बात यह है कि हमें देश में एकता स्थापित करनी होगी। हमारा देश बड़ा है, इसलिए अगर उसमें एकता रही, तो वह बड़ा बलवान् बनेगा। और यदि एकता न रही, तो उसकी यह बड़ाई ही उसकी कमजोरी साबित होगी। जिस देश में भिन्न-भिन्न प्रकार के भेद, विरोध आदि पड़े हों, वह देश जितना बड़ा होता है, उतना ही उसके लिए खतरा है। आपको अगर भेदों को जिलाना

है, उन्हें जीवनदान देना है, तो छोटा देश बनाइये और खूब लड़िये। किंतु हमारा देश ऋषियों की करनी से पहले से ही बड़ा है। अतः हमें दिल भी बड़ा बनाना होगा। बड़ा देश और छोटा दिल, यह मेल नहीं खाता। इन दिनों हमने जो नाहक पक्षभेद बढ़ाये हैं, उन्हें मिटाकर, सबको एक होकर गरीबों की सेवा में लगना चाहिए। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद हरएक के मन में तीव्र भावना होनी चाहिए कि मेरे हाथ से मेरे देश के दुखियों की कुछ-न-कुछ सेवा होनी चाहिए। जब मैं अपने शरीर के लिए भोजन देता हूँ, तो दूसरों को कुछ-न-कुछ खिलाकर, समाज को देकर जो शेष रहेगा, वह यज्ञशेष ही खाने का मुझे हक है। जो यज्ञशेष नहीं खाता, वह चोरी का अन्न खाता है, ऐसी भावना देश में पैदा होनी चाहिए। सबको गरीबों के दुःख-निवारण के काम में लग जाना चाहिए। अगर हर कोई अपने हाथ में थोड़ी-सी सत्ता रखने का प्रयत्न करेगा, तो वह सत्ता निकम्मी हो जायगी।

इस मामले में हमें फ्रान्स से सबक सीखना चाहिए। फ्रान्स उदार देश है, उसमें शक्ति कम नहीं है, ज्ञान भी काफी है, शायद काफी से भी ज्यादा है। इसलिए वहाँ पर एक-दूसरे का एक-दूसरे से मेल नहीं बनता। वहाँ इतने पक्षभेद हैं कि कोई सरकार बन ही नहीं पाती और दुनिया तमाशा देखती है। फ्रान्स में एकता आ जाय, तो वह बहुत अच्छा होगा। इसलिए हम कभी-कभी अपने मन में फ्रान्स के लिए भगवान् से प्रार्थना करते हैं। पांडिचेरी बहुत दिनों तक फ्रांसीसियों के कब्जे में रहा। इसलिए कृपाकर आप उनका यह गुण मत लीजिये।

समान कार्यक्रम उठायें

यह बात सारे भारत पर लागू है। भारत का सारा इतिहास, सामाजिक नहीं, राजनैतिक इतिहास बिलकुल परस्पर विरोध से भरा है। यहाँ राजाओं के आपस के द्वेष, झगड़े आदि बहुत चलते रहे। इसलिए हमें अपने इतिहास से भी सबक लेना चाहिए। हिन्दुस्तान में एक गुण है, तो उसके साथ एक दोष भी है। जैसे रूप के साथ छाया होती है, वैसे गुण के साथ दोष भी होते हैं। हिन्दुस्तान के लोग तत्त्वज्ञानी हैं और तत्त्वज्ञानी हमेशा वादप्रिय होते हैं,

उनमें कभी एक-दूसरे से मेल नहीं मिलता। चाहे शंकर-रामानुज हों या कोई मामूली मनुष्य, वे बड़े तत्त्वज्ञानी तो हम छोटे तत्त्वज्ञानी, उनके बड़े सिद्धान्त तो हमारे छोटे। और हर कोई अपने-अपने सिद्धान्त पर अड़ा रहेगा।

यहाँ पेड़ लगाने की बात हो, तो एक कहेगा नीम का लगाओ, दूसरा कहेगा आम का और तीसरा कहेगा कि पेड़ ही मत लगाओ। इस तरह तीन तत्त्वज्ञानी हो गये—*नीमवादी, आमवादी और विनवादी।* इस तरह हमारे लोग तत्त्वज्ञानी होने के कारण बारीक-सा भी भेद नहीं सहते और छोटी-छोटी बात में पक्षभेद बना लेते हैं। बंगाल में तो गंगा की जितनी धाराएँ हैं उतने पक्षभेद हैं। हमने विनोद में कहा कि गंगा की धाराओं को एक करने का प्रयत्न करो, तो आपके प्रदेश की एकता बनेगी। हमारे देश में पहले से ही जातिभेद पड़े हैं। पेड़ की पत्तियाँ गिनी जा सकती हैं, पर हिन्दुस्तान की जातियाँ नहीं। धर्मभेद, भाषाभेद सब हैं ही और अब इसके साथ पक्षभेद भी जोड़ दिया गया है। हर कोई कहता है कि हमारी अलग राजनैतिक विचारधारा (पोलिटिकल आइडियोलॉजी) है। हम पूछना चाहते हैं कि देश की भलाई का काम हो, गाँव में स्वच्छता रखनी हो, सबको खाना मिलने की व्यवस्था करनी है, तो उसमें समाजवाद, साम्यवाद, सर्वोदय आदि सब कहाँ आते हैं? इस हालत में सब मिलकर एक कार्यक्रम क्यों नहीं बनाते? जिन कामों के बारे में वाद हों, उन्हें छोड़ सकते हैं। लेकिन देश में निर्विवाद काम कुछ तो जरूर होंगे ही। दारिद्र्य अद्वितीय पड़ा है, विषमता, जातिभेद, छूआछूत मिटाना है, हमारे धर्मक्षेत्र तो अस्वच्छता के सागर बन गये हैं।

एक जगह हमें एक तालाब दिखाया गया और कहा गया कि इसमें स्नान करने से स्वर्ग जा सकते हैं। हमने कहा कि इस गन्दे पानी से स्नान करने से स्वर्ग जाने के बजाय हम अपने घर के स्वच्छ पानी से स्नान करके इसी दुनिया में रहेंगे। अज्ञान की कोई कमी ही नहीं है। हिन्दुस्तान की भिन्न-भिन्न भाषाओं में अनंत साहित्य पड़ा है। किन्तु हमारे लोग पढ़ना-लिखना भी नहीं जानते। इतना सारा कार्य सामने पड़ा है, तो उसमें मतभेद है कहाँ? ये सारे काम पूरे करके फिर अपनी-अपनी विचारधारा पर जोर लगाओ।

प्रेमशक्ति से विषमता मिटायें

दूसरी अत्यन्त आवश्यक बात देश में समता स्थापित करना है। कोई भी देश सामाजिक और आर्थिक ऊँचनीचभाव कायम रखकर उन्नति नहीं कर सकता। बड़ा देश सबके समाधान से ही रह सकता है। इसीलिए हमने भूदानयज्ञ शुरू किया है। वास्तव में हमने इसे शुरू नहीं किया, बल्कि परमेश्वर ने ही हमारे सामने इसे उपस्थित किया और उसी की प्रेरणा से, कृपा से हमने उठा लिया। पाँच साल यह काम चला और इसके कारण हिन्दुस्तान में कुछ सद्भावना निर्माण हुई है। पहले इसके बारे में काफी मतभेद थे, जो अब नहीं रहे। भूमि पर किसी की मालकियत नहीं हो सकती, यह एक ईश्वरीय सिद्धान्त है। हवा और पानी के समान पृथ्वी की भी पंचमहाभूतों में गिनती होती है। ये पंचमहाभूत सबके लिए हैं। आज भूमिहीनों को भूमि देना अत्यंत जरूरी है। उससे आर्थिक और सामाजिक विषमता कम होगी। इस मसले को हम प्रेम के तरीके से हल करते हैं, तो उससे हिन्दुस्तान की ताकत बढ़ेगी। इसलिए हम चाहते हैं कि सब राजनैतिक पक्षवाले और दूसरे कार्यकर्ता इस काम को उठायें और चंद महीनों में इसे खतम कर दें। भूमि के मसले को हल करने के लिए दूसरे देशों में खून की नदियाँ बहायी गयीं, लेकिन हमारे यहाँ प्रेम का एक तरीका हाथ आया है, जिससे हम प्रेम से विचार समझाकर जमीन माँग सकते हैं और लोग दे सकते हैं। इसलिए हमें मनुष्य-हृदय और सत्यवस्तु पर विश्वास रखकर काम करना चाहिए। जिससे दुनिया का उद्धार है, यह तत्त्व समझना आसान होता है। इसलिए भूदान की पद्धति हाथ में लेकर सब लोग उसमें अपनी ताकत लगायेंगे, तो विषमता मिटाने के काम का आरंभ होगा और एक बड़ा मसला प्रेम, शान्ति और अहिंसा के तरीके से हल हो सकता है, यह सिद्ध होगा। इससे दुनिया को वह वस्तु प्राप्त होगी जिसकी आज वह खोज कर रही है।

भूदान में जो जमीन बँटती है, उसमें एक-तिहाई हरिजनों को दी जाती है। इससे हरिजन, जो कि आज समाज के बिलकुल ही आखिर में गिरे हैं, उठ खड़े होंगे और सामाजिक क्रान्ति होगी। भूमिहीनों को जमीन मिलेगी, तो देनेवालों

के लिए उनके मन में प्रेम पैदा होगा, दिल से दिल जुड़ जायँगे। फिर संपत्तिदान देनेवाले भी आगे आयेंगे। हमने व्यापारियों से कहा है, देश का आदर हासिल करना तुम्हारे हाथ में है। व्यापारियों में व्यवस्थाशक्ति और दयाभाव होता है। हिन्दुस्तान में व्यापारी को एक धर्म, एक मिशन दिया गया है। वह अपने वैश्यधर्म का ठीक से आचरण कर मोक्ष प्राप्त कर सकता है। इस तरह भूदान में जनशक्ति और प्रेमशक्ति के जरिये विषमता मिटाकर, समता की स्थापना करने की बात है।

निर्भयता सर्वश्रेष्ठ गुण

तीसरी बात यह है कि देश में निर्भयता आनी चाहिए। कोई हमें डराकर हमसे कोई काम कराना चाहे, तो हम वह हरगिज न करें। बच्चों से भी हम यही कहना चाहते हैं कि तुम्हारे माता-पिता या गुरु तुम्हें पीटें, तो उनकी बात हर्गिज मत मानो। जुल्मी लोगों के जुल्म की सारी ताकत भयवृत्ति में है। मनुष्य की देह को मार-पीटकर वे उसे अपने वश में करना चाहते हैं। हमें ताज्जुब होता है कि जो बच्चे अपने माता-पिता पर पूर्ण निष्ठा रखते हैं, माता-पिता को उन्हें भी पीटने की जरूरत क्यों महसूस होती है? वे कहते हैं कि बच्चों को सद्गुण सिखाने के लिए पीटना आवश्यक है। अगर बच्चा ठीक समय पर स्कूल नहीं जाता, तो उसे पीटना पड़ता है। लेकिन पीटने से बच्चे में नियमितता का गुण आ भी जाय, पर उसके साथ उसे डर भी सिखाया जाता है। अब उसे आगे कोई भी पीटकर चाहे जो काम करवा सकता है। इस तरह निर्भयता खोकर नियमितता का गुण पैदा किया, तो रुपया गँवाकर पैसा कमाने जैसा ही हुआ।

मैंने ऐसे कई लड़के देखे हैं, जो बोर्डिंग में सुबह ठीक समय पर उठते हैं, पर घर जाने पर देरी से उठते हैं। क्योंकि वहाँ उनसे जबर्दस्ती से काम लिया जाता है। इससे बिलकुल उल्टी बात हमने आज 'अरविन्दाश्रम' में देखी। वहाँ के लड़कों को पूरी आजादी होती है। लड़का क्लास में नहीं आता है, शिक्षक ही फेल माना जाता है, क्योंकि उसने अच्छा नहीं सिखाया होगा। तो क्या आप समझते हैं कि आश्रम के लड़के बेवकूफ पैदा होंगे, उन्हें ज्ञान कम मिलेगा?

यही तो ज्ञान का रास्ता है। दबाकर, जबर्दस्ती से ज्ञान नहीं दिया जा सकता। उससे तो ज्ञान के लिए नफरत पैदा होती है।

एक मास्टर साहब लड़कों को पढ़ा रहे थे : 'बोलो, 'रामस्य, रामयोः रामाणाम्—षष्ठी' और कोई न बोल न सका, तो पीटते थे। तमाचे के डर से लड़के जो जानते थे, वह भी भूल जाते थे। हमने कहा : राम का नाम सिखाना है तो प्रेम से सिखाओ, तमाचे के साथ क्यों सिखाते हो? अरविन्दाश्रम में तालीम का जो तरीका चलता है, वही सच्चा तरीका है, उसीसे निर्भयता बढ़ेगी। शिक्षकों के भी ध्यान में आना चाहिए कि हम डराकर काम न करायें।

यह डराना यहाँ तक फैला है कि बाबा की यात्रा में भी कुछ-कुछ भाई लोगों को जबर्दस्ती हटाते हैं, यह कहकर कि बाबा आ रहा है। क्या बाबा शेर, भेड़िया है, जो उसके आने के लिए लोगों को भगाना पड़ता है? समझने की बात है कि आप अपने बच्चों को डरा-धमकाकर तालीम दोगे—तो फिर आपकी उस तालीम के आधार पर, वे शस्त्रधारी जुल्म चलाते रहेंगे। जहाँ हम डर छोड़ेंगे, बच्चों को निर्भयता सिखायेंगे, वहाँ सारे शस्त्रास्त्र खतम हो जायेंगे। जुल्मी लोग, दुनिया के सब लोगों को खतम कर. नहीं, सबको डरा कर राज्य चलाना चाहते हैं।

एक कहानी है जिसमें एक राक्षस ने एक मनुष्य को पकड़ा। वह उससे खूब काम लेता था, यह कह कर कि काम नहीं करोगे तो खा जाऊँगा। बिचारा मनुष्य डर के मारे काम करता रहा। आखिर तंग आकर उसने एक दिन राक्षस से कहा कि खा जाओ। तब से उसकी तकलीफ खतम हुई, क्योंकि राक्षस उसे खाना नहीं चाहता था, बल्कि डराकर उससे काम लेना चाहता था।

श्री अरविंद की भूमि से

इस तरह हमें देश में एकता, समता और निर्भयता स्थापित करनी है। मैं आशा करता हूँ कि जहाँ श्री अरविंद ने महान् तपस्या की, वहाँ के लोग इस संदेश को अपने जीवन में लायेंगे। वे ३०-४० साल तक यहाँ रहे। आज

उनका असर दुनिया भर अव्यक्त रूप में हो रहा है। धीरे-धीरे व्यक्त होगा। उन्होंने यहाँ आश्रय लिया। भारती ने भी यहीं आश्रय लिया। हम आशा करते हैं कि ऐसी स्वातंत्र्यप्रेमी भूमि के नागरिक हमारी इन बातों को अपने जीवन में लायेंगे।

पांडिचेरी
१-७-'५६.

भूदान और ढोंगी लोग

: १८ :

आज एक भाई मिले, जिन्होंने कहा कि यह काम तो बहुत अच्छा है, पर इसमें कुछ ढोंगी लोग भी काम करते हुए दीख पड़ते हैं। हमने कहा कि ऐसी कोई योजना नहीं, जहाँ ढोंगी लोगों ने प्रवेश न किया हो। फिर भी हम इतना कह देना चाहते हैं कि इस आन्दोलन में जो ढोंगी हैं, वे कम-से-कम हैं। क्योंकि इसमें उन्हें कष्ट उठाना पड़ता है, पैदल घूमना पड़ता है, गाँव-गाँव जाकर लोगों को समझाना पड़ता है, धूप, ठंड और बारिश सहनी पड़ती है। इसलिए इसमें ढोंग करनेवाले एक-दो आकर ढोंग कर सकते हैं। वैसे हम भी समझते हैं कि इसमें पूरे दिल से काम करो तो तुम्हारी शोभा है, नहीं तो हँसी होगी। इस काम की कोई हँसी नहीं होगी, क्योंकि लोग उसे अच्छी तरह से समझते हैं। उनके मन में श्रद्धा पैदा हुई है कि बाबा का काम शुद्ध-बुद्धि तथा धर्म-वृत्ति से चल रहा है और उसमें गरीबों को राहत देने की दृष्टि है। बाबा का सिर्फ इतना ही उद्देश्य नहीं, बल्कि यह भी उद्देश्य है कि भूमिवान् और श्रीमान् लोग अपना कर्तव्य समझें, उनके और गरीबों के बीच हार्दिक प्रेमभावना पैदा हो।

ढोंगियों का रहना भी हमारा दोष

मैंने इस भाई से यह भी कहा कि आपके जैसे लोग बाहर रहकर टीका करते रहेंगे, तो कैसे चलेगा ? आप स्वयं कुछ काम करोगे या सिर्फ दूर खड़े

रहकर काम करनेवालों के दोष बतायेंगे ? हम कहना चाहते हैं कि हम यदि दूसरों को ढोंगी कहते हैं, तो हम ही गलत साबित होते हैं। सूर्यनारायण कभी नहीं बतायेगा कि यहाँ अन्धकार है। जो कहेगा कि फलानी जगह अन्धकार है, वह सूर्य है ही नहीं। होना तो यह चाहिए कि हमारी उपस्थिति में अन्धकार टिकना ही नहीं चाहिए। जहाँ हम जायेंगे, वहाँ ढोंगियों का परिवर्तन होना चाहिए। हमारे रहते अगर ढोंगी ढोंग करेंगे, तो हम ही ढोंगी हैं। जो अन्धकार को देखते हैं, उसे पहचानते हैं, वे सूर्य तो हैं ही नहीं, दीपक भी नहीं हैं। छोटा-सा दीपक भी अन्धकार नहीं देखता; क्योंकि जहाँ-जहाँ वह जाता है, वहाँ-वहाँ आस-पास का क्षेत्र प्रकाशमय बनाता है। इसलिए हम दूर खड़े रहें और दूसरों को ढोंगी कहें, यह अच्छा नहीं। उसमें हम पर ही आरोप आता है। जो दूसरों की टीका करते हैं, उन्हीं की टीका हो जाती है।

उस भाई के ध्यान में यह बात आ गयी और उसने कहा कि हम काम करेंगे।

किरम्पकुम् (दक्षिण अर्काट)
१०-७-'५६

गुणचिंतन का अर्थ क्या ? : १९ :

हम परमात्मा को बाहर से नहीं देख सकते, फिर भी उनके गुण दुनिया भर में फैले हुए हैं। जहाँ-जहाँ हमें सत्य, दया, प्रेम और करुणा दीखती है, वहाँ-वहाँ परमात्मा ही दीखता है। सत्य, प्रेम आदि ही परमेश्वर के रूप हैं। इसलिए ये जो मूर्तियाँ बनती हैं, वे संकेतमात्र हैं।

गुणों के संकेत

इन दिनों चित्रकार न्यायदेवता के चित्र में एक स्त्री दिखलाते हैं, जिसके हाथ में तराजू होता है, जिसकी डंडी बिल्कुल सीधी रहती है। वे स्त्री को अन्धी भी चित्रित करते हैं, आखिर इसका अर्थ क्या है ? क्या न्याय-देवता औरत

ही होना चाहिए, पुरुष नहीं ? और क्या वह अन्धा होना चाहिए, आँखवाला नहीं ? क्या न्याय-देवता का काम कागज-कलम से न चलेगा ? उसे तराजू ही चाहिए ? वास्तव में ऐसा कुछ नहीं, ये सारे संकेत हैं। न्याय-देवता को आँखें नहीं, इसका अर्थ यही है कि न्यायाधीश पक्षपात नहीं करता। हाथ में तराजू की सीधी डंडी और दो पलड़ों का अर्थ है, न्याय के साथ करुणा और दया भी मिश्रित रहे।

इसी तरह अन्य देवताओं की जो विभिन्न मूर्तियाँ होती हैं, वे भी गुणों का संकेत ही हैं। शेषशायी भगवान् को साँप के बिछौने पर सोते हुए दिखलाते हैं। उसका भावार्थ यही है कि वे अत्यंत भय के प्रसंग में भी परम शान्त रहते हैं। आराम-गद्दी पर शान्ति से सोनेवाली तो दुनिया है ही, पर साँप के बिछौने पर शान्ति से बैठना ही नहीं, सोना भी कोई सादी बात नहीं। भगवान् शान्तमूर्ति हैं, यही वे दिखलाना चाहते हैं। जहाँ अत्यंत भय हो, वहाँ भी शान्ति बनाये रखना ही सच्ची शान्ति है। इस तरह परमशान्ति बताने के निमित्त ही वह चित्र खड़ा किया गया है। इसी तरह भिन्न-भिन्न देवताओं की मूर्तियों में भिन्न-भिन्न गुणों के दर्शन होते हैं। वास्तव में ईश्वर अनेक नहीं, एक है। अगर अपना हृदय शुद्ध किया जाय, तो उसमें हरएक को उसकी ध्वनि सुनाई पड़ेगी।

ईश्वर के गुणों का चिंतन

ईश्वर के गुण अनंत हैं। ईसा ने कहा है : 'गॉड इज लव'-परमेश्वर प्रेम है। इस तरह उन्होंने परमेश्वर को प्रेमरूप में देखा। उपनिषदें कहती हैं कि 'सत्यं ब्रह्म'—परमेश्वर सत्यरूप है। तो उन्होंने ईश्वर को सत्यरूप में देखा। मुहम्मद पैगंबर ने कहा है कि 'रहमाने रहीम है' याने ईश्वर दयामय है। तो उन्होंने ईश्वर को करुणा के रूप में देखा। करुणा या सत्य की मूर्ति मूर्ति के रूप में अलग बना सकते हैं। इसी तरह परमेश्वर की भी प्रेमस्वरूप, दयास्वरूप मूर्तियाँ बना सकते हैं। इन सब मूर्तियों के बनाने का अर्थ यह नहीं कि परमात्मा भी इतने हैं। ईश्वर में अनेक गुण हैं। उन सबका हम एक साथ ध्यान-चिंतन नहीं कर सकते। जिन गुणों की हमें अत्यंत आवश्यकता है, उन्हींके

रूपों में ईश्वर का चिंतन करना चाहिए। हम अपने हृदय को परखें। अगर अनुभव हो कि हमारे हृदय में कठोरता ज्यादा है, तो करुणामय परमेश्वर का चिंतन करना चाहिए। अगर झूठ काफी मालूम पड़े तो सत्यस्वरूप परमेश्वर का ध्यान बढ़ाना चाहिए। अगर यह मालूम हो जाय कि चित्त में द्वेष-मत्सर है, तो प्रेममय परमात्मा का ध्यान करें। इस तरह अपनी आवश्यकता के अनुसार परमेश्वर का भिन्न-भिन्न गुणों के रूप में चिंतन करना चाहिए।

ये गुणमूर्तियाँ इसलिए अलग-अलग बनती हैं कि गुण अलग-अलग हैं। फिर भी गुणवान् परमेश्वर अनेक नहीं, एक ही है। हम एक ही परमेश्वर को अनेक गुणों के रूप में उपासना करना चाहते हैं। बाकी यह मूर्ति की बात तो बच्चों का खेल है। कई लोगों की मनःस्थिति बच्चों की-सी होती है। इसलिए इन मूर्तियों का भक्तिमार्ग में कुछ-न-कुछ उपयोग होता ही है। किंतु मूर्ति मुख्य नहीं, परमेश्वर के गुणों का चिंतन और मनन ही मुख्य है।

अभेद-निर्माता आकाश

मौनचिंतन में हमें परमेश्वर के जिस नाम की अभिरुचि हो, उसे ले सकते हैं, यहाँ चारों ओर खुला आसमान है, इसलिए हृदय विशाल बन सकता है। वह किसी मंदिर और चर्च में जितना विशाल बन सकता है, उससे बहुत अधिक विशाल आसमान के नीचे बन सकता है। क्योंकि आसमान परमेश्वर का छत्र है, उपनिषद् में उसका बहुत सुंदर वर्णन किया गया है। शिष्य गुरु से पूछता है: 'गुरुदेव! हृदय कितना बड़ा है?' ऋषि जवाब देते हैं: 'यावान् वा अयमाकाशः तावान् एषः अन्तर्हृदयाकाशः' अर्थात् जितना बड़ा यह विशाल आकाश है, उतना ही विशाल हृदय के अंदर का आकाश है। अगर ऋषि छोटे कमरे में बैठते और आस-पास का आकाश दिखाते, तो हृदय छोटा दीखता। किंतु वे विशाल आकाश के नीचे बैठते थे, इसलिए उनका हृदय विशाल बना था।

इसलिए हम आसमान के नीचे बैठना मंदिर, मस्जिद और चर्च से बहुत अच्छा समझते हैं। ये मंदिर, मस्जिद और चर्च मनुष्यों में कुछ-न-कुछ विभाग करते ही हैं, पर परमेश्वर का यह आकाश किसी प्रकार का भेद नहीं करता।

आसमान के नीचे जितना एकता का भाव होता है, उतना किसी मंदिर में नहीं। चर्च और मंदिरों की दीवारों से हृदय में भी दीवारें आ जाती और वे संकुचित हो जाते हैं। इसलिए दुनिया में विभिन्न धर्मों के बीच झगड़े चलते हैं। जो धर्म एकता के स्थापनार्थ निर्माण हुआ, वही भेद निर्माण करता है।

इसके सिवा कई प्रार्थना-मन्दिर में बहनें जाकर नहीं बैठ सकतीं। मस्जिद में भी पुरुष ही बैठते हैं, स्त्रियों को प्रवेश नहीं मिलता है। सन् १६४८ की बात है। मैं अजमेर में एक बड़ी मस्जिद देखने गया था। मुसलमानों ने मेरा बड़ा स्वागत किया। वह स्थान 'हिन्दुस्तान का मक्का' माना जाता है। उन दिनों हिन्दू-मुसलमानों के बीच बहुत झगड़े चल रहे थे। अजमेर में मुसलमानों को बड़ा खतरा मालूम हो रहा था। मैं वहाँ सात दिनों तक रहा। मैंने सबको समझाया कि इस तरह झगड़ा करना ठीक नहीं। फलस्वरूप हिन्दू और मुसलमान मान गये और मस्जिद में ही प्रेम से एक साथ बैठकर सबने प्रार्थना की। दूसरे दिन नमाज के समय पुनः मैं पहुँचा। देखा, सारे भक्तजन बहुत शान्ति से बैठे थे। उसमें एक भी स्त्री न थी। उन लोगों का मुझपर बड़ा ही प्रेम और विश्वास रहा। हरएक ने आकर हमारे हाथ का चुम्बन किया। यह कार्यक्रम आधा-पौन घंटे तक चला। आखिर मुझे जब चंद बातें कहने के लिए कहा गया, तब मैंने कहा: 'आपकी शान्तिमय प्रार्थना देख मुझे बड़ी खुशी हुई। किंतु यह न समझ सका कि ईश्वर की प्रार्थना में भी स्त्री-पुरुष का भेद क्यों कायम रखा जाता है? मुसलमानों को अपने रिवाज में इतना सुधार करना ही होगा।'

आज की हमारी प्रार्थना किसी मंदिर या मस्जिद में नहीं, बल्कि आसमान के नीचे है, इसलिए अभेद है। यहाँ स्त्री-पुरुष दोनों बैठे हैं, सब धर्मों के लोग इकट्ठे हैं। इसलिए हम सब बड़े प्रेम से परमेश्वर के गुणों का चिंतन करें।

कडुलोर (दक्षिण अर्काट)
११-७-'५६

पूर्णनीति की स्थापना कैसे हो ?

हमारे धर्मशास्त्रों में कोई भी बात एकांगी नहीं है। उन्होंने चोरी को पाप माना, इसलिए 'अस्तेय-व्रत' बनाया। किन्तु उसके साथ ही 'असंग्रह-व्रत' भी बना दिया। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, ये पाँच धर्म हमें बताये गये। 'अस्तेय' का अर्थ चोरी न करना, और 'अपरिग्रह' का अर्थ संग्रह न करना है।

पूर्णनीति और एकांगी नीति

आज हमारे समाज में 'परिग्रह' को कानून की मान्यता प्राप्त है, पर चोरी को नहीं। यह एकांगी नीति है। यह नीतिशास्त्र हमें बदलना होगा। पुराने जमाने की नीति काफी एकांगी थी, जो अब तक चली आयी। पति कितना भी दुराचारी हो, फिर भी उसे देववत् समझकर उसकी पूजा करना पत्नी को सिखाया गया। यह बहुत अच्छी बात है, परन्तु इसका दूसरा बाजू भी देखना चाहिए। पत्नी के लिए पति देवता है, तो क्या पति के लिए पत्नी भी देवता है या दासी ? 'पूर्णम् अदः, पूर्णम् इदम्' याने यह भी देवता और वह भी देवता ! पति पत्नी के देवता और पत्नी पति के देवता हैं। गुरु शिष्य के देवता और शिष्य गुरु के देवता हैं। राम कौशल्या के देवता और कौशल्या राम के देवता हैं। यही पूर्ण नीति है। आज की नीति अधूरी और एकांगी नीति है। नौकर तो स्वामी को मालिक माने, उसे स्वामीनिष्ठा सिखायी जाय, पर जैसे स्वामीनिष्ठा है, वैसे सेवकनिष्ठा भी तो होनी चाहिए। पतिव्रताधर्म सिखाना अच्छा है, परन्तु पत्नीव्रतधर्म भी तो होना चाहिए। आज हमने एकांगी नीति बनायी, इसलिए समाज सुखी नहीं है। अतः हमें पूर्ण नीति की स्थापना करनी होगी और इसलिए आज का समाज पूरी तरह से बदले बिना सुख न मिलेगा।

तलवार से प्राप्त सत्ता जनता में नहीं बटती

सवाल है कि समाज कैसे बदलेगा ? क्या मारने-पीटने और ठोकने से वह

बदल जायगा ? नहीं, ऐसा करेंगे, तो प्रतिष्ठा मारने को मिलेगी। उससे क्रान्ति न होगी, क्योंकि पुराने समाज में मारने को तो प्रतिष्ठा प्राप्त है ही। बच्चे ने गलती की, तो बाप एक तमाचा लगाता है। नागरिक ने गलत काम किया, तो पुलिस डंडे से पीटती ही है। यह पुराने समाज का मूल्य है। फिर हम भी उसी मारने-पीटने का आधार लेंगे, तो पुराना मूल्य और पुराना समाज ही कायम रहेगा। फिर तो स्त्रियाँ भी आगे नहीं आयेंगी, क्योंकि मारने-पीटने में पुरुष ही जोरदार होते हैं। फिर तो पीटनेवालों का ही राज्य होगा।

रूस में कम्युनिस्टों ने वादा किया था, मार्क्स-लेनिन ने कहा था कि 'शस्त्र से क्रान्ति करेंगे, तो जनता के हाथ में सत्ता आ जायगी और उसके बाद राज्य-सत्ता खतम हो जायगी'। किन्तु क्या वह बना ? वहाँ जिनके हाथ में शस्त्र आ गये, उनके हाथ में वे कायम रहने के लिए रह गये और उन्हींकी सत्ता चली। जब स्टालिन की सत्ता चलती थी, तो क्या मजाल कि क्रुश्चेव भी उसके विरुद्ध कुछ कह दे। किन्तु स्टालिन की मृत्यु के बाद अब वह उसे गालियाँ भी देने लगा है, सबूत पेश कर रहा है कि स्टालिन कितना जालिम था, कितना सख्ती से बरतता था। इस तरह स्पष्ट है कि एक बार जिनके हाथ में तलवार आ जाती है, तो फिर उसके हाथ से वह सारी दुनिया में बँटती नहीं, वह कुछ लोगों के हाथ में ही कायम रह जाती है। सारांश, अगर हम मारकर या हिंसा पर श्रद्धा रखकर काम करेंगे, तो समाज में नये मूल्य न आयेंगे, पुराने मूल्य ही कायम रह जायेंगे। इसलिए हमें पुराने मूल्यों में पूरा परिवर्तन करना चाहिए।

जो लोग क्रान्ति की बात करते और हिंसा से पूरी-क्रान्ति हो जाने की उम्मीद रखते हैं, वे क्रान्ति को जानते ही नहीं। क्रान्ति तो तब होती है, जब मनुष्य के विचार में परिवर्तन होता है। क्रान्ति सिर काटने से नहीं, सिर बदलने से होती है। अगर हम अन्दर के दिमाग को बदलने की हिम्मत न करेंगे, तो क्रान्ति न होगी। हमें समाज के मूल्य बदलने हैं, मालकियत मिटानी है, किन्तु यह सब समझा-बुझा कर, प्रेम के और अहिंसा के तरीके से करना है।

लोकशिक्षण से राज्यविलयन

यह काम नया मानव करेगा। पूछा जा सकता है कि नये मानव का कैसे

निर्माण होगा ? इसके लिए बच्चों और समाज को भी नये प्रकार से तालीम देनी होगी। समाज को नये ढंग से तालीम देने का काम भूदान-यज्ञ कर रहा है। बच्चों को नयी तालीम देने से ही उनके दिमाग बदलेंगे और वे समाज-परिवर्तन की हिम्मत करेंगे।

एक ओर भूदान का आंदोलन जोरों से चले और उसके साथ उसका साथी ग्रामोद्योग भी चले। दूसरी ओर बच्चों के लिए नयी तालीम की योजना हो। इस तालीम में बच्चों को शरीर-परिश्रम-निष्ठा सिखायी जायगी और ऊँच-नीच-भेद न रहेगा। 'जातिभेद का खयाल गलत है। सबकी योग्यता समान हो, सबको समान प्रेम मिले।' यह सारी तालीम बच्चों को दी जानी चाहिए। समाज इसी तरह बदल सकता है। वह किसी भी राजनैतिक पक्ष के जरिये सत्ता प्राप्त करने से न बदलेगा।

बाबा जाहिर करना चाहता है कि समाज में से सत्ता लुप्त हो जायगी, तभी वह बदलेगा। राज्यशासन सर्वथा विकेन्द्रित होकर अन्त में खतम हो जाना चाहिए। उसे खतम करने की प्रक्रिया लोक-शिक्षण से ही हो सकती है। कुछ लोगों को श्रद्धा है कि हम दिल्ली के तख्त पर बैठकर जादू से हिन्दुस्तान का परिवर्तन कर लेंगे। ऐसा जो मानते हैं, वे भ्रम में हैं। उस सिंहासन पर बैठकर और आज का समाज कायम रखकर कुछ सेवा हो सकती है, लेकिन उससे आज का समाज बदला नहीं जा सकता, क्रान्ति नहीं हो सकती।

कडुडलोर (दक्षिण अर्काट)
११-७-'५६

भूदान-यज्ञ से गरीब-अमीर, दोनों को भक्ति-दीक्षा

हम गाँव-गाँव जाकर एक सादी-सी बात समझा रहे हैं। हम किसी गाँव में रहते हैं, तो हमें अपने पड़ोस के भाइयों के सुख दुःख में हिस्सा लेना चाहिए। जानवर और मनुष्य में यही फर्क है। मनुष्य दूसरे के लिए त्याग करके आनन्द और सुख हासिल करता है, यही आध्यात्मिक गुण है। एकादशी का व्रत जानवर को मालूम नहीं रहता। वे अपने ही सुख से सुखी और दुःख से दुःखी होते हैं। हिरन के दुःख से शेर को सुख होता है। सारांश, दूसरों को लूटकर संपत्ति इकट्ठा करना, यह मानव-स्वभाव नहीं, पशु-स्वभाव है। इसलिए दूसरों को दान देना, करुणा प्रकट करना, यही धर्म का लक्षण है। यही सच्चा भक्ति-मार्ग है। करुणा को ही 'भक्ति' कहते हैं। हम सब परमेश्वर की संतान हैं, इसलिए हमें सब पर समान प्रेम होना चाहिए। उनके दुःख का निवारण करना ही भक्ति-मार्ग है। स्वामीजी (कुंड्कुडि के मठाधिपति) ने हमें आज अपना विचार यह बताया कि 'वे भूदान में इसीलिए काम करते हैं कि इससे गरीबों का दु.ख-निवारण होता है। इसके बिना वे उन्हें भक्ति-मार्ग सिखा नहीं सकते। जिन्हें रोज का खाना ही नहीं मिलता, उन्हें भक्ति-मार्ग का आकर्षण नहीं हो सकता। प्रसाद मिलने पर ही भक्ति उन्हें खींचेगी।' स्वामीजी की यह बात सुनकर हमें खुशी हुई, क्योंकि यह सही बात है। भूखे को परमेश्वर का स्मरण कराना गलत है, जब कि हमने खाया हो, हम उसके अधिकारी नहीं हो सकते।

सहानुभूति का जीवन ही भक्ति-मार्ग

दरिद्रों को भक्ति की दीक्षा देनी हो, तो उन्हें खिलाना चाहिए। यह एक सत्य वस्तु है। इससे भी बेहतर और बड़ा सत्य यह है कि जब भूखे हमारे सामने हैं और हम खाते हैं, तो हमें भक्ति नहीं सधेगी। भूदान-यज्ञ से दरिद्र और श्रीमान्, दोनों का भक्ति-मार्ग खुल गया। श्रीमान् भक्ति का नाटक करते हैं, पर उन्हें सचाई हासिल नहीं होती, क्योंकि वे आसपास के गरीबों का दुःख दूर नहीं करते। इसलिए आज की हालत में श्रीमान् नीतिहीन बनते हैं। उन्हें भी

भक्ति सिखाने के लिए भूदान-यज्ञ आरंभ हुआ है। दोनों तरह से भूदान की जरूरत है। जो मनुष्य भूखा है, उसे खाने को नहीं मिलता और वह पुरुषार्थ-हीन तथा पाप का भागी बनता है। और जो दूसरे को लूटकर खाता और वैभव में रहता है, वह भी पाप का भागी होता है। दारिद्र्य भोगते रहना पाप है और समृद्धि भी भोगते रहना पाप है। पुण्य यही है कि आसपास के लोगों के सुख-दुःख से हम सुखी या दुःखी बनें। इस तरह सहानुभूति का जीवन बिताना भक्तिमार्ग का लक्षण है। भूदान से करुणा की दीक्षा मिलती है, जो भक्ति का ही एक रूप है।

मेलपट्टाम्बक्कम् (दक्षिण अर्काट)

१२-७-'५६

भारत में कैसी योजना बने ? : २२ :

एक भाई ने पूछा कि 'स्वराज्य-प्राप्ति के बाद हिन्दुस्तान के लोगों में काम करने का उत्साह आना चाहिए था। पर वह क्यों नहीं आया ? दूसरे देशों में, खासकर चीन में लाखों लोग देश के कामों में लगे हैं। वहाँ के नेता जो योजना बनाते हैं, उसे पूर्ण करने के लिए वे खूब मेहनत करते हैं। वहाँ के नेता, जनता और सरकार, तीनों एक ही दिशा में काम करते हैं। वहाँ जो योजना बनायी जाती है, वह सबके सहयोग से पूरी होती है।' प्रश्न बहुत जटिल है। इसके उत्तर में कई बातें निकलती हैं। इसके लिए देश की स्थिति, गुण और दोष, सबकी छानबीन करनी होगी। अपने देश के जो गुण हैं, उनसे लाभ उठाने की योजना न हो, तो लोगों में उत्साह न आयेगा। सम्भव है कि हम कुछ गलती कर रहे हों, दोष-निरसन की कोई तीव्र योजना न होती हो और गुणों से लाभ उठाने की भी कोई योजना न होती हो। हमने कई बार कहा है कि स्वराज्य-प्राप्ति के बाद एकदम काम में लगने की वृत्ति खतरनाक होती है। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद अधिक ध्यान-चिंतन करना चाहिए। एक भी ऐसा कदम न उठाया जाय, जिसे वापस खींचना पड़े। साथ ही जो भी कदम उठाये जायँ,

वे ऐसे न हों, जिनमें बहुत-से लोगों का बहुत मतभेद हो। हम ऐसा कदम उठायें, जिसके बारे में सबसे सलाह-मशविरा हो गया हो और बहुत-से लोग उसे पसंद करते हों। इस तरह सोचकर कोई योजना बनती है, तो उसमें जनता की ताकत अवश्य लगती है।

रजोगुणी योजना भारत की प्रकृति के प्रतिकूल

हमारे देश में कुछ तमोगुण है, यह हमारा दोष है और कुछ सत्त्वगुण है, यह हमारा गुण। हमें तमोगुण का निरसन करना होगा। हममें आलस्य, अनियमितता, अव्यवस्था आदि जो दुर्गुण हैं, वे तमोगुण के लक्षण हैं। इसी तरह कुछ त्याग करने की वृत्ति, कुछ भक्ति, श्रद्धा, धर्मनिष्ठा या आदरभाव है, वह सारा सत्त्वगुण का हिस्सा है। उसका लाभ हमें मिलना चाहिए, उसे बढ़ावा देना चाहिए। अगर हम इनसे लाभ नहीं उठाते और रजोगुण की ही योजना करते हैं, तो काम न बनेगा। उस रजोगुण पर दोनों बाजुओं से आक्षेप आयेगा।

सत्वगुणी लोग उस ओर खिंच नहीं सकते, क्योंकि उसमें रजोगुण है। हम केवल बड़े-बड़े काम करते रहें, उनका उद्देश्य क्या है, यह ठीक मालूम न हो, फिर भी काम करते रहें, तो इस तरह उद्देश्य की सफाई के बिना कोई भी बड़ा काम करने की तरफ सात्त्विक लोगों का मन नहीं जाता। हम ग्रामों को किस तरह बनाना चाहते हैं, शहर और ग्रामों के बीच कैसा सहयोग चाहते हैं, हम पैसे का उपयोग बढ़ाना चाहते हैं या घटाना, हम सत्ता का केन्द्रीकरण चाहते हैं या विकेन्द्रीकरण, ऐसे असंख्य प्रश्न उपस्थित होते हैं। इन प्रश्नों के बारे में सफाई हुए बिना बड़े काम उठाये नहीं जा सकते। इस तरह सात्त्विक लोगों का आकर्षण इस राजसिक कार्यक्रम के लिए नहीं होता। वे कहते हैं कि 'यह तो आपकी भौतिक उन्नति की योजना हो रही है, इसमें जीवन के बारे में आध्यात्मिक विचार क्या है, मानसिक उन्नति के बारे में क्या विचार है? आप इतना ही कहते हैं कि किसी तरह उत्पादन बढ़ाओ, फिर उसका ठीक ढंग से बँटवारा होता है या नहीं, इसका कोई सवाल नहीं। किस चीज

का उत्पादन बढ़ाना चाहिए और किस चीज का घटाना चाहिए, मानसिक प्रवृत्ति के लिए कौन-सी चीज अनुकूल है और कौन-सी प्रतिकूल, इन सबका कुछ भी विचार नहीं है।' इस तरह केवल भौतिक प्रगति की योजना की जाती है, तो सात्त्विक लोगों को उसमें रस नहीं आता। तमोगुणी लोगों का भी उस पर आक्षेप होता है, क्योंकि इसमें खूब काम करना पड़ता है और वे आलसी होने से काम करना नहीं चाहते। इसी तरह रजोगुणात्मक योजना बनती है, तो उस पर सत्त्वगुणी और तमोगुणी, दोनों का आक्षेप होता है।

हमारे देश में ये ही दो मनोवृत्तियाँ ज्यादा हैं और रजोगुणी मनोवृत्ति कम है। अगर यह मनोवृत्ति ज्यादा होती, तो योजना में खूब जोर आता। सिर्फ कुछ अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों में, पश्चिम की विद्या सीखे हुए लोगों में रजोगुण होता है। इसलिए हमारे देश में योजना ऐसी बननी चाहिए कि प्रथम सत्त्वगुणी लोगों का उस ओर आकर्षण हो। फिर उनके द्वारा तमोगुण पर हमला और रजोगुण का नियमन किया जा सकेगा। यह सारा अपने देश में नहीं होता, इसीलिए जनता में उत्साह पैदा नहीं होता। उस भाई के सवाल की यही मुख्य मीमांसा है।

सत्त्वगुणी लोगों को रस किसमें है ?

हिन्दुस्तान के सत्त्वगुणी मनुष्य की प्रवृत्ति आज की इन बड़ी-बड़ी योजनाओं की तरफ नहीं है। आप कहते हैं कि हमारे देश में फी आदमी २५ गज कपड़ा पैदा होना चाहिए, जिसमें बहुत सारा मिल में बनेगा। और बाकी थोड़ा-सा बुनकरों के जरिये बनवायेंगे। अब सत्त्वगुणी मनुष्य कहेगा कि इतना २५ गज कपड़ा पैदा कर उसका उपयोग ही क्या किया जायगा? देश में फल, तरकारी, दूध बढ़ाते हो, तो वह यह न पूछेगा कि उसका प्रयोजन क्या है। सत्त्वगुणी लोगों की मनोवृत्ति इस प्रकार की होती है। हिन्दुस्तान में प्राचीन काल से लेकर आज तक मांसाहार-परित्याग का एक आन्दोलन चला है। अगर हम चाहें कि हिन्दुस्तान मांसाहार से मुक्त हो जाय, तो सात्त्विक लोगों को उसमें रस आयेगा। किंतु देश मांसाहार से तब मुक्त हो सकता है, जब देश में दूध, फल, तरकारियाँ खूब बढ़ेंगी और सबको खूब दूध-फल मिलेगा। इस तरह अगर फल, तरकारी

या दूध बढ़ाने और गोरक्षण की बात हो, तो सात्त्विक लोगों को उसमें उत्साह आयेगा। ऐसी कई मिसालें दी जा सकती हैं, जिससे सात्त्विक लोगों को प्रेरणा हो सकती है। जब सात्त्विक लोग कहेंगे कि यह योजना बहुत जरूरी है, इससे धर्म बढ़ेगा, लोग सुखी होंगे, तब उनके जरिये तमोगुणी लोगों को प्रेरणा दी जा सकेगी। तमोगुणी लोगों के परिवर्तन के लिए रजोगुण पर्याप्त नहीं, उसके लिए सत्त्वगुणी लोग ही चाहिए। इस तरह समाज के मूल में जाकर गुणवृत्ति के बारे में सोचने की जरूरत है।

भूदान भारत की मनोवृत्ति के अनुकूल

यद्यपि कार्यकर्ताओं की कमी के कारण तमिलनाड में अभी तक भूदान में जोर नहीं आया, फिर भी यह चीज लोगों का ध्यान खींचती है। क्योंकि भूमिहीनों को भूमि दिलाना, दुःखियों का दुःख मिटाना सत्त्वगुण के अनुकूल है। इसीलिए इस काम में सात्त्विक लोगों की एकदम सहानुभूति प्राप्त हो जाती है। उनके जरिये न केवल तमोगुणियों पर, बल्कि रजोगुणियों पर भी हमला करना पड़ता है, क्योंकि रजोगुणी लोग जमीन को पकड़े हुए हैं। इसलिए इस आन्दोलन में सात्त्विक लोगों का ही उपयोग होता है। इसमें सत्त्वगुण की बहुत प्रेरणा है, क्योंकि इसमें कुछ-न-कुछ त्याग करना पड़ता है, दुःखियों का दुःख मिटाना होता है, इसमें धर्म का साक्षात्कार होता है और करुणा बढ़ती है। परिणाम यह होता है कि बच्चे भी कहते हैं कि सबको जमीन मिले। उनके सामने अर्थशास्त्र की भाषा रखेंगे, तो वे कुछ न समझेंगे।

अभी आन्ध्रवालों ने अर्थशास्त्र की चर्चा करके १५० एकड़ की 'सीलिंग' (अधिकतम संख्या) बनाने की सोची। किंतु उसमें भी उन्हें डर मालूम हुआ और उन्होंने तय किया कि इसके बारे में फिलहाल नहीं सोचेंगे। वे इसके बारे में तब सोचेंगे, जब जमीनवालों को अपनी जमीन आपस में बाँटने और बेचने के लिए पूरा समय मिल जायगा। फिर वे कानून बनायेंगे, तो जमीनवालों के ही हाथ में जमीन रह जायगी, परिस्थिति में कोई फर्क न पड़ेगा। सिर्फ जो लोग 'कानून बनाओ' कहते हैं, उन्हीं के लिए कानून बनाया जायगा। यह सारा रजोगुण

का लक्षण है। एक रजोगुणी कहता है कि हम जमीन को बराबर पकड़े रहेंगे और दूसरा रजोगुणी कहता है कि जमीनवालों को मारना-पीटना चाहिए, तभी वह मिलेगी। लेकिन अब सत्त्वगुण सामने आया है, जो कहता है कि हमें न कानून चाहिए, न मारकाट। इसलिए इसमें सात्त्विक लोगों को एकदम जोर मिलता है। एक मठाधिपति ने हाल ही में हमसे कहा कि इस काम को तो हम लोगों को उठा लेना चाहिए। यही बात हमें कितने ही धार्मिक लोगों ने कही। यद्यपि उनके पीछे कई काम होते हैं, इसलिए वे एकदम से इसे उठा नहीं सकते, फिर भी भूदान का काम उनका दिल खींच लेता है। इस तरह सत्त्वगुण को बाहर लाकर उसके आधार पर कार्यक्रम बनायेंगे, तब लोगों में उत्साह आयेगा और काम भी बनेगा।

पोदुर (दक्षिण मलबार).

१५-७-'५६

क्रान्ति-विचार और भ्रान्ति-विचार : २३ :

आज दुनिया में दो गुणों के बीच कशमकश चल रही है। एक ओर रजोगुण जोर कर रहा है, तो दूसरी ओर तमोगुण पड़ा है, दोनों एक-दूसरे की प्रतिक्रिया है। मनुष्य खूब जोरों से काम करता है, तो यह रजोगुण है और काम से थक जाने पर सोता रहता है, तो यह तमोगुण। आठ-आठ घंटे सोने पर मनुष्य को सोने की भी थकान आ जाती है। इसलिए फिर से वह जोरों से काम करने लग जाता है। इस तरह रजोगुण की प्रतिक्रिया तमोगुण में और तमोगुण की प्रतिक्रिया रजोगुण में होती है।

रज, तम एक-दूसरे के बाप-बेटे

दोनों एक दूसरे के पिता-पुत्र हैं। तमोगुण का पिता रजोगुण है, तो उधर तमोगुण भी रजोगुण का पिता है। दोनों बाप हैं और दोनों बेटे, क्योंकि दोनों एक-दूसरे को पैदा करते हैं। इस दृष्टि से देखा जाय, तो दोनों एक ही विकार

के दो रूप हैं। यद्यपि कुछ लोगों को तमोगुण की आवश्यकता होती है, फिर भी उनमें रजोगुण का विकार प्रधान होता है। और दूसरे कुछ ऐसे होते हैं कि उन्हें कुछ करने की जरूरत होती है, फिर भी वे कम-से-कम काम करेंगे और बाकी दिन-रात सोते रहेंगे। वे व्यसनों में मस्त रहते हैं, उन्हें काम करने की रुचि नहीं होती। सोना ही उनका परमानंद है।

दोनों ओर से पाप

रजोगुणी लोग दुनिया को लूटने का कार्य करते हैं। बहुत जोरदार काम चलाते-चलाते वे हाइड्रोजन बम तक पहुँच गये हैं। अब उनकी आपस में टक्कर शुरू हो गयी है, क्योंकि रजोगुण का ठेका भगवान् ने किसी एक देश को ही नहीं दिया। दूसरे देशों में भी रजोगुण होता है। रजोगुणियों की इस आपसी टक्कर से सारी दुनिया भयभीत है। उधर रजोगुणियों की तमोगुणियों के साथ टक्कर हो रही है। तमोगुणी लूटे जाते हैं, जिसका उन्हें भान नहीं, वे आलसी और सुस्त हैं। लोग उन्हें पीड़ा देते हैं, तो उसका उन्हें दुःख भी होता है, परन्तु प्रतिकार-करने की न उनमें हिम्मत है, न स्फूर्ति। आखिर प्रतिकार करने के लिए भी तो कुछ मेहनत करनी पड़ती है, कुछ तकलीफ उठानी पड़ती है? उतना भी वे नहीं करते, इसलिए कष्ट सहते रहते हैं और कभी-कभी अपने बचाव के लिए वेदान्त का भी उपयोग करते हैं।

सारांश, जिन्होंने सारी दुनिया का कब्जा करने की महत्त्वाकांक्षा रखी है, वे तो पाप के ठेकेदार हैं ही, किन्तु जो उसका प्रतिकार नहीं करते, लूटे जाते हैं, दुःख भोगते रहते और सिर्फ गालियाँ देते हैं, वे भी पाप में पड़े हैं। इस तरह दोनों बाजू पाप हो रहा है। पाप के भार से पृथ्वी काँप रही है। लोग कहते हैं कि भूमि को जनसंख्या का भार हो रहा है, बड़े-बड़े नेता भी कहते हैं कि बहुत ज्यादा जनसंख्या हो गयी है, उसे कैसे घटाया जाय? इसकी योजना करनी ही होगी। पर वास्तव में दुनिया को आज जनसंख्या का नहीं, पाप का भार हुआ है। पापभार से पृथ्वी तंग आ गयी है, दीन बन गयी है।

भूदान सत्त्वगुणी कार्य

दुनिया को इस हालत से छुड़ाने का यही उपाय है कि सत्त्वगुण को सामने लाया जाय। दुनिया में जितनी भलाई और अच्छाई है, उसे इकट्ठा होना चाहिए। फिर उसकी ताकत से तमोगुण भी भाग जायगा और रजोगुण नियंत्रण में आयेगा। भूदान यज्ञ से हमारी यही इच्छा है। आप देखते हैं कि ५ साल से हमारी सतत यात्रा चल रही है। अब तक हम हर रोज एक पड़ाव करते थे, परंतु अब दो पड़ाव करना शुरू किया है। परिणाम यह होगा कि जब तक हमारे सालभर में ३५० पड़ाव होते थे, अब ७०० होंगे। इस तरह अगर हम १० साल तक घूमते रहेंगे, तो भी ७००० गाँवों में ही जा सकेंगे। लेकिन हिन्दुस्तान में पाँच लाख गाँव हैं। इन सभी गाँवों में पहुँच सकें, इस आकांक्षा से हमने दो पड़ाव शुरू नहीं किये। अगर हम मन में ऐसी अहंता रखें, तो वह रजोगुण का काम हो जायगा। हम रजोगुण को पसन्द नहीं करते, उससे कोई धर्मकार्य नहीं होता। वास्तव में हमने रोज के दो पड़ाव इसलिए शुरू किये कि हमारे मन में एक तीव्रता है। वह तीव्रता हमसे कहती है कि तुमसे जितना बन सके, उतना परिश्रम करो। सत्त्वगुण को इकट्ठा करने के लिए अधिक-से-अधिक परिश्रम करना चाहिए। हम जानते हैं कि भूदान-यज्ञ हमारी कृति से पूरा नहीं होगा। वह तब पूरा होगा, जब जन-समाज उसे उठायेगा। फिर भी हमें विश्वास है कि यह काम केवल संख्या से न होगा। केवल संख्या से जमीन छीनने का काम होगा। उससे चाहे जमीन बँट जाय, परन्तु सत्त्वगुण ऊपर नहीं उठेगा। धर्म न बढ़ेगा और धर्मबुद्धि बिना बढ़ाये जमीन का बँटवारा हो जाय, तो भी उससे दुनिया का उद्धार न होगा। उस कार्य की गिनती रजोगुण में होगी और रजोगुण तो आज दुनिया में है ही। उसीके जोर से साम्राज्यवाद और दूसरे वाद फैले हैं। अगर हम जमीन छीनने का आन्दोलन चलायें, उसमें चाहे लोगों को जमीन मिल भी जाय और वे सुखी हो जायँ, तो भी वह सुख टिकेगा नहीं। किन्तु लोगों के हृदय में सद्भावना पैदा होकर वे प्रेम से अपने भूमिहीन भाइयों को जमीन देंगे, तो उससे क्रान्ति होगी।

मानसिक क्रांति की मिसालें

इन दिनों बहुत-से लोग 'क्रान्ति' का नाम लेते हैं। ऐसे भी लेते हैं, जिन्हें वह नाम लेने का हक नहीं। वे समझते हैं कि हम जोर-जबर्दस्ती से क्रान्ति करेंगे। इतना ही नहीं, उन्होंने क्रान्ति का अर्थ ही 'खूनी क्रान्ति' कर दिया है। मान लीजिये कि इस गाँव में आग लग जाय और सारा गाँव जल जाय, तो क्या वह क्रान्ति होगी? अवश्य ही सब लोग जल मरेंगे, तो छोटा नहीं, बड़ा भारी फर्क होगा। परन्तु केवल बड़ा भारी फर्क होने से क्रान्ति नहीं होती। जब तक मन में क्रान्ति नहीं होती है, तब तक वह बाहर होती ही नहीं है। 'मानसिक परिवर्तन' को ही 'क्रान्ति' कहते हैं।

मैंने कई दफा मिसाल दी है कि पहले के जमाने में चोरों के हाथ काटे जाते थे, लेकिन आज उस चीज को कोई पसंद न करेगा। उल्टा लोग कहेंगे कि 'चोरों के हाथ काटे जायँगे, तो उनका काम करने का साधन ही खतम हो जायगा और उनका भार समाज पर कायम रहेगा। इसलिए चोरों को और कोई सजा दीजिये, परन्तु उनके हाथ मत काटिये।' इस तरह समाज के विचार में फर्क हुआ, तो यह विचार-क्रांति हुई। अब कभी भी चोरों के हाथ न काटे जायँगे। बल्कि इसके आगे चोरों को जेल भी न भेजा जायगा। लोग कहेंगे कि उन्हें जेल भेजना याने उन्हें खिलाना-पिलाना उनके बीबी-बच्चों को भूखों मारना है। इसलिए चोरों को जेल में भेजने के बजाय ऋषियों के आश्रम में भेजना चाहिए, जहाँ कुछ जमीन हो और उन्हें काश्त करना सिखाया जाय। फिर कुछ समय बाद उन्हें ४-५ एकड़ जमीन दी जाय, जिससे वे आगे कभी चोरी न करेंगे।

समाज में बदल हुआ, तो यही होगा। अभी इंग्लैण्ड की पार्लमेण्ट ने प्रस्ताव किया है कि फाँसी की सजा रद्द की जाय। हम समझते हैं कि इंग्लैण्ड हिंसक है और हम हिन्दुस्तानी बड़े अहिंसक। फिर भी वहाँ यह प्रस्ताव हो भी गया और यहाँ के लोग अभी इस बारे में डाँवाडोल ही हैं। यहाँ के बड़े-बड़े नेता कहते हैं कि फाँसी की सजा बंद होगी, तो गुनाह बढ़ेंगे और मामला कठिन

हो जायगा। कहना पड़ता है कि इस मामले में हिन्दुस्तान के लोग इंग्लैंड से पिछड़ गये और वहाँ का लोकमत आगे बढ़ गया।

एक जमाने में किसी पुरुष की एक से ज्यादा पत्नी होना भूषण माना जाता था। कहते थे कि फलाने राजा की पाँच सौ रानियाँ हैं, तो फलाने की एक हजार। याने जितनी ज्यादा सेना, उतना राजा का वैभव ज्यादा! इसी तरह जितनी ज्यादा रानियाँ, उतना ही उसका वैभव ज्यादा माना जाता था। लेकिन आज अगर किसीको एक से ज्यादा पत्नी हो, तो वह लज्जित होता है। यह मानसिक क्रान्ति है।

क्रांति माने क्या?

इस तरह स्पष्ट है कि जहाँ मन बदलता है, वहीं क्रांति होती है। मन मार-पीटकर नहीं बदला जा सकता, वह तो विचार से बदल सकता है। यहाँ असंख्य राजा-महाराजा हुए, पर वे लोगों का मन न बदल सके। लोगों का मन तो बदला यहाँ के आलवारों ने (संतों ने), जो दुनियाभर घूमते रहे और लोगों के पास जाकर उन्हें करुणा सिखाते रहे। उन्होंने लोगों को भलाई और सचाई से बरतने के लिए कहा। उन्होंने अपना खुद का जीवन अच्छा बनाया। वे सच्चे क्रान्तिकारी थे। जिन्होंने हाथ में तलवार ली, वे क्रान्तिकारी नहीं।

परसों हमारी लड़की याद दिला रही थी कि आज 'फ्रेन्च रेवोल्युशन' (फ्रान्सीसी क्रान्ति का दिन) है। अंग्रेजी भाषा में 'रेवोल्युशन' के कई अर्थ होते हैं। चरखा घूमता है, तो उसे भी 'रेवोल्युशन' कहते हैं। फ्रांस की आज की हालत ऐसी है कि वहाँ कोई भी सरकार चार-छह महीने से ज्यादा नहीं टिकती। लेकिन कुछ सौ साल पहले वहाँ के लोगों ने समता, स्वतंत्रता और बंधुता का नाम लेकर हाथ में तलवार उठायी और लोगों के सिर काट डाले। क्या मेरा सिर कायम रहे और दूसरों का कटे, इसीका नाम 'समता' है? हमारी लड़कियाँ कहती हैं, 'फ्रांस में बड़ी क्रान्ति हुई, जिससे दुनिया में सद्भावना फैली।' लेकिन आज तो फ्रांस रो रहा है, तो फिर वहाँ क्या क्रान्ति हुई? क्या 'मुख में राम बगल में छुरी हो', तो क्रान्ति कही जायगी?

इसी तरह से मुख में समता, बंधुता और हाथ में तलवार लेकर दूसरों के गले काटना है। इसमें जो विरोध है, लोग उसे नहीं समझते। यह मूर्खता बड़े-बड़े इतिहासकारों ने भी की है। हम रामायण, महाभारत के धर्मराज, द्रौपदी आदि का बहुत आदर करते हैं। उस जमाने में द्रौपदी के पाँच पति थे। पर क्या इस जमाने में किसी स्त्री के पाँच पति हो सकते हैं? आज मनुष्य का मन बदला है, विवाह-व्यवहार में भी क्रान्ति हो गयी है। नहीं तो एक जमाना था, जब कि विवाह की पद्धतियों में से 'लड़कियों को छीन ले जाकर शादी करना' भी एक पद्धति थी। *उसी तरह हाथ में तलवार लेकर गले काटने की* इन लोगों की क्रान्ति की पद्धति है।

क्रान्ति-विचार और भ्रान्ति-विचार

जैसे विचार बदलने पर मनुष्य ने अपने अनेक प्रकार के आचार बदल दिये, वैसे ही हमें मनुष्य का मन बदलकर राजनीति, समाजनीति और अर्थनीति में क्रान्ति लानी है। किंतु मन बदलने की बात आती है, तो कुछ लोगों की कमर ही टूट जाती है। वे कहते हैं कि ऐसी हृदय-क्रान्ति हमसे न होगी। वे केवल धर्म-विचार *में ही यह न मानते, तो दूसरी बात थी; पर वे तालीम में भी इसे नहीं मानते। उन्हें यह हिम्मत नहीं कि हम ज्ञान-प्रचार करेंगे, तो* उसके परिणामस्वरूप बदल लायेंगे। उन्होंने मान लिया है कि मनुष्य का मन जैसा है, वैसा ही रहेगा। फिर भी वे दुःखमुक्ति चाहते हैं। इस तरह का दुःखमुक्ति का काम तो भगवान् बुद्ध को भी सधा। उन्होंने दुःखमुक्ति का रास्ता बताया, पर यह नहीं कहा कि तुम्हारा मन जैसा है, वैसा ही रखो, तो भी दुःखमुक्ति होगी। लेकिन इन लोगों को यह बात सधी है। वे कहते हैं कि मनुष्य का मन जैसा-का-तैसा ही रहने दो, हम बाहर से समाज में परिवर्तन करेंगे, फिर लोग सुखी होंगे, पैदावार बढ़ेगी और पैदावार बढ़ने पर झगड़े क्यों होंगे? लेकिन हम उनसे कहते हैं कि समृद्धि होने पर झगड़े होते हैं या नहीं, यह श्रीमानों के घर में जाकर देखो। जितने ज्यादा पैसेवाले हैं, उतने ही झगड़े अधिक हैं। वे यह भी कल्पना कर लेते हैं कि आगे चलकर राजसत्ता

न रहेगी, लेकिन कहते हैं कि उसके लिए यह जरूरी है कि आज की सरकार अधिक-से-अधिक ताकतवर बने।

इस तरह के विचारों को हम 'क्रान्ति-विचार' नहीं समझते। वे तो स्पष्टतः 'भ्रांति-विचार' हैं। क्रांति-विचार यह है कि मनुष्य का मन बदले, सत्वगुण सामने आये, सत्वगुण की संघशक्ति बने, सारे सात्विक लोग कुल दुनिया की चिन्ता करें, रजोगुण को अंकुश में रखने की कोशिश करें, तमोगुण को जगाने की वृत्ति रखें, इस तरह सत्वगुण बढ़ेगा, तभी क्रांति होगी। हम गाँव-गाँव घूमते हैं, तो केवल भूमि लेने के लिए नहीं। हमारी यही कोशिश रहती है कि हम गाँव के सत्वगुणी लोगों को खींच सकें। जब रावण की नगरी में भी एक विभीषण था, तो आपके गाँव में कई सज्जन होंगे। इन सज्जनों को खींचने के लिए ही यह आन्दोलन है।

कलुन्दर पेट (दक्षिण अर्काट)
१६-७-'५६

व्यक्ति त्याग करे और भोग समाज को मिले : २४ :

इन दिनों यही कोशिश चलती है कि लोगों के सुख का परिमाण कैसे बढ़ाया जाय। हमारे देश में सबको पूरा खाना नहीं मिलता, दूध-तरकारी-फल नहीं मिलते, तो यह सब मिलना चाहिए, इसमें कोई शक नहीं।

अन्न, फल और दूध की वृद्धि अपेक्षित

इस देश की प्रवृत्ति मांसाहार की ओर नहीं है, क्योंकि हमारे पूर्वजों ने ही हमें यह मार्ग दिखाया है। 'कुरल' में तो इस पर एक अध्याय ही है। इस देश के लोगों की यह बड़ी इच्छा है कि मांसाहार से मुक्ति हो। यह भी भारत की एक विशेषता है। इसके लिए दूध, फल आदि खूब बढ़ने चाहिए। जापान के लोगों को दूध बहुत कम मिलता है, तो वे तरकारी खूब खाते हैं, जो हमें भी करना चाहिए। मांसाहार से मुक्ति के लिए यह बहुत जरूरी है कि दूध, फल आदि भक्षण-भोजन के साधन बढ़ें, क्योंकि हमारे देश में जमीन बहुत ही कम

उसके कारण भले ही समाज को हानि उठानी पड़े। इसीको वे 'समाज का त्याग' कहते हैं। फिर बड़े-बड़े देश लड़ते हैं। अभी दो विश्वयुद्ध हो चुके, जिनमें सम्मिलित देशों के दस-बीस लाख जवान मारे गये। इनमें सारे समाज का बलिदान इसलिए करना पड़ा कि व्यक्ति भोगपरायण बन गया। अगर व्यक्ति भोगपरायण बनेगा, तो सारे समाज को जबर्दस्ती त्याग करना पड़ेगा। किसीको जबर्दस्ती त्याग करना पड़े, यह बड़े दुःख की बात है। जेल में रहनेवाले चोर कैदियों को बरसों तक जबर्दस्ती ब्रह्मचर्य पालन करना पड़ता है। लेकिन उससे कोई गुण नहीं, बल्कि दोष ही पैदा होते हैं। इसलिए समाज को जबर्दस्ती त्याग करना पड़े, यह बिलकुल गलत है।

हिन्दुस्तान में ऋषियों ने त्याग की बात सिखायी है, इसीलिए यहाँ ही यह अद्‌भुत घटना होती है कि एक फकीर जमीन माँगता है, तो लोग दे देते हैं। जिस जमीन के टुकड़े के लिए भी झगड़े और खूनखराबी चलती है, वही जमीन लोग खुशी-खुशी दान देते हैं। क्या वे लोग पागल बने हैं या किसीने उन पर कोई जादू चलाया है? स्पष्ट है कि उनका यह न पागलपन है और न जादू, बल्कि इसमें यह जीवन-विचार ही काम कर रहा है कि समाज के भोग के लिए हम त्याग करें।

तलई वासलम् (सेलम)
२०-७-'५६

गीता सब संप्रदायों से परे : २५ :

लोकमान्य तिलक के जन्मदिन की स्मृति में आज हम सबने यहाँ भगवत्-प्रार्थना की है। आज उनके जन्म को १०० साल होते हैं। उनकी मृत्यु करीब ३६ साल पहले हुई। ६४ साल की आयु में उन्होंने हमारे देश की अनेक प्रकार की सेवा की है। उनमें से एक बड़ी सेवा का आज मैं आपके सामने कुछ विवरण रखूँगा। वह सेवा यह है कि उन्होंने भगवद्‌गीता को सारे समाज में फैलाया।

गीता सबके लिए

एक जमाना था, जब भगवद्गीता का अध्ययन चंद लोग करते थे। आम समाज में उस ग्रंथ के लिए आदर अवश्य था, परन्तु उसका अध्ययन न होता था। माना जाता था कि यह ग्रन्थ संन्यासियों के लिए है, व्यवहार में काम करनेवालों के लिए उसका उतना उपयोग नहीं। यह विचार बिलकुल ही गलत था। यह बात प्राचीन टीकाकारों ने भी नहीं मानी है। शंकर, रामानुज, ज्ञानदेव आदि महान् भाष्यकार गीता को हासिल हुए हैं। उन्होंने अपने-अपने अनुभव के अनुसार गीता का तात्पर्य समाज के सामने रखा। लेकिन किसीने यह नहीं कहा कि यह ग्रन्थ सब समाज के लिए उपयोगी नहीं है। उसमें मोक्ष-धर्म जरूर है और वह प्रधान है, फिर भी जीवन में उसका अत्यंत उपयोग है, ऐसा ही सब भाष्यकारों ने माना है। बल्कि आर्य-कल्पना तो यही रही कि हमारी संस्कृति का ही यह विचार है कि हम जीवन को मोक्ष से अलग नहीं कर सकते। मोक्ष दृष्टि रखकर ही हरएक को जीवन बिताना चाहिए, फिर भी किसी कारण आम समाज में यह गलतफहमी थी कि साधारण जीवन बितानेवालों के लिए गीता का विशेष उपयोग नहीं। इस भ्रम का निरसन लोकमान्य तिलक ने किया और उसके बाद गांधीजी ने किया। फलतः आज लोगों में प्रायः इस प्रकार की गलतफहमी नहीं है। जिन्होंने इस जमाने में गीता को लोकप्रिय बनाया, उनमें लोकमान्य तिलक अग्रणी थे।

गीता के महान् भाष्यकार

मुझे बचपन के दिन याद आते हैं, जब मैं हाईस्कूल में पढ़ता था। मेरी सेकन्ड-लैंग्वेज 'फ्रेञ्च' थी, संस्कृत नहीं। इंग्लिश तो चलती ही थी। इस ईश्वर-कृपा से मुझे पश्चिम की दो भाषाओं के (इंग्लिश और फ्रेञ्च) साहित्य का बहुत अच्छा लाभ मिला। उस समय लोकमान्य तिलक मंडाला में छह साल की जेल भुगत रहे थे। और जाहिर हुआ था कि उन्होंने वहाँ गीता पर एक प्रबंध लिखा है। मेरे मन में तीव्र इच्छा पैदा हुई कि उनका यह प्रबंध पढ़ने लायक संस्कृत तो अपने को आनी ही चाहिए। मैंने स्वतन्त्र रीति से संस्कृत का

अध्ययन शुरू किया। उसमें मुझे अपनी माता के शब्दों से बहुत प्रेरणा मिली, इसलिए मेरा वह अध्ययन बहुत तीव्रता से चला। हम विद्यार्थी राह देखने लगे कि कब 'गीता रहस्य' प्रकाशित होगा और कब हमें पढ़ने को मिलता है। मैंने उस ग्रन्थ के अध्ययन के लिए अपनी पूरी तैयारी कर रखी थी, याने संस्कृत का अध्ययन कर लिया था। इसीसे आपको ध्यान में आ जायगा कि उन्होंने गीता को कितना लोकप्रिय बनाया।

वास्तव में गीता है ही ऐसा ग्रन्थ, जिससे उस-उस जमाने के लिए नयी-नयी प्रेरणा मिलती ही रहती है। ज्ञानदेव ने 'गीतारहस्य' समझाने के लिए एक पौराणिक संवाद दिया है। शिव भगवान् और उमा का संवाद चल रहा है। उमा ने शिवजी से पूछा कि 'भगवद्गीता का स्वरूप कैसा है?' पार्वती तो मायादेवी थी। शंकर भगवान् ने कहा: 'देवि, जैसे मेरा रूप नित्य नया है, वैसे ही गीता का स्वरूप नित्य नया है: 'नित्यनूतन गीता-तत्त्व'। इस तरह ज्ञानदेव ने शिवजी के मुख से गीता की महिमा का वर्णन कराया है। गीता का वह अत्यंत उत्तम वर्णन है। गीता को जो भाष्यकार मिले, वे साधारण विद्वान् नहीं, बल्कि धर्मकर्ता पुरुष थे। वे उस-उस जमाने के नेता थे, वे धर्म-नेता थे, जिनका असर इस देश पर सदा के लिए रह गया। इतने महान् भाष्यकार दूसरे किसी ग्रंथ को मिले हों, तो मुझे मालूम नहीं। गीता की शब्दरचना और विवेचन-पद्धति ही ऐसी कुशल है कि हर मनुष्य के लिए और हर जमाने के लिए उसमें से नया-नया तात्पर्य निकलता है। जैसे रोज वही सूर्यनारायण उदित होता है, फिर भी रोज उसका सौंदर्य नया-नया दीख पड़ता है, वैसे ही गीता का स्वरूप नया-नया दीख पड़ता है।

इस जमाने में भी गीता को अनेक विद्वान् और तत्त्वविचारक भाष्यकार मिले, यह कोई बड़ी बात नहीं। यह तो स्वाभाविक ही था कि ऐसे लोग गीता-पर लिखें। गीतापर इस जमाने के अनेक श्रेष्ठ लोगों ने लिखा, पर मैं अधिक न लूँगा, ३-४ ही लूँ तो बस है: लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी और श्री अरविंद। तीनों राजनैतिक और राष्ट्रीय नेता थे, तीनों ने गीता पर लिखा और ऊपर-ऊपर से नहीं लिखा, बल्कि अपना जीवन-सर्वस्व समझकर लिखा। तीनों ने

माना है कि उनके जीवन को गीता ने आकार दिया है और तीनों ने कहा है कि 'यह ग्रंथ देश के उत्थान के लिए अत्यंत उपयुक्त है।' मैंने भी अपने जीवन की दारोमदार इसी पुस्तक पर रखी है। बचपन से सतत इसीका चिंतन-मनन करता आया हूँ। आप जानते हैं कि भूदान-यज्ञ के साथ 'गीता-प्रवचन' का भी प्रचार सहजभाव से चलता है।

गीता धर्मविशेष का ग्रन्थ नहीं

गीता सबके लिए उपयोगी है, यह तो अब सब लोगों को ध्यान में आ गया और पुरानी गलतफहमी मिट गयी। फिर भी एक और गलतफहमी बाकी रह गयी है। अक्सर माना जाता है, और गलती से माना जाता है, कि 'भगवद्गीता हिन्दूधर्म का ग्रन्थ है।' किंतु गीता में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि धर्म का विचार ही नहीं है। वह ग्रन्थ इन सारे पंथभेदों से परे है। वह मानवजीवन को सत्य की ओर ले जाने की राह दिखाता है। उसमें से किसी को 'आत्मज्ञान' मिला, किसी को 'भक्तियोग' का लाभ हुआ है, किसी ने उसमें से 'चित्तनिरोध' का योग साधा, किसी को उससे 'कर्मयोग' की स्फूर्ति मिली, तो किसी को उससे 'अनासक्ति' का बोध हुआ। इतने प्रकार का बोध उस ग्रन्थ ने मनुष्य को दिया। इसका अर्थ यह है कि उसके शब्द अत्यंत व्यापक हैं, बच्चों के भी काम के हैं और बूढ़ों के भी काम के। इस दुनिया के भी काम के हैं और उस दुनिया के भी काम के। वह संसार में काम करनेवाले लोगों के भी उपयोग की चीज है और मोक्ष-परायण निवृत्त मनुष्यों के भी उपयोग की। सुख में भी वह मदद पहुँचाता है और दुःख में भी। वह प्रतिक्षण राह दिखाता और किसी पर आक्रमण नहीं करता। जिसकी मनोदशा जैसी है, उसके अनुकूल उन्नतिकारक बोध उसमें मिलता है।

इस प्रकार का यह अद्भुत् ग्रन्थ सब धर्मों से परे है। अतः सभी लोगों को उसका अध्ययन करना चाहिए। यह ठीक है कि वह संस्कृत में लिखा है, पर इसका अर्थ यह नहीं कि वह किसी धर्मविशेष के साथ जुड़ा हुआ है। बल्कि उसमें यह विचार लिखा है कि मनुष्य जो भी राह लेता है,

उस राह से अगर वह सच्चाई से बरतेगा, तो परमेश्वर के पास पहुँच जायगा। व्यापारी को मोक्ष-प्राप्ति के लिए व्यापार छोड़ने की जरूरत नहीं है। सचाई के साथ भगवदर्पण कर व्यापार करने से वह भी मोक्ष साध सकता है। किसान को भी मोक्ष-धर्म की प्राप्ति के लिए खेती छोड़ने की जरूरत नहीं। इस प्रकार की उदार समता इस ग्रंथ में है, इसीलिए मैंने इसे 'साम्ययोग' नाम दिया है।

हर कोई गीता का अध्ययन करे

कोई भी ऐसी गलतफहमी अपने मन में न रखे कि यह एक सांप्रदायिक, पांथिक या एक धर्म के साथ जुड़ा हुआ ग्रन्थ है। सबको इसका अध्ययन करना चाहिए। विद्यार्थी तो इसके ज्ञान के बिना रहें ही नहीं, तरुणों को भी इसका अध्ययन अवश्य करना चाहिए। उनके सामने जीवनरूपी कुरुक्षेत्र खड़ा है, उसमें उन्हें संग्राम करना होगा। दुनिया में सतत बुराई और भलाई की टक्कर चल रही है। भलाई की राह न छोड़ते हुए, बुराई से टक्कर लेनी ही होगी। इस लड़ाई में हार नहीं खानी है। वह लड़ाई बाहर भी चल रही है और अन्दर भी। मन के भीतर उठनेवाले विकारों का सामना करना ही होगा। बाहर भी अनेक आपत्तियों का सामना करना होगा। ऐसी टक्करें लेते हुए भी चित्तवृत्ति बिलकुल शान्त रखकर काम करना होगा। कितने भी दुःख के आघात हों, उनकी कोई पर्वाह न करने की वृत्ति रखनी होगी। अपने शरीर पर सुखसमृद्धि गिरने पर भी उससे अलिप्त रहने की वृत्ति रखनी होगी। यह सब करने के लिए 'भगवद्गीता' ग्रन्थ से बढ़कर और कौन मददगार होगा? अगर हम अनन्य-भक्ति से उसका आश्रय लें, तो हमें अपने कामों में उसका सबसे श्रेष्ठ आश्रय मिलेगा।

विचार की स्वतंत्रता

गीता की यह भी एक खूबी देखिये। गीता ने श्रद्धा की माँग की है, पर बुद्धि का महत्त्व कम नहीं किया। अर्जुन को पूरा उपदेश सुनाने के बाद भगवान् उससे कहते हैं कि 'यह विचार अगर तुझे जँचे, तो उसपर अमल कर।' इस

तरह उन्होंने हम सब लोगों को अद्‌भुत स्वातंत्र्य दिया है। गीता का सब से श्रेष्ठ शब्द 'प्रज्ञा' है, यानी हम मुक्त मन जिसे कहते हैं,—किसी भी प्रकार के बंधन से रहित मन—यह प्रज्ञा है। जैसे गरुड़ आसमान में बिना किसी प्रकार की रुकावट के उड़ेगा, वैसे ही विचार की हवा में बिना किसी रुकावट के उड़नेवाली स्वतंत्र बुद्धि गीता चाहती है। किंतु आकाश में मुक्तविहार करते हुए भी, पक्षी के सामने लक्ष्य होता है और उसी लक्ष्य की ओर वह जाता है, उस अपने घोंसले को वह नहीं भूलता। हमारा घोंसला, वह परमपुरुष, वह परमप्रिय परमात्मा हमारे सामने निरंतर होना चाहिए। उसकी ओर सतत दृष्टि रखते हुए, विचार के आकाश में मुक्तविहार करने की योग्यता गीता मनुष्य को देती है। ऐसा धर्मग्रंथ कौन मिलेगा, जो पढ़नेवालों को यह भी इजाजत देता है कि जँचे तो कबूल करो, न जँचे तो मत कबूल करो। सांप्रदायिक धर्मग्रंथ ऐसे नहीं होते। गीता सब संप्रदायों से परे है, इसीलिए वह तटस्थ रहकर सबको विचारों की आजादी देती है।

गीता और भूदान

मैं चाहता हूँ कि इस प्रदेश का प्रत्येक बालक, प्रत्येक बूढ़ा, प्रत्येक भाई, प्रत्येक बहन इस ग्रंथ के अमृतपान से वंचित न रहे। यह केवल पढ़ने का ग्रंथ नहीं, जीने का ग्रंथ है। इसके एक-एक शब्द के लिए जीवन न्योछावर करना है। उसपर अत्यंत प्रेम से चिंतन-मनन करना है। अनुभवियों का अनुभव है कि मनुष्य को जीवन की कोई भी कठिनाई उसके चिंतन से आसान मालूम होती है। लोकमान्य तिलक ने अपने जीवन का आधार इसी ग्रंथ पर रखा। मुझे विश्वास है, मैं निश्चित मानता हूँ कि उनके स्मरण के दिन, हम अगर गीता का स्मरण करते हैं, तो उन्हें अधिक खुशी होगी।

मैं चाहता हूँ कि हमारे साथ जो 'गीताप्रवचन' है, उसे आप लें। आज मैंने आपसे भूदान-यज्ञ के बारे में कुछ नहीं कहा, लेकिन आपको अगर गीता मिल गयी, तो मुझे भूदान मिल ही जायगा, इसमें कोई शंका नहीं।

वलपड़ी (सेलम)
२३-७-'५६

आज लोकमान्य तिलक के स्मरण का दिन है। जो काम हमने उठा लिया है, और जिस काम के लिए हम यहाँ आप लोगों के बीच आये हैं, उसके साथ लोकमान्य तिलक का आशीर्वाद भी जुड़ा हुआ है। लोकमान्य तिलक स्वराज्यमंत्र के द्रष्टा थे, यह सब कोई जानते हैं। किंतु स्वराज्य किस चीज के लिए? और स्वराज्य का अर्थ क्या है? गोरे लोगों का राज्य जाय और उसके बदले में काले लोगों का राज्य आये, इतने से स्वराज्य हो जायगा, ऐसी लोकमान्य तिलक की कल्पना नहीं थी। वे स्वराज्य इसीलिए चाहते थे कि उनका दृढ़ विश्वास था कि स्वराज्य के बिना गरीब लोगों की गरीबी दूर न होगी। इसलिए उन्होंने गरीब लोगों का पक्ष लिया और उनके लिए जिन्दगीभर लड़ते रहे। महाराष्ट्र में उन्हें निचली जातियों और मजदूरों के प्रतिनिधि के तौर पर ही गिनते हैं। उनके अनुयायियों में शिक्षितों के बजाय अशिक्षित ही अधिक थे। उनके बाद महात्मा गांधीजी ने अपने आन्दोलन को तो बिलकुल आम लोगों—गरीबों और देहातियों का आन्दोलन बना दिया। इस तरह हिन्दुस्तान की दरिद्रता के खिलाफ लोकमान्य तिलक ने आवाज उठायी और महात्मा गांधीजी ने उस कार्यक्रम को पूरा किया। गांधीजी के आंदोलन से बिलकुल गरीब लोगों में जाग्रति आयी।

दरिद्रनारायण के तीन प्रतिनिधि

हिन्दुस्तान में गत १०० सालों में आम लोगों के लिए और दरिद्रों के पक्ष में बोलनेवाले तीन बड़े द्रष्टा हो गये। उनके पीछे दूसरे लोग भी आ गये और आन्दोलन में भी ताकत आयी। वे तीन पुरुष थे : स्वामी विवेकानंद, लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी। विवेकानंद ने पहली बार 'दरिद्रनारायण' शब्द का प्रयोग किया। उन्होंने यह प्रतिपादन किया कि दरिद्र लोगों की सेवा करना और उन्हें नारायणस्वरूप देखना ही नारायण की भक्ति है। इस तरह जनता और दरिद्र लोगों के प्रथम प्रतिनिधि स्वामी विवेकानंद हैं। उन्होंने दरिद्रनारायण की

उपासना का आध्यात्मिक स्वरूप लोगों के सामने रखा। उसी विचार को हाथ में लेकर लोकमान्य तिलक ने बिलकुल आमजनता में आन्दोलन किया। वे जनता के छोटे-बड़े सारे दुःखों को अपने लेखों द्वारा तेजस्वी भाषा में, सरकार और लोगों में बिलकुल निर्भयता से रखते थे। जनता को और दरिद्रों को कहीं भी पीड़ा या तकलीफ होते ही उनके लिए लोकमान्य तिलक ने हर जगह आवाज उठायी ही है।

अब सबकी बुद्धि गरीबों की ओर लगे

आज उनके स्मरण में हमें निश्चय करना चाहिए कि हम हिन्दुस्तान से दरिद्रता मिटा देंगे। अभी हिन्दुस्तान से दरिद्रता मिटी नहीं है। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद भी वह कायम है। उसी को मिटाने के लिए लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधीजी स्वराज्य की माँग करते थे। अब वह स्वराज्य प्राप्त हो गया है। अब हम सब लोगों का ध्यान गरीबों को ऊपर उठाने में लग जाना चाहिए। जैसे बारिश में पानी कहीं भी गिरता है, तो नीचे ही जाता है, वैसे ही सब लोगों की बुद्धि गरीबों की ओर ही जानी चाहिए, तभी हिन्दुस्तान सुखी होगा। और तभी स्वामी विवेकानंद, लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधीजी का स्वप्न सत्यसृष्टि में उतरेगा।

वेलूर
२३-७-'५६

अभी हमसे कहा गया कि यहाँ बुनकरों की बस्ती ज्यादा है। बुनकरों के लिए हमारे मन में बहुत आदर है। हमने स्वयं अपने हाथों से बुनने का काम किया है। आज बुनकरों की हालत हम अच्छी तरह समझते हैं। हमें उनके लिए विशेष आदर इसलिए है कि हजारों सालों से बिना किसी तालीम और बिना किसी सरकारी मदद के बुनकर हिन्दुस्तान की सेवा करते रहे हैं। बुनकरों को बुनने की विद्या सिखाने के लिए सरकार को कौड़ी भी खर्चनी नहीं पड़ती। बाप बेटे को, बेटा अपने बेटे को, इस तरह परंपरा से यह विद्या, कम-से-कम दस हजार साल से हिन्दुस्तान में मौजूद है। हमारा सबसे प्राचीन ग्रन्थ 'ऋग्वेद' है। उसमें भी बुनकरों का जिक्र आता है। वेद पढ़ने से तो ऐसा दीखता है कि बुनकरों में ज्यादा बहनें होंगी। पुरुष खेत में काम करने जाते और बहनें बुना करतीं। आज पुरुष बुनते हैं और बहनें मदद देती हैं।

किसान-बुनकर सहयोग हो

इसी तरह हमारे दूसरे धंधे भी परंपरा से चले आये हैं। सरकार का उनपर कोई खर्च न था। किंतु यंत्रों के साथ स्पर्धा करने में दूसरे धंधे टूट गये और बावजूद स्पर्धा के बुनने का काम जारी है। इतिहास बताता है कि अंग्रेजों ने जब यहाँ अपनी हुकूमत कायम की, तो उस वक्त उन्होंने बुनकरों की बड़ी बुरी दशा कर डाली। पर दु:ख की बात है कि स्वराज्य के बाद भी बुनकरों की स्थिति बहुत ज्यादा सुधरी नहीं। वह तब तक न सुधरेगी, जबतक बुनकर और किसान मिलकर अपना एक परिवार नहीं बनाते। किसान से बुनकर का संबंध टूट जाय, तो बुनकर जिंदा नहीं रह सकते।

मैं कहना यह चाहता हूँ कि जैसे किसान अनाज बोता और चावल घर-घर बनते हैं, वैसे ही किसान कातें और गाँव के बुनकर वह सूत बुनें। यही सर्वोत्तम योजना हो सकती है। याने बुनकर किसानों के सूत से कपड़ा बुनेगा

और यही बुना कपड़ा किसान पहनेगा, ऐसा निश्चय होना चाहिए। आज ये दोनों बातें नहीं हैं। किसान मिल का कपड़ा खरीदते और कहते हैं कि हमें वही सस्ता मालूम होता है। बुनकर ने भी यह निश्चय नहीं किया कि हम किसान का काता हुआ सूत ही बुनेंगे। याने इनका सूत बुनने को ये राजी नहीं और उनका कपड़ा पहनने के लिए ये राजी नहीं।

इसमें दोष किसीका नहीं। दोष परिस्थिति का है। यह परिस्थिति हमें सुधारनी चाहिए। किसान कातना शुरू करें, तो बुनकरों को अच्छा सूत मिलेगा। सूत अच्छा न हो, तो बुनकर को मुश्किल हो जाती है। इसलिए अच्छा सूत निकालने की तरकीब ढूँढ निकालनी चाहिए। साथ ही किसानों को यह संकल्प करना चाहिए कि बुनकर जो बुनेंगे, वही पहनेंगे। किसानों की गरज खतम होनेपर ही बाद में बचा कपड़ा, शहरों में बेचा जायगा। सूत सुधारने की एक अच्छी योजना बनी है। 'अंबर चरखा' नाम का चरखा निकला है। उसका सूत करीब-करीब मिल के बराबरी का होता है। थोड़ा और अभ्यास और प्रयत्न करने से वह सूत मिल के सूत से भी ज्यादा अच्छा होगा। किंतु वही सूत हम बुनेंगे, ऐसा निश्चय बुनकरों को भी करना चाहिए। अंबर चरखे से हिन्दुस्तान की सूत की समस्या हल हो सकती है। भारत सरकार भी इसे मदद देना चाहती है।

सरकार के दो सिर

लेकिन भारत सरकार का एक अजीब ढङ्ग है। उसके दो सिर हैं। एक सिर से वह अंबर चरखे को उत्तेजन देती है और दूसरे से सोचती है कि बुनकरों को पावर लगाना चाहिए। अगर पहले सिर से पूछा जाय कि 'तुम अम्बर को उत्तेजन क्यों देते हो, मिल का सूत तो बहुत है और उसे बढ़ाया भी जा सकता है?' तो उत्तर मिलेगा : 'अंबर चरखे से ज्यादा लोगों को रोजी मिलेगी।' यह एक सिर का विचार हुआ। अब दूसरे सिर से पूछा जाय कि 'तुम करघे को पॉवर लगाने के लिए क्यों कहते हो?' वह कहेगा, 'हम बुनकरों की आमदनी बढ़ाना चाहते हैं। यदि वे पॉवर पर बुनेंगे, तो उन्हें आज से चार-छः गुना अधिक आमदनी होगी।' किंतु इससे सब बुनकरों को काम कैसे मिलेगा? पॉवर

आयेगी, तो पाँच-छह करघों की जगह एक ही करघा चलेगा, बाकी बेकार हो जायँगे। इसीलिए सेलम के बुनकरों ने कहा कि सरकार की 'पाँचिरवाली' बात गलत है, उससे हमें लाभ न होगा।'

पूछा जा सकता है कि आखिर सरकार को ऐसे दो सिर क्यों हैं? आपने मृदंग देखा ही होगा। उसे दोनों ओर थप्पड़ लगाई जाती है, तो दोनों ओर से संगीत सुनने को मिलता है। इसी तरह सरकार कह रही है कि कुछ ग्रामोद्योग चलने चाहिए और कुछ यंत्रोद्योग। पर समझने की बात है कि दोनों तरफ से संगीत निकलता जरूर है, लेकिन एक बाजू के संगीत के ताल से दूसरे बाजू के संगीत के साथ मेल न खाता, तो संगीत चलेगा कैसे?

पश्चिम से एक अर्थशास्त्र आया है। वह कहता है कि जितने यंत्र बढ़ेंगे, उतना देश का कल्याण होगा। उसका भी असर सरकार के इस सिर पर है। गांधीजी कह गये हैं कि 'हाथ से काम न करोगे, तो हिन्दुस्तान न बचेगा।' वैसा आज दीख भी रहा है। सरकार की प्रथम पंचवार्षिक योजना के बाद बेकारी बढ़ी, कम-से-कम घटी तो नहीं ही। इसलिए गांधीजी का विचार सही है, ऐसा दूसरा सिर कहता है। सारांश, इस तरह सरकार के दो सिर, दो वर्ग होने से उसका दिमाग साफ नहीं है। इसीलिए सेलम के बुनकरों ने जो निषेध किया, वह वाजिब है। खादी-बोर्ड के नेता श्री वैकुंठ भाई मेहता ने भी सरकारी नीति का निषेध किया है। 'खादी-बोर्ड' सरकार का ही है, पर विरोध स्पष्ट है, इसमें शक नहीं।

बुनकर आवाज उठायें

प्रश्न होता है कि सरकार का दिमाग साफ नहीं, तो आप क्या करेंगे या क्या करना चाहिए? क्या सरकार का निषेध जाहिर करने से काम होगा? जगह-जगह इसका निषेध हो, सर्वत्र सभाएँ हों और सारे हिन्दुस्तान के बुनकरों की आवाज इसके खिलाफ उठे। किंतु इससे भी काम नहीं होगा। इसके लिए जैसा हमने सुझाया कि किसान और बुनकर मिलकर एक मजबूत दल बनायेंगे, तभी किसानों, बुनकरों और साथ ही देश की भी ताकत

बढ़ेगी। किसानों और नागरिकों को यह भी निश्चय करना होगा कि हम पॉवर-लूम का कपड़ा न खरीदेंगे। ऐसा कोई काम करें, तभी उसके पीछे कुछ-कुछ ताकत आयेगी, जिसे हम 'जनशक्ति' कहते हैं।

एक सिर रखने में सरकार को लाभ

सारा भूदान आन्दोलन इसी जनशक्ति के विकास के लिए चल रहा है। सरकार की ताकत जनशक्ति के बिना बढ़ नहीं सकती। उसके अच्छे काम भी बिना इसके नहीं हो सकते और बुरे काम भी इसकी मदद के बिना दुरुस्त नहीं हो सकते। सरकार कोई भगवान् नहीं कि गलती न करे, इसलिए उससे अच्छे काम भी होते हैं और गलत भी। लेकिन दोनों में जनशक्ति के के बिना चल नहीं सकता। आप यह मत समझिए कि सरकार का निषेध करना और पॉवरलूम का कपड़ा न खरीदना, सरकार के विरुद्ध होगा। कारण, सरकार आप ही हैं। जिसे आप सरकार कहते हैं, वे आपके पाँच साल के लिए चुने हुए नौकर हैं। इसलिए अगर आप अपनी आवाज उठाते, अपनी शक्ति बनाते और पॉवरलूम के बदले अम्बर चरखे के सूत का उपयोग करते हैं, तो सरकार को मदद ही होगी। क्योंकि आप यह करेंगे, तो सरकार को अपना एक सिर कटवाना होगा। फिर एक ही सिर रहेगा और वह मजबूत बनेगा, तो सरकार का काम ठीक होगा और आपका काम भी ठीक चलेगा। दो सिरवाले लोगों का काम अच्छा नहीं होता।

ईश्वर को यह मालूम है। इसीलिए उसने हमें दो हाथ, दो पाँव, दो कान, दो आँखें दी हैं, पर दो सिर नहीं दिये। दो सिर होंगे, तो एक कहेगा, इस पेड़ को काटना चाहिए, तो दूसरा कहेगा इसे पानी देना चाहिए। आखिर दशमुखी रावण की हालत क्या हुई? उसका एक सिर कहता था, वेदाध्ययन करो। दूसरा कहता था, तपस्या करो। तीसरा कहता, दूसरे की स्त्री भगाओ। चौथा कहता, दुनिया को लूटो। और उसने ये सब काम किये, तो उसकी हालत क्या हुई? इसीलिए, भगवान् ने यह प्रयोग करके देखा कि

एक सिर से ही भला होता है। सारांश, अगर आप सरकार का एक सिर काटेंगे, तो उसमें आपका भी भला है और सरकार का भी भला!

दुष्ट बुद्धि नहीं, द्विबुद्धि

सरकार चाहती है कि आमदनी बढ़े, तो उसमें पाँच में से एक की बढ़ेगी। पर पाँच का पेट काटकर के एक का पेट भरने से क्या होगा? इसी तरह लोग जमीन के बारे में भी सोचते हैं। कहते हैं कि 'किसी को पाँच तो किसी को दस एकड़ जमीन रहना अच्छा नहीं, सौ-दो सौ एकड़ जमीन होनी चाहिए।' पर इतनी जमीन कहाँ से लायेंगे? इस पर अगर कहें कि 'जितने लोगों को दे सकें, उतनों को ही दें,' तो पूछा जा सकता है कि फिर बाकी लोगों के मजदूर रहने में क्या लाभ है? इस तरह चंद लोगों का अच्छा चले और बाकी लोगों का जो होगा सो होगा, यह पश्चिम की विचारसरणी है। वही विचार इस देश में भी चलता है। कहने के लिए कहते हैं कि सब लोगों को सुख मिलना चाहिए, समाजवादी रचना होनी चाहिए किंतु काम इस तरह करते हैं कि चंद लोगों को खूब सुख मिलता और बाकी वैसे ही पीसे जाते हैं। यह दुष्ट बुद्धि से नहीं, द्विबुद्धि से होता है।

ऐसी हालत में आपका और हमारा काम यह है कि भूदान-यज्ञ और ग्रामोद्योग के जरिये, अपनी ताकत बढ़ायें, और सरकार का एक ही सिर रहने दें। जमीन सबको मिले। सभी ग्रामसंकल्प करें कि गाँव के बुनकर जो बुनेंगे, हम पहनेंगे, पॉवरलूम का नहीं। इस तरह होगा, तभी देश आगे बढ़ेगा।

वैसे हम भी पॉवर के विरुद्ध नहीं, बिजली सूर्य के जैसी सबको मिले, तो ठीक है। सूर्य की किरणें राजा और गरीब, दोनों के घर जाती हैं, वैसे ही बिजली भी सबको मिले तो ठीक होगा। आज की हालत में बिजली करघे को लगने का अर्थ है, पांच में से एक शख्स का काम चलाना और बाकी को बेकार रखना। हम सिर्फ बिजली ही नहीं, एटॉमिक इनर्जी भी चाहते हैं। लेकिन हम चाहते हैं कि वह इनर्जी किसी व्यक्ति के हाथ में न रहे, उस पर कुल गाँव की मालकियत हो, जिससे एक व्यक्ति उसके आधार से

दूसरों का शोषण न कर सके। आज हम ग्रामोद्योग की सिफारिश इसलिए करते हैं कि वे आज की परिस्थिति के लिए आवश्यक हैं।

ओमलूर (सेलम)
२०-७-'५६

रामायण के आक्षेपों का उत्तर : २८ :

इस प्रदेश में रामचन्द्र के लिए कुछ लोगों के मन में कुछ विरोधी भावना पैदा हो रही है। उसके बारे में एक भाई ने मेरी राय पूछी है। ऐसा रामविरोधी इस सभा में कोई है या नहीं ? मैं नहीं जानता, और न जानना चाहता हूँ। केवल अपने मनोभाव और अपने अनुभव आप लोगों के सामने रखता हूँ।

रामायण पर दो आक्षेप

रामचंद्र के विरोध में यहाँ लोग जो कुछ बोलते हैं, उसमें जहाँतक मैं जानता हूँ, दो आक्षेप आते हैं। पहला यह है कि राम उत्तरभारत का मनुष्य था, और 'रामायण' में उत्तर भारत ने दक्षिण भारत को किस तरह दबाया, इसका इतिहास है। दूसरा आक्षेप यह है कि रामचंद्र का जीवन लोगों ने जितना आदर्श माना, उतना नहीं है, उसमें काफी दोष हैं।

अंग्रेज इतिहासकारों की करतूत

पहला आक्षेप बहुत महत्व का है और इसका पश्चिम के इतिहासकारों ने निर्माण किया है। जबतक उन्होंने लोगों के सामने इतिहास को उस दृष्टि से न रखा था तबतक हिन्दुस्तान के लोगों को उसकी कल्पना भी नहीं थी। अंग्रेज इतिहासकारों ने कुछ तो जान-बूझकर और कुछ अनजान में हिन्दुस्तान के इतिहास में कई प्रकार के भेद निर्माण किये। अभी मैं उसका खंडन-मंडन करना नहीं चाहता। मैं तो रामायण के बारे में अपना अनुभव आप लोगों के सामने रखना चाहता हूँ।

रामायण आक्रमण का इतिहास नहीं

हमारे परिवार में हम बिलकुल बचपन से रामायण सुनते आये हैं। हमारा जन्म एक महाराष्ट्र-कुटुम्ब में हुआ है। जिस दिन हमने रामायण की कथा न सुनी हो, वैसे बहुत थोड़े दिन होंगे। हमारी माँ और हमारे घर के सब लोगों को पूरी तरह रामायण की कथा मालूम थी, फिर भी वह बार-बार पढ़ी जाती थी। उसे पढ़ने और सुनने में हमें कभी यह खयाल भी नहीं आया कि उसमें कुछ ऐतिहासिक घटना का जिक्र है। 'रावण' नाम का कोई आदमी था, यह कभी हमको भास न हुआ। हम हिन्दुस्तान में खूब घूमे हैं, लेकिन आजतक हमें ऐसा शख्श देखने को नहीं मिला। रावण दशमुखी था। दसमुख वाला मनुष्य तो दूर, हमने दो मुखवाला मनुष्य भी नहीं देखा। दुनिया के किसी भी ऐतिहासिक ग्रंथ में हमने दस सिरवाले मनुष्य का वर्णन नहीं पढ़ा। इसलिए जिस पुस्तक में दस सिरवाले मनुष्य का जिक्र हो, वह इतिहास का ग्रंथ नहीं हो सकता, यह समझना बहुत जरूरी है। कुंभकर्ण नाम का एक द्रविड़ आदमी था, ऐसा भी हमें कभी खयाल नहीं आया। आज भी हम द्रविड़ प्रदेश में घूम रहे हैं, लेकिन ऐसा कोई मनुष्य हमें नहीं दिखाई पड़ा। रामचन्द्र की सेना के बड़े-बड़े बंदर कुंभकर्ण की नाक के एक रंध्र में से भीतर जाकर दूसरे रंध्र से बाहर निकलते थे। कभी नाक से जाकर मुँह से बाहर निकलते थे, तो कभी मुँह से जाकर नाक से। हमने दुनिया के कितने ही इतिहास देखे, लेकिन ऐसी घटना किसी इतिहास में नहीं पढ़ी।

इसलिए हमने बचपन में यही समझा और हमें समझाया गया कि वह राक्षस और देवों का युद्ध है। देव-असुर का यह युद्ध हमारे हृदय के अंदर चल रहा है। रावण रजोगुण है, कुंभकर्ण तमोगुण और बिभीषण सत्वगुण, इस तरह ये रूपक बने हैं। हमारे हृदय में बैठे दशमुख रावण को जब वहाँ से मुक्ति मिलेगी, तभी हमारा हृदय शुद्ध होगा। रामचंद्र के नामस्मरण और उनकी कथा सुनने से मनुष्य के हृदय में ऐसा बल आता और उससे हृदयशुद्धि होती है, ऐसा हम बचपन से सुनते आये हैं। हम आपसे कहना चाहते हैं कि उत्तर

हिन्दुस्तान की जनता में ऐसा एक भी शख्स नहीं, जिसने रामायण को, उत्तर भारत के दक्षिण भारत पर आक्रमण के तौर पर पढ़ा हो। वह केवल एक धार्मिक कथा है और चित्तशुद्धि और भक्ति-मार्ग की अनुभूति के लिए हम लोग उसे सुनते और पढ़ते हैं।

हम कहना चाहते है कि दक्षिण के महाविद्वान् और ज्ञानियों ने भी रामायण का यही अर्थ किया है। इसी तमिलनाड का बहुत बड़ा ज्ञानी 'कम्बन' अगर यह महसूस करता कि यह उत्तर भारत के दक्षिण भारत पर आक्रमण का इतिहास है, तो वह रामायण क्यों लिखता ? लेकिन उसने रामचंद्र को परमात्म-विभूति ही समझकर कुल रामायण लिखी है। आप सभी जानते है कि तमिल भाषा में 'कम्बन रामायण' से अधिक अत्युत्तम कृति शायद ही और कोई हो। तमिल-साहित्य में हम तीन-चार बड़े ग्रंथों का नाम सुनते हैं। 'तिरुकुरल, तिरुवायमुलि, तिरुवाचकम्, तेवारम्' के बाद 'कम्बन रामायण' का ही नाम सुनते हैं। ये सभी ग्रंथ तमिल भाषा में सर्वोत्तम कोटि के माने जाते हैं। दुनिया की किसी भी भाषा के सर्वोत्तम साहित्य के साथ तुलना में रखने पर ये दूसरे दर्जे में आयेंगे, ऐसा मानने का कोई कारण नहीं। बल्कि दुनिया की किसी भी भाषा के साहित्य की सर्वोत्तम कृति की बराबरी में इनका नाम आयेगा। जरा मानसशास्त्र का थोड़ा-सा अभ्यास हो, तो तुरत खयाल में आ जायगा कि अगर रामायण में किसी देश का किसी देश पर आक्रमण का ध्यान होता तो वह कभी भी इस तरह सर्वोत्तम कृति न बनती। अवश्य ही, गुलाम लोग अपने जीतनेवालों की भी 'हाँ जी-हाँ-जी' करते हैं, पर उन खुशामदी गुलामों में कोई 'कम्बन' नहीं होता।

खैर, जो हालत तमिल भाषा की है, वही 'मलयालम्' भाषा की भी है। मलयालम् में सर्वोत्तम कृति कौन-सी है, यह पूछा जाय, तो 'एलुतच्छन की रामायण' का ही नाम आयेगा। वह पुस्तक शायद उस भाषा की सर्वोत्तम किताब मानी जाती है और हरएक पढ़नेवाले के घर वह पढ़ी जाती है। अगर वह उत्तर भारत का दक्षिण भारत पर आक्रमण होता, तो उस आक्रमण का दक्षिण भारत वाले गौरव क्यों करें ?

रामायण का यही आदर और यही कल्पना कर्नाटक और आन्ध्र में भी है।

चित्तशुद्धि के लिए सर्वोत्तम ग्रन्थ

हमने रामायण से बढ़कर चित्तशुद्धिकारक कोई ग्रंथ नहीं देखा। हम कहना चाहते हैं कि जहाँ तक हिंदूधर्म का ताल्लुक है, इस बारे में गीता भी दूसरे दर्जे में है। गीता मक्खन है। हर कोई मक्खन हजम नहीं कर सकता। पर रामायण दूध है, दूध तो बच्चा भी हजम कर सकता है। इसलिए रामायण ने चित्तशुद्धि का जो काम किया है और आज भी कर रही है, वह गीता भी नहीं कर सकती। इससे ध्यान में आ जायगा कि आजतक सारे भारत की रामायण की तरफ देखने की कौन-सी दृष्टि रही। हमने पचासों दफा रामायण पढ़ी और भारत की कितनी ही भाषाओं में पढ़ी है। और आज भी किसी नये लेखक की नयी रामायण हमें मिले, तो हम उसे पढ़े बिना न रहेंगे। एक-एक भाषा में दस-दस कवियों ने रामायण लिखी है।

महात्मा गांधीजी कहते थे कि भक्ति का विकास करने के लिए रामायण से बढ़कर कोई किताब उन्हें नहीं मिली। वे 'तुलसी-रामायण' की बात करते थे। उत्तर भारत में वही अधिक चलती है। उसमें ऐसे दिव्य वातावरण का निर्माण किया गया है कि राम, आत्माराम है, हृदय के अंतर्यामी हैं, इससे हृदय रावणादि से मुक्त होता है और उसमें रामचन्द्र की ज्योति प्रवेश करती है, वह सारी दुनिया ही निराली है, उसमें जाने पर किसी प्रकार का रागद्वेष आदि कुछ नहीं रहता, केवल परिशुद्ध भक्तिभाव ही रहता है। मुश्किल से और किसी ग्रंथ में यह चीज मिल सके। भारत ने कितनी बार आजादी खोयी, लेकिन वह नष्ट न हो पाया। पर भारत ने अगर रामायण खोयी होती, तो वह जरूर नष्ट हो जाता, किंतु भारत में रामायण टिकी है, इसलिए गुलामी के बाद भी आज वह सिर उठाकर खड़ा है। इसलिए जिन लोगों के मन में पाश्चात्य इतिहास-लेखकों के विचार के परिणामस्वरूप वैसा खयाल आया हो, वे उसे छोड़ दें।

रामचरित्र इतिहास नहीं

दूसरा आक्षेप यह है कि रामचंद्र का जीवन सर्वोत्तम है, ऐसा नहीं

लिए यहाँ मौजूद ही हैं, यही भावना तुलसी-रामायण ने पैदा की है। राम निरंतर पैदा हुआ ही करते हैं। जिस-जिस क्षण में हमारे मन में पवित्र भावना का जन्म (उदय) होता है, उस-उस क्षण में राम का ही जन्म होता है और जहाँ राम होता है, वहाँ उसकी भक्ति सीता होती ही है। तुलसीदास ने सीता को भक्ति के रूप में देखा है। रावण सीता को ले गया, यह घटना भी नहीं है। उसमें लिखा है कि वास्तव में सीता को तो अग्नि में छिपा रखा गया था और एक काल्पनिक सीता खड़ी कर दी गयी और उसीको रावण ले गया। तुलसीदास ने ऐसी दिव्य सृष्टि का निर्माण किया है। उसके एक-एक शब्द से हृदय द्रवित हो जाता है।

राम का मानव-रूप

मैं यह कहना चाहता हूँ कि इस तरह राम के चरित्र में आदर्श पुरुष के तौर पर हम जो वर्णन करना चाहते हैं, कर सकते हैं। यह अपने बाप की 'इस्टेट' है। इसमें हम जो फर्क करना चाहते हैं, उसका हमें हक है। पर ऐतिहासिक चरित्रों के बारे में ऐसा नहीं। हिन्दुस्तान का इतिहास बुद्ध भगवान् से शुरू होता है। उसके पहले का सारा काल्पनिक है। उस जमाने में राम और कृष्ण नहीं हुए होंगे, सो बात नहीं। वे हो गये होंगे, लेकिन जिनका रामायण-भागवत में वर्णन आता है, वे राम-कृष्ण आदर्श परमात्मा के रूप में है। लेकिन राम का चरित्र जैसे वाल्मीकि ने वर्णन किया है, वैसा ही राम को मानव-रूप में देखा जाय, तो टीका करने का हरएक को हक है। बचपन में हम भी उस पर टीका करते थे। वाली को जो न्याय मिला, यह उचित था या अनुचित ? सीता का परित्याग कहाँ तक उचित था ? इसकी चर्चा हम बचपन में भी करते थे। अगर राम के चरित्र को मानव-चरित्र के रूप में देखा जाय, तो वह परिपूर्ण नहीं है। यही उसका गुण है, क्योंकि रावण को ऐसा वर था कि कोई भी देवता उसे हरा न सकेगा। फिर अगर राम पूर्ण ही होता, तो वह देवता ही हो जाता। इसीलिए उसने मानवावतार धारण किया। मानवावतार में मनुष्य के कुछ गुण भी होते हैं और कुछ दोष भी। ऐसा कोई

भी मनुष्य नहीं हो सकता, जिसमें एक भी दोष न हो। जैसे रूप के साथ छाया होती है, वैसे गुण के साथ दोष भी होते हैं और तभी तो वह मानव बनता है। दूध देनेवाली गाय लात मारती है, तो उसका हम त्याग नहीं करते, पाँव हटाते और दूध लेते हैं। इसी तरह मानव अगर गुणों और दोषों से भरा है, तो उसके दोषों को सहन करना और उन्हें छोड़ उसके गुणों को लेना पड़ता है। गांधीजी ने कहा था कि 'उन्होंने हिमालय के समान बड़ी गलतियाँ की हैं', तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि उन्होंने हिमालय के जैसे बड़े काम भी किये हैं। इसलिए उनसे जो गलतियाँ हुईं, वे भी हिमालय के समान हुई होंगी। इसलिए राम के जीवन में कोई दोष दीखते हैं, तो उन्हें छोड़ दो और गुणों को ले लो। किंतु हिन्दू समाज उस व्यक्ति की ओर इस दृष्टि से देखता है कि उसका दिव्य रूपान्तर हो चुका है, उसमें जो दोष दीखते हैं, उनको भी दैवी स्वरूप आ गया है।

कृष्ण की माखन-चोरी

हर घर में भागवत भी पढ़ा जाता है। कृष्ण भगवान् के बचपन की चोरी की कहानियाँ हर माता अपने बच्चों से कहती है। हमें दुनिया में ऐसा एक भी ग्रन्थ नहीं दीखा, जिसमें चोरी का बखान किया गया हो। हर-घर में भागवत पढ़ा जाता है, पर उसे सुननेवाला बच्चा अगर घर में चोरी करे, तो क्या माँ कबूल करेगी? नहीं, वह घर में चोरी करता है, तो माँ उसे धमकाती और कहती है कि 'अगर तू माँग लेगा, तो मैं दे दूँगी।' अगर वह दूसरे के घर में चोरी करे और बाँटकर खाये और फिर कहे कि 'कृष्ण के मुआफिक मैंने किया', तो उसकी माँ कहेगी: 'जैसे कृष्ण को यशोदा ने पीटा, वैसे मैं भी तुम्हें पीटूँगी। इसलिए यह सारा नाटक नहीं चल सकता।' कृष्ण की कथा चोरी सिखाने के लिए नहीं है, उसकी चोरी भी आध्यात्मिक बन गयी, उसे दैवी रूप मिल गया और मक्खन भी दूसरा बन गया। इसलिए आज हर जगह भागवत पढ़ा जाता है, फिर भी कोई लड़का उसमें से चोरी का बोध नहीं लेता, क्योंकि वे समझते हैं कि यह दिव्य कथा है, यह प्रभु की लीला है।

इस तरह यदि राम के चरित्र में कोई न्यूनता ध्यान में आये, तो उसे पूर्ण करने का भी हमें हक है, या तो अपूर्णता ही मानवता का लक्षण है, ऐसा समझकर हम रसिकता भी ग्रहण कर सकते हैं।

हिन्दू-धर्म की व्यापक वृत्ति

इसके अलावा आपको हिन्दू-धर्म ने यह भी अधिकार दिया है कि अगर कोई राम को आदर्श न समझे, उन्हें रामायण पसंद न पड़े, तो वे न पढ़ें और दूसरी किताबें पढ़ें। हिन्दू-धर्म की यह सबसे बड़ी विशेषता है, ऐसा हम समझते हैं। यह हमने दूसरे किसी धर्म में नहीं देखी। सब धर्मों में बहुत ही अच्छी चीजें हैं, यह हम जानते हैं और हम उनका ग्रहण भी करते हैं। फिर भी ईसाई यह कभी न कहेगा कि 'अगर तुम्हें बाइबिल पसंद नहीं, तो उसे छोड़ दो और दूसरी कोई किताब पढ़ो।' वह यही कहेगा कि 'अगर तुम्हें बाइबिल पसंद नहीं, तो तुम ईसाई ही नहीं हो।' किन्तु हिन्दू-धर्म इस तरह नहीं कहता। वह कहता है कि अगर तुम्हें रामायण पसंद नहीं है, तो तुम भागवत पढ़ो, भागवत पसंद नहीं, तो गीता पढ़ो और गीता पसंद नहीं है, तो 'तिरुवाचकम्' पढ़ो। इतनी उदारता इस धर्म में है। हिन्दू-धर्म किसी व्यक्ति-विशेष के नाम के साथ जुड़ा नहीं है। राम का भक्त राम की भक्ति करता है और भागवत भी पढ़ता है, कृष्ण का भक्त कृष्ण की भक्ति करता और रामायण भी पढ़ता है। शिवभक्त दोनों ही नहीं पढ़ता और केवल शैवमार्ग देखता है। इसी तरह कोई उपनिषद् पढ़ता है, तो कोई योगशास्त्र। हिन्दू-धर्म में पाँच-पचास ग्रन्थ पड़े हैं। उसमें कुछ किताबें कुछ किताबों से भिन्न बातें कहनेवाली भी हैं, लेकिन उनमें से कोई भी किताब आप पढ़ते और आपकी चित्तशुद्धि होती है, तो वह हिन्दू-धर्म को कबूल है। जैसे ईसाई-धर्म, ईसा के साथ जुड़ा हुआ है, इसलाम-धर्म मुहम्मद के साथ जुड़ा हुआ है, वैसे भागवत-धर्म जरूर कृष्ण के साथ जुड़ा हुआ है, पर हिन्दू-धर्म न राम-कृष्ण के साथ जुड़ा है और न शिव के साथ। वह न तो सगुण ईश्वर से जुड़ा है और न निर्गुण ईश्वर से। हम तो यह भी कहना चाहते हैं कि वह ईश्वर से भी जुड़ा नहीं है।

अगर हम इतने उदार धर्म में हैं, तो हमें किसीसे द्वेष करने की जरूरत नहीं। जो पसंद नहीं, उसे छोड़ दें और जो पसंद हो, उसे ले लें। रामायण-भागवत पढ़ना ही क्या मनुष्य का कार्य है? वैसे पढ़ना ही मनुष्य का कार्य नहीं। मनुष्य का कार्य है, चित्त की शुद्धि करना, आत्मा का दर्शन करना। निर्दोष हृदय ही सच्चा धर्म है। उस चित्तशुद्धि के लिए रामायण की मदद होती है, तो रामायण पढ़ो। हम अपनी गरज से रामायण पढ़ेंगे। उससे चित्त-शुद्धि नहीं होती और दूसरे से होती है, तो दूसरा ग्रंथ पढ़ेंगे। इसलिए सारे ग्रंथ हमारे लिए हैं, हम उन ग्रन्थों के लिए नहीं, ऐसा हिन्दू-धर्म कहता है। अतः इसके बारे में कोई झगड़े की बात नहीं। फिर भी अगर उनका उपयोग इस तरह विरोध बढ़ाने में करेंगे, तो हिन्दुस्तान की ताकत क्षीण होगी, बढ़ेगी नहीं।

मोरप्पूर (सेलम)
१-८-'५६

अहिंसा के अंतरंग में : २९ :

आज जो सबसे बड़ी बात है, वह यह है कि वातावरण में हिंसा आयी है और हिंसा से कुछ काम बनता है, ऐसा लोगों को विश्वास हो रहा है। हाँ, कुछ काम बनता तो है, पहले भी बनता था और अब भी बनता है। लेकिन वह काम ही बेकार है और वह बनेगा, तो भी देश का नुकसान ही होगा—यह सब अहिंसा की विचार-श्रेणी में आता है।

अहिंसा की श्रद्धा पर दो प्रहार

इन दिनों अहिंसा की इस विचार-श्रेणी का जोरों से खंडन हो रहा है। वैसे बोलने में तो ठीक है, सभी अहिंसा को मानेंगे। परन्तु वास्तव में आज हिंदुस्तान की मानसिक स्थिति डाँवाडोल है। जो श्रद्धाएँ गांधीजी ने बनायी थीं, वे दो प्रकारों से टूट रही हैं : कुछ लोग उन्हें एकांगी समझकर छोड़ रहे हैं,

तो कुछ लोग 'हम उनका उचित व्यावहारिक अर्थ करते और उस पर हम ही अमल करते हैं', यह सोचकर उन्हें छोड़ देते हैं। छोड़ते हुए भी वे यह समझते हैं कि हम गांधीजी के ही विचारों का व्यवहार के अनुकूल अनुकरण करते हैं।

नायकमजी ने मुझे 'बाइबिल' के प्रचार की बात सुनायी। हरएक 'सोल्जर' के पास बाइबिल होती है। यह ढोंग है, ऐसा तो नहीं कह सकते। लड़ाई राष्ट्र की पुकार है, राष्ट्र की आवश्यकता है, यह तो माना ही जाता है। इसलिए करुणावान् लोग भी उसमें शामिल होते हैं। साथ-साथ वे बाइबिल भी पढ़ते हैं और समझते हैं कि फौज में भरती होना कर्तव्य है। वे मानते हैं कि ईसा ने जिस उद्देश्य से हमें प्रतिकार बताया, उसीके अनुसार करना है। यानी इस तरह ईसा के काम को हम आज नहीं, तो कल दुनिया में पूरा करना चाहते हैं। आज दुनिया उसके लायक नहीं है, इसलिए हम उसका अमल सामाजिक क्षेत्र में नहीं कर सकते, यह समझकर उन्होंने अपने मन को 'ऐडजस्ट' कर लिया है। अच्छी तरह बाइबिल भी चलती है और यह शस्त्र-व्यवहार भी। ढोंग उनके मन में है नहीं। गांधीजी ने हमें जो अहिंसा का विचार दिया, उसकी हालत भी आज इसी तरह की हो रही है। कुछ लोग उसे पहले भी एकांगी समझते थे, आज भी समझते हैं और यही कहकर उसे छोड़ते हैं। दूसरे लोग उसे पहले भी अच्छा समझते थे और आज भी अच्छा समझते हैं। लेकिन उसके व्यावहारिक अमल के लिए उसे इतनी मात्रा तक छोड़ना ही पड़ता है, ऐसा समझकर उसे छोड़ रहे हैं। जब पूछा जाता है कि क्या इसका कोई पाप-पुण्य नहीं, तो वे यह भी कहते हैं—मुझे प्रत्यक्ष बातचीत में जो अनुभव हुआ, उसे कह रहा हूँ—कि 'हाँ इसमें पाप जरूर है, लेकिन उतने पातक के बिना चारा नहीं है।' यह पातक हमारी सामाजिक जिम्मेवारी के साथ जुड़ा है। यह 'लेसर इविल' (छोटी बुराई) है, पर उसे हम न करेंगे, तो उससे 'ग्रेटर इविल' (बड़ी बुराई) हमें उठानी पड़ेगी, यों समझकर वे बड़े पाप से बचने के लिए ही छोटा पाप करते हैं।

धर्माचरण का यही क्षण

कई बार मैं कहता हूँ कि आप अहिंसा का विचार मान्य करते हैं, यह तो

बहुत अच्छी बात है। आज नहीं तो कल, उधर आप आयेंगे ही, ऐसा हम समझते हैं। अभी जो कुछ कार्य आप कर रहे हैं, उसे हम भ्रममूलक कहें, तो उसका कोई उपयोग नहीं। क्योंकि आप भी हमारे लिए कह सकते हैं कि 'हम ही भ्रम में हैं।' 'आप भ्रम में हैं' कहने का जितना अधिकार हमें है, उतना ही आपको भी। इसलिए यह चर्चा हम नहीं करते। फिर भी मन में हमें लगता है कि अगर हम इस तरह करते चले जायेंगे, तो कहीं न पहुँचेंगे। प्राचीन काल से आज तक हम यही करते आये हैं। इससे अहिंसा का बेड़ा पार न होगा। हमें कभी-न-कभी हिंसा से बिलकुल बिदा लेनी ही होगी। वह समय आज ही आया है या नहीं, यह आप देखें। हमें तो लगता है कि सब धर्मों के आचरण का अगर कोई उचित समय है, तो यही है। इसके पहले नहीं था, क्योंकि वह हाथ से छूट गया है। इसके आगे का भी नहीं है, क्योंकि वह हाथ में नहीं है। केवल यह क्षण हाथ में है। इस क्षण को हम इस आशा से खोयें कि आगे वह चीज हम करेंगे, तो इसमें हमें एक प्रकार का मोह दीखता है। संभव है, यह मोह न हो, और जैसा कि आप कहते हैं, 'रिअलिज्म' (वस्तुवाद) हो। लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि दोनों तरफ से अहिंसा पर प्रत्यक्ष प्रहार ही हो रहा है। इस तरह स्वराज्य के बाद इन दिनों दोनों तरफ से हिंसा को काफी बल मिला है. हमें इसका मुकाबला करना होगा।

सौम्यतर सत्याग्रह

मुकाबला करने के लिए कोई-न-कोई योजना हो। पहली योजना, जिसका मैं कई बार जिक्र कर चुका हूँ, यह है कि हम धीरे-धीरे सौम्य से सौम्यतर में जायँ और फिर सौम्यतर से सौम्यतम। आज एक पत्र बंगाल के चारुबाबू का आया। पढ़कर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। आजकल हमने दो बार घूमना शुरू किया है, उसके कारण कई लोगों को चिन्ता हो रही है। सभीको एक चिन्ता तो देह की होती है और मुझे भी है। लेकिन चारुबाबू के पत्र में चिन्ता नहीं, उस पत्र ने मेरा ध्यान खींच लिया है। उसमें लिखा है कि 'आपने जो दो बार चलना शुरू किया है, मैं समझता हूँ कि उससे आपने सौम्य सत्याग्रह को सौम्यतर सत्याग्रह में

परिवर्तित किया है, और यह समझकर कि इससे हमें बल मिलता है। मुझे यह बहुत ही अच्छा लगा। मैं नहीं कह सकता कि इस तरह विचार कर हमने यह किया है। लेकिन सौम्यतर होने की वासना जरूर है और यह हो भी रहा है। जहाँ एक दिन पूरा रहते हैं, वहाँ जितनी कार्यशक्ति एक पूरा दिन रहकर मनुष्य लगा सकता है, उतनी कार्यशक्ति आधा दिन रहकर नहीं लगा सकता। विचार बतलाकर वहाँ से जाना ही पड़ेगा। आधा घंटा मुश्किल से गाँववालों के साथ बात करने को मिलता है। दिनभर वहाँ रहते, तो जरूर कुछ-न-कुछ कार्य-शक्ति वहाँ लगानी पड़ती। कुछ दबाव भी पड़ता और बहुत कुछ हो सकता। परन्तु आज तो होता यह है कि विचार समझा दिया और आगे बढ़े। यह प्रत्यक्ष सौम्यतर का ही रूप हो जाता है।

उनके पत्र के बाद यह बात मेरे ध्यान में आयी कि इसमें सौम्यतर तो हो ही जाता है। मैं कहना यह चाहता था कि सौम्यतर का अर्थ मेरे मन में कुछ खुल रहा है। वह गीता में तो है, लेकिन गीता हम समझते कहाँ हैं? आहिस्ता-आहिस्ता थोड़ी-थोड़ी समझते हैं। इसीलिए जिन्दगीभर उस ग्रंथ का उपयोग होता है। एकदम समझते होते, तो उसका उपयोग ही खतम हो जाता।

क्रिया : विचार-सिद्धि का साधन और परिणाम

जिसे हम 'क्रिया' कहते हैं, वह विचार को अमल में लाने का साधन है। जिस तरह विचार को अमल में लाने के लिए, विचार के अवतरण के लिए वह साधन है, उसी तरह वह विचार का परिणाम भी है। आप भूदान दें, उससे आपकी उदारता बढ़ेगी। आपकी उदारता बढ़ी, उसके परिणामस्वरूप आप भूमिदान देते हैं। अर्थात् क्रिया विचार-सिद्धि का साधन और विचार-सिद्धि का परिणाम, दोनों है। जितने अंश में वह विचार सिद्धि का परिणाम है, उतने अंश में उसका आग्रह हमें न रखना चाहिए। मेरे विचार के परिणामस्वरूप पाँच करोड़ एकड़ जमीन मिलनी चाहिए, ऐसा मैंने तय किया है। पर यह परिणाम है, इसलिए उस दानप्राप्ति की क्रिया की आसक्ति हमें न होनी चाहिए। लोग समझें कि 'दान-विचार' याने सम-विभाजन

विचार। इसे मैं भी समझूँ और मेरे जीवन में वह विकसित हो। लोगों के जीवन में वह विकसित हो ही जायगा। जब वे विचार समझेंगे, तब उसका परिणाम आ ही जायगा। उसका ज्यादा आग्रह हमें नहीं है। विचार ही मैं समझूँगा और समझाऊँगा।

जितने अंश में क्रिया विचार-सिद्धि का साधन होती है, उतने ही अंश में उस पर जोर दूँगा। जैसे, पैदल चलना। मैं अगर पैदल नहीं चलता, तो विचार समझा नहीं सकता। इसलिए पैदल चलने का मैं आग्रह रखूँ, तो वह जरूरी है। किंतु अगर दान-प्राप्ति का आग्रह रखूँ, तो वह क्रिया परिणामस्वरूप क्रिया है। 'इतने दान-पत्र लिखवा लेने हैं, हरएक के पास जाकर समझाकर लिखवा लेना है' अगर यों मैं करूँ, तो वह सौम्य कार्य नहीं। उसमें फलप्राप्ति का आग्रह रहेगा। मैं नहीं जानता कि मैं स्पष्ट कर सका या नहीं कि कौन-सी क्रिया विचार-सिद्धि का साधन है और कौन-सी क्रिया विचार-सिद्धि का परिणाम, जिसका आग्रह हमें नहीं रखना चाहिए। लेकिन मेरे मन में कुछ इस तरह का भेद प्रकट हो रहा है।

हम अधिक विचार-परायण बनें

बहुतों को ऐसा डर लगता है कि इसका परिणाम निवृत्ति-मार्ग में होगा। पर वह मुझे इसलिए नहीं लगता कि निवृत्ति पहले से ही मेरे मन में बसी है। अब कोई ज्यादा निवृत्ति आयेगी, ऐसा संभव बहुत कम है। फिर भी मैं जानता हूँ कि क्रिया की अतिरिक्त आसक्ति न हो। साधनरूप क्रिया की आसक्ति हो। लेकिन आगे की जो क्रिया है, उसे समाज करे। समाज की तरफ से जो क्रिया होगी, उसका आग्रह हम अपने मन से हटाना चाहते हैं। मैं नहीं मानता कि ऐसा कोई आग्रह मेरे मन में पहले से भी था। किंतु जहाँ एक सामूहिक कार्य शुरू होता है, वहाँ उसके साथ के कुछ संकल्प भी आते हैं। वे सामूहिक सफल होते हैं। इसमें कोई खास दोष नहीं है। परन्तु धीरे-धीरे इस प्रक्रिया का जो परिणाम आया, उसे देखते हुए इससे अधिक सौम्य प्रक्रिया अर्थात् जिसमें क्रिया की तीव्रता कम हो और विचार की प्रक्रिया अधिक, ऐसी कार्य-पद्धति हमें धीरे-धीरे लेनी होगी।

मतलब यह कि शुद्ध विचार सोचने, समझने, व्यक्तिगत रूप से उसके अमल करने और दूसरों को समझाने में हमारे कार्य की पूर्ति होनी चाहिए। सोचना-समझना बहुत बड़ा काम है। अगर हम अपने लिए इतना करते हैं और हमारे मन में किसी प्रकार का कोई मोह नहीं रह जाता, शुद्ध विचार का दर्शन होता है, तो मैं मानता हूँ कि ६० फीसदी काम हो गया है। देश, समाज और दुनिया का जो स्वतंत्र कार्य है, वह अलग है, लेकिन हमारे जरिये जो हो सकता है और जो रुक रहा है, वह ६० फीसदी इसीलिए रुक रहा है कि हमारे विचार में सफाई नहीं। मोह के कुछ पर्दे, कुछ अंश रह जाते हैं।

शुद्ध विचार सोचना और शुद्ध विचार कहना स्वयं बहुत ही बड़ा कार्य है। फिर जब वह विचार चित्त में आ जाय, तो तदनुसार क्रिया होनी ही चाहिए। उसके बाद दूसरों के प्रति हमारा कर्तव्य इतना ही है कि उन्हें विचार समझा दें। उससे आगे हमारा कर्तव्य नहीं होता। इसलिए अगर हम अधिक विचारपरायण बनें और क्रिया की मर्यादाओं को ठीक समझें, तो अहिंसा अधिक फैलेगी, ऐसा हमें लगता है। याने भूमिदान को न छोड़ते हुए उस भूमिका को अपनी विचार-सिद्धि के साधन के तौर पर पकड़कर बाकी परिशुद्ध अहिंसा-विचार को ही दुनिया में फैलायें और उसमें जितनी तपस्या चित्त-शुद्धि के लिए करनी होगी, उतनी स्वयं करते रहें—यही हमारा कार्य होना चाहिए। अगर ऐसा हो, तो हम समझते हैं कि हम एकांगी न रहेंगे। इस विचार-प्रवाह में, भूदान के प्रवाह में जितने लोगों को हमने खींच लिया है, उससे बहुत ज्यादा लोगों को हम खींच लेंगे और वे भी भू-दान-कार्य में प्रवृत्त हो सकेंगे।

सर्वोदय-मंडल

इसके बाद, आखिर में इसके लिए क्या-क्या योजना हो सकती है, कुछ योजना हो सकती है या नहीं, यह विचार मन में आता है। मुझे लगा कि हरएक प्रदेश में जहाँ एक भाषा का एक ही बड़ा प्रदेश बना है, वहाँ उस भाषा में और जहाँ हिन्दी जैसी एक ही भाषा के अनेक प्रदेश बने हैं,

उन प्रदेशों में अगर सर्वोदय-मण्डल बनें, तो कुछ लाभ होगा। यह 'सर्वोदय-मंडल' कोई एक योजनापूर्वक बनाया जाय, ऐसा कुछ मन में नहीं। क्योंकि मैं संगठन पर बहुत ज्यादा श्रद्धा भी नहीं रखता। किन्तु चाहे वह अव्यक्त रूप में ही हो, चाहे उसका रूप भी हो जाय, पर ऐसा व्यक्त रूप हो, जो कि किसी को न जकड़े। शुद्ध विचार करनेवाले अर्थात् शुद्ध विचार का प्रयत्न करनेवाले लोग और सर्वभूत-हित में विश्वास करनेवाले, निष्काम कर्म माननेवाले, पक्षातीत और हमारे पक्षातीत विचार में भी जिनकी श्रद्धा है—ऐसे लोग इकट्ठे हों। श्रद्धा से मेरा मतलब इतना तो है ही कि तदनुसार क्रिया करने का मनुष्य प्रयत्न करे। *ऐसी श्रद्धा जिनके अन्दर है, उनका एक मंडल* बन सकता है।

धर्म के लिए इंग्लिश का एक शब्द बड़े महत्त्व का है। वे 'धर्म' को 'फेथ' कहते हैं। एक 'हिन्दू फेथ' है और एक 'हिन्दू थॉट'। पर 'हिन्दू थॉट' तो चन्द लोग ही समझे हैं, 'हिन्दू फेथ' लाखों लोगों में है। ऐसे ही इसलाम आदि *फेथ हैं। फेथ में लाखों लोग हैं, उस 'विचार' में चंद लोग और कृति में* उससे भी थोड़े लोग होते हैं। सर्वोदय के लिए जिनके मन में 'फेथ' है, ऐसे दस-पाँच लोग जो भी हों, उनका एक मंडल बने। वे खास विषयों पर विचार कर एक शुद्ध विचार के रूप में लोगों के सामने रख दें। अगर सम्मिलित रूप से कोई चीज रखनी है, तो वैसा करें। वैसा न करना हो, तो कुछ चर्चा कर लें और फिर अलग हो जायँ तथा अलग जाकर वैसा कार्य करें। ऐसा सर्वोदय-मंडल अगर बने, तो अच्छा रहेगा। शायद इस दृष्टि के विकास के लिए वह लाभदायी होगा।

आगे चलकर जैसे-जैसे हम जनता की तरफ आन्दोलन को ले जाने के संकल्प का अमल करते जायँगे, वैसे-ही-वैसे आज की हमारी समितियाँ टूट जायँगी और लोग अपनी-अपनी ताकत के अनुसार अलग-अलग काम करेंगे। सलाह-मशविरा 'सर्वोदय-मंडल' से कर लेंगे। सर्वोदय-मंडल का वह आग्रह न रहेगा कि उनकी सलाह पर अमल हो। लोगों पर ऐसा कोई भार न रहेगा

कि उनकी सलाह पर अमल न करें, तो दंड होगा। इसका एक नैतिक मूल्य है, उस नैतिकता के लिए ही लोग उसकी सलाह लेंगे। सलाह माँगेंगे, तो दी जायगी और न माँगने पर भी दी जायगी। इस तरह यदि कुछ आरम्भ हो, तो शायद इस विचार के लिए अनुकूल होगा।

धर्मपुरी (सर्वोदयपुरम्)
४-८-'५६

युगानुकूल विराट् चिंतन : ३० :

आजकल मैं तमिल भाषा का सर्वोत्तम साहित्य पढ़ रहा हूँ। कुछ दिनों से 'तिरुवाचकम्' पढ़ने का सौभाग्य मुझे मिला है। एक हजार साल पहले का यह ग्रंथ है, लेकिन आश्चर्य यह है कि कुछ बातें उन्होंने ऐसी बतायी हैं, जो आज हमारे काम की हैं।

भक्तों की संगति की अपेक्षा

उस ग्रंथ में बहुत-सा तो परमेश्वर के साथ संवाद ही चलता है। जैसे हम भाई-भाई आपस में बातें करते हैं, वैसे ही वे परमेश्वर के साथ बात करते हैं। कहते हैं : 'तू मेरे साथ एकरूप है और मैं तेरे साथ एकरूप हूँ। इसका तो अपार आनन्द है', किंतु इतना आनन्द प्राप्त होने पर भी वह ईश्वर से एक अभिलाषा रखता है। कहता है : 'मुझे उस आनन्द की अपेक्षा है, जो तेरे भक्तों में रहकर मिलता है।' ईश्वरी-संगति प्राप्त होने पर भी वह भक्त की संगति की प्यास रखता है। इन दिनों कुछ लोग ऐसे निकलते हैं, जो ईश्वर का निषेध करते हैं, पर चाहते हैं कि सज्जनों की संगति में रहें। 'माणिक्य-वाचकर' इस तरह ईश्वर का निषेध नहीं करता, वह साक्षात् ईश्वर से बात करता है। पर साथ ही भक्त-समाज के अन्दर जीवन व्यतीत करना चाहता है। यही इस जमाने का कार्य है।

माणिक्यवाचकर से बढ़कर आकांक्षा

हमने सर्वोदय-समाज बनाने का संकल्प किया है। याने हम व्यापक समाज के अंदर कोई छोटा समाज बनाना नहीं चाहते। यही चाहते हैं कि कुल समाज ही सर्वोदय-समाज बने। छोटा-सा भक्तमंडल बनाकर हम उसमें रहना नहीं चाहते, बल्कि कुल समाज का रूपांतर भक्त-समाज में करना चाहते हैं। एक तरह से देखा जाय, तो माणिक्यवाचकर ने जो कल्पना की, हम उससे एक कदम आगे जाना चाहते हैं। सवाल उठेगा कि क्या हममें यह योग्यता है? हम कहते हैं कि हाँ, है। पर इसलिए नहीं कि व्यक्तिगत तौर पर हम कोई ऊँचे दर्जे में पहुँचे हैं, वरन् इसलिए कि आज के जमाने की वह योग्यता है। आज के जमाने में जो विश्वव्यापक मानव की वृत्ति न रखेगा, वह टिक नहीं सकता। छोटे-छोटे अभिमान रखने के दिन लद चुके। विज्ञान ने मानव के दर्शन का क्षेत्र इतना व्यापक बना दिया कि विज्ञान के रहते छोटी नजर से देखनेवाला हार खायेगा। दीखने में तो यह भी दीखता है कि इस जमाने में हिंसा की शक्ति बढ़ रही है, परंतु वह इतनी विकसित इसीलिए हुई है कि अब समाप्त होना चाहती है, अहिंसा-शक्ति में परिवर्तित होना चाहती है। आज जितना चिंतन होता है, वह सारा व्यापक होता है। कोई व्यक्तिगत तौर पर संकुचित चिंतन करने की कोशिश करता है, किंतु उसके विरुद्ध प्रवाह इतना जोरदार है कि उसे व्यापक चिंतन करना ही पड़ता है।

जमाने की प्रेरणा

हमने आशा रखी और कहा था कि १९५७ में सर्वोदय-समाज की बुनियाद डाली जा सकती है। यह हमने कोई भविष्यवाणी नहीं की थी। हमें परिस्थिति का जो दर्शन हो रहा है, उसीसे यह प्रेरणा मिली। हम देख रहे हैं कि एक साल पहले कुल दुनिया सर्वोदय-समाज के जितनी नजदीक थी, उससे आज एक कदम ज्यादा नजदीक आयी है। दीखने में यही दीखेगा कि बड़े-बड़े देश एटम और हाइड्रोजन बम के प्रयोग कर रहे हैं। रूस और अमेरिका इस शस्त्र में बहुत शक्तिमान् बने हैं। इंग्लैण्ड भी उनके पीछे-पीछे जाने की कोशिश कर

रहा है। पर उसकी पार्लमेण्ट ने एक प्रस्ताव पास कर दिया कि फाँसी की सजा रद्द हो जाय। यह कोई छोटी घटना नहीं है। एक ओर वह बड़े-बड़े बम बनाने में मदद दे रहा है और दूसरी ओर फाँसी की सजा रद्द करने जा रहा है। आखिर यह क्यों? स्पष्ट है कि फाँसी की सजा रद्द करने की प्रेरणा हृदय की प्रेरणा और इस जमाने की प्रेरणा है। तथा यह जो शस्त्रास्त्र बढ़ रहे हैं और बढ़े हैं, वह पुराने प्रवाह का ही एक लक्षण है।

जमाने की प्रेरणा के लिए भारतीय मन अनुकूल हो

ऐसी स्थिति में हम भारत में ऐसा सर्वोदय-समाज शीघ्र-से-शीघ्र बना सकते हैं। भारत का कुल जीवन उसके लिए अनुकूल है, उसकी परिस्थिति, उसका इतिहास, उसकी परम्परा और उसकी संस्कृति भी इसके लिए अनुकूल है। हम भूदान-यज्ञ को एक बड़े विचार की गंगोत्री (उद्गम स्थान) मानते हैं। इसमें लाखों लोगों ने भूदान दिया और लाखों परिवारों में वह जमीन बँट रही है। यह घटना इस जमाने का अरुणोदय है। इसके आगे सूर्योदय होनेवाला है, इसलिए भारतीय मन तैयार होना चाहिए। हमारे मन में किसी जाति का अभिमान नहीं है। हम नहीं समझते कि हम भारतीय मनुष्य हैं और दुनिया के किसी भी देश के मनुष्यों से श्रेष्ठ हैं, हम आर्य हैं, देवता हैं या ईश्वर के विशेष कृपापात्र हैं। फिर भी हम कहते हैं कि भारत इसके लिए अत्यन्त अनुकूल है, और भारतीय इसके लिए अपना मन तैयार करें, क्योंकि हिन्दुस्तान का कुल साहित्य और परंपरा इसके अनुकूल है।

सबको जोड़नेवाला विज्ञान

इसलिए इन दिनों हम ज्यादा जोर मतभेद मिटाने में ही देते हैं। मनुष्य का जीवन बहुत व्यापक है। उसके अनेक अंग और उसके अनेक प्रश्न हैं, जिन पर एक से अधिक तरह से सोचा जा सकता है। इसलिए भिन्न-भिन्न रायें होती हैं, किंतु ये सभी विभिन्न अभिप्राय विज्ञान के इस युग में अत्यंत गौण हैं। कोई नक्षत्र बड़ा है और कोई छोटा, यह भेद रात के अंधकार में होता

है। सूर्यनारायण के प्रकाश में ये भेद नहीं रहते। इसी तरह विज्ञान के जमाने में मतभेदों का कोई मूल्य ही नहीं है। मतभेद मन के कारण होते हैं और जिस प्रकार की परिस्थिति तथा जैसे संस्कार होते हैं, उन्हींके अनुकूल मनुष्य के मन बनते हैं। मनुष्य चाहे या न चाहे, लेकिन विज्ञान की माँग है कि उसे अपने मन को और अपने कुल मतभेदों को अलग करके सोचना होगा। भिन्न-भिन्न मनों के भिन्न-भिन्न अभिप्राय विज्ञान में डूब जाते हैं। अभी कच्छ में भूकंप हुआ। उस वक्त किसका कोई मतभेद टिका? सब आपत्ति में डूब गये। जैसे आपत्ति में मतभेद डूब जाते हैं, उससे भी अधिक उन्हें डुबाने की सामर्थ्य विज्ञान में है। विज्ञान बता रहा है कि हम सारे जुड़े हुए हैं। हम अंदर से जुड़े हैं, यह आत्मज्ञान पहले ही बता चुका था, लेकिन बाहर से भी जुड़े हैं, यह विज्ञान बता रहा है। एक जमाना था, जब लोग मानते थे कि समुद्र दो देशों के बीच रहता है, तो दोनों को अलग करता है। किन्तु आज यह माना जाता है कि दो देशों के बीच का समुद्र दोनों देशों को जोड़ता है। अमेरिका समझता है कि चीन और जापान मेरे पड़ोसी देश हैं, जिसके बीच सिर्फ आठ हजार मील लंबा समुद्र है। दिन-दिन विज्ञान आगे बढ़ रहा है। आप हमारे सामने बैठे हैं और हम आपके सामने, तो बीच के आकाश ने हमें जोड़ दिया। आज हम यहाँ बोलते हैं, तो हमारी आवाज के कुल दुनिया में जाने लायक औजार निकल गये हैं। यह सारा आकाश हमारे शब्दों को वहन करनेवाला साधन है, उन्हें रोकनेवाला नहीं। जहाँ आकाश और समुद्र जैसे तत्त्व दो राष्ट्रों को अलग करते थे, वे दो राष्ट्रों को जोड़नेवाले साबित हुए हैं, तो वहाँ मन का क्या चलेगा?

मन बदले, तो सारा प्लानिंग बदलेगा

मनुष्य का मन अगर बदला, तो वह चाहे तो जो आज है, उसे कल खतम भी कर सकता है। जिन हाथों ने ये शस्त्रास्त्र बनाये, वे ही हाथ इन्हें खतम करेंगे। जो हाथ आज इस 'प्लान' को बनाते हैं, वे ही कल इसे बदलने को बाध्य हो जायँगे। इसलिए भले ही हिन्दुस्तान को उस 'प्लान' की महिमा मालूम पड़े, लेकिन हम उसे कोई महत्त्व नहीं देते। अपने समाज में जो शक्ति है,

उसका छोटा-सा अंश ही इस प्लान में है, यह प्रकट हो रहा है। मन बदल जायगा, तो सारा-का-सारा 'प्लानिंग' भी बदल जायगा। आज विज्ञान के कारण मन टूट ही रहा है, फिर बदलने की बात ही नहीं रही। इस तरह देशों की मर्यादाएँ और धर्म के बंधन भी टूट रहे हैं और सर्वत्र व्यापकता फैल रही है। इस दृष्टि से सरकार का प्लान बहुत ही छोटी चीज है। उससे बहुत ज्यादा हम व्यक्तिगत तौर पर कर सकते हैं।

विराट् चिंतन

भूदान का ही विचार लीजिये। मान लीजिये कि सब लोग समझ जायँ कि भूमि पर मालकियत रखना आज के लिए उचित नहीं, किसीके लिए लाभदायक नहीं है। बाबा को विश्वास है कि यह बात उसके कहने से नहीं, वरन् विज्ञान के कारण जल्द से-जल्द हो जायगी। विज्ञान जो करना चाहता है, वही बाबा बोलता है, इसलिए बाबा को नाहक श्रेय मिलता है। जैसे लोग ही अपनी लड़की को दूसरे के घर भेज देते हैं, उसके लिए वर ढूँढ़ते हैं, वैसे ही लोग ही अपनी जमीन के लिए स्वयं ग्राहक ढूँढ़ लेंगे। इस तरह गाँव-गाँव की जमीन बँट जाय, तो यह कितना बड़ा प्लानिंग होगा ! इसलिए जब कभी हम सोचने बैठते हैं, तो विराट् से कम सोच ही नहीं सकते।

संतों का विशाल हृदय

विज्ञान तो बढ़ेगा ही, उसके साथ प्रेम-विचार भी बढ़ेगा, तो दोनों मिलकर कुल समस्याएँ हल हो जायँगी। इस दृष्टि से हमने अपना मन तैयार रखा है। हम चाहते हैं कि भारत के लोग भी अपना मन तैयार रखें। इसमें आपको अपने संतों से बहुत मदद मिल सकती है, कारण, वे बहुत व्यापक विचार रखते थे। माणिक्यवाचकर ने यही कहा था : 'दक्षिण प्रदेश में रहनेवाला शिव सारी दुनिया का स्वामी है। वह दक्षिण भारत में सीमित नहीं, कुल दुनिया का वह स्वामी है और वह हम गाँव का भी स्वामी है। किसी प्रकार का स्वदेश, परदेश मानने को उनका मन तैयार न था। माया के समान वह देश-भेद भाषा न

जानता था, तमिल छोड़कर शायद संस्कृत जानता हो। फिर भी उसकी प्रतिभा व्यापक थी, हृदय विशाल था। आज हमें अपना हृदय विशाल बनाये बिना चारा नहीं है। बुद्धि तो विशाल बन चुकी है।

धर्मपुरी (सेलम)
४-८-'५६

हृदय-परिवर्तन की विधि

: ३१ :

हमारे काम में जितनी बातें हैं, उनके अनेक पहलू होते हैं। लेकिन मूलभूत विचार अहिंसा का ही है। हम सब जानते हैं कि अहिंसा की प्रक्रिया हृदय-परिवर्तन पर आधृत है। हृदय-परिवर्तन की अपनी एक पद्धति है। मनुष्य कभी-कभी जानता भी नहीं कि उसका हृदय-परिवर्तन हो रहा है और कभी-कभी जान भी सकता है, ऐसी यह प्रक्रिया है। हमें इसका ध्यान रखना चाहिए कि हमारे विचार, सोचने की पद्धति आदि उसमें बाधक न हों। हमारे देश में भिन्न-भिन्न राजनैतिक पक्ष हैं और भिन्न-भिन्न आर्थिक विचार। चूँकि देश बड़ा है, इसलिए समस्याएँ भी बड़ी हैं। अतः अनेक विधि से विचार होते हैं, विचार-भेद पैदा होते हैं।

हृदय-परिवर्तन अपना भी

हम जब हृदय-परिवर्तन और विचार-परिवर्तन की बात करते हैं, तो हमेशा हमारे सामने दूसरों के विचार-परिवर्तन की ही बात होती है, ऐसा नहीं। हमारे अपने और दूसरों के भी विचार-परिवर्तन, हृदय-परिवर्तन की बात होती है या होनी चाहिए। इस तरफ ध्यान कम जाता है कि हमारे अपने विचारों और हृदयों का भी परिवर्तन बहुत आवश्यक है। इसलिए हृदय-परिवर्तन की यह प्रक्रिया सबके लिए लागू है। हमसे भिन्न विचार रखनेवाले के लिए ही लागू है, ऐसा नहीं।

श्रम की जरूरत

इस प्रक्रिया के बारे में मुझे जो विशेष बात कहनी थी, वह यह है कि इसमें

'भ्रम' को भी स्थान है। यह एक अजीब-सी बात मैं कह रहा हूँ। फिर भी हमें उपासना में इसका हमेशा अनुभव होता है। उपासना में भ्रम का कुछ आधार लेना ही पड़ता है। आखिर में वह आधार उड़ जाता है। फिर आदत से वह उपासना जारी रहे या छूट भी जाय, दोनों बातें हो सकती हैं। किंतु जब तक उसकी जरूरत है, तब तक उसके मूल में जैसे विचार होता है, वैसे भ्रम भी। उपासना न तो शुद्ध विचार में टिकेगी और न केवल भ्रम में ही। जहाँ विचार और भ्रम दोनों हों, वहीं उपासना होती है। यही दृष्टांत हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया के लिए लागू होता है।

कम्युनिस्टों का समर्थन

इन दिनों आन्ध्र-देश में और थोड़ा-बहुत उड़ीसा में भी देखा कि आजकल कम्युनिस्ट लोग कहने लगे हैं : 'भू-दान का मूल विचार हमारा ही विचार है, हम उससे सहमत हैं। मालकियत किसीकी न हो, न सिर्फ जमीन की, बल्कि सभी प्रकार की सम्पत्ति की मालकियत न हो, यह बात बाबा अब कह रहा है।' बाबा पहले से कह रहा है, यह बात शायद वे नहीं जानते। अब वह इस पर जितना जोर देता है, शायद पहले उतना न देता हो, यह भी सम्भव है। परन्तु वे समझते हैं कि इतना परिवर्तन बाबा में ही हुआ है। मेरा खयाल है, कुछ परिवर्तन हुआ है और कुछ नहीं भी हुआ। फिर भी वे समझते हैं कि यह विचार असल में कम्युनिस्टों का ही विचार है और यह उन्हें सर्वथा पसन्द है। हमारे विचार और कम्युनिस्टों के विचार में कुछ फर्क भी है। विशेष मौके पर उसे समझा भी देता हूँ, लेकिन आम सभाओं में यही कहता हूँ कि 'वे जो समझते हैं, वह ठीक है, इसलिए उनका पूरा समर्थन हमें मिलना चाहिए।'

भ्रम का खंडन जरूरी नहीं

इसमें उनका कुछ भ्रम है और कुछ सही विचार भी है। हमारा-उनका मेल हो रहा है, ऐसा वे मानते हैं। इसमें भी कुछ सत्य है और कुछ भ्रम भी। मैं दोनों की कीमत करता और दोनों की जरूरत समझता हूँ। कारण, उनके बिना हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया नहीं हो सकती। यह प्रक्रिया ही ऐसी है

कि मनुष्य को यह भास नहीं होता कि मैं अपना विचार छोड़कर दूसरा विचार ले रहा हूँ। कभी-कभी ऐसा भास होगा भी, लेकिन अक्सर नहीं। अक्सर यही लगेगा कि जिस विचार को मैं मानता आया हूँ, उसीका यह नया रूप है, बल्कि अधिक शुद्ध रूप है, पर है उसीका भाषान्तर। यदि उन्हें यह लगता है कि अन्य भाषा में वही विचार प्रकट हो रहा है, तो शायद भाषा कुछ बेहतर है, लेकिन है यह मेरा ही मूल विचार, तो हम उनका खंडन न करेंगे। मैं अपनी वृत्ति इसी तरह बना रहा हूँ।

कांग्रेस का ही काम

प्रजा-समाजवादी और कांग्रेसवादी तो पहले से ही यह कह रहे थे। अब कांग्रेसवाले कुछ अधिक कहने लगे हैं कि 'यह विचार उत्तम है, हमारा ही विचार है।' पहले तो वे इस पर ऐसे भी आक्षेप करते रहे कि इससे जमीन के टुकड़े होंगे, आदि। पर अब ऐसे आक्षेप ज्यादा उठाये नहीं जाते। अब वे इसके साथ एकरूपता का नाता जोड़ते हैं। कभी कभी कहते हैं कि यह काम और कांग्रेस का काम एक ही है। 'यह कांग्रेस का काम है', ऐसा भी कहते हैं। मैं उसका भी प्रतिवाद नहीं करता। उसमें भी कुछ भ्रम है और कुछ सत्य।

बीच में भ्रम का स्थान

मैं देखता हूँ कि हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया की एक अवस्था में भ्रम और सत्य, दोनों का होना जरूरी होता है। ऐसा मनुष्य पहले केवल भ्रम में रहता है। वहाँ से उसे केवल सत्य में जाना है। केवल भ्रम से केवल सत्य में जाने के लिए रास्ते में ऐसी भूमिका आयेगी, जब कि उसके मन में कुछ भ्रम और कुछ सत्य का आभास होगा। तब अगर हम फौरन उसका खंडन करें, तो उसका चित्र चलित होगा और एक विरोध स्थापित हो जायगा। वह यह समझकर हमारी तरफ आ रहा है कि मानो हम ही उसकी तरफ जा रहे हैं। ऐसा मानने का उसे अधिकार है। भले ही उसमें कुछ भ्रम हो, पर कुछ सत्यांश भी हो सकता है। हम अपनी भूमिका बिलकुल छोड़ते ही नहीं, ऐसा तो है नहीं। हम भी कुछ उधर को जाते हैं और वे कुछ इधर को आते हैं। इस तरह बीच रास्ते

में कुछ भ्रम के लिए मौका रहता है। यदि सत्य के ख्याल से वह खंडन किया जाता हो, तो अहिंसा के लिए बाधक होगा।

सत्य कभी चुभता नहीं

अब यहाँ यह विषय जरा सूक्ष्म हो रहा है। सत्य के विरुद्ध मानो अहिंसा खड़ी है, ऐसा आभास होता है; लेकिन यह आभास ही है। वास्तव में सत्य कभी प्रहार नहीं करता, वह चुभता नहीं। अगर वह वास्तव में सत्य हो, तो हमेशा प्राणप्रद होगा। जो तत्त्व प्राणप्रद हो, वह अहिंसक तो होगा ही, चुभेगा भी नहीं। इसलिए जहाँ सत्य चुभता है, वहाँ उसकी सत्यता में ही कुछ कमी रहती है। वह कमी सिर्फ अहिंसा की कमी नहीं होती। चुभनेवाले सत्य में अहिंसा की कमी तो स्पष्ट ही है, लेकिन उसमें सत्य का अंश भी कुछ कम होता है। इसीलिए वह चुभता है। सारांश, अहिंसा की दृष्टि से भ्रम का खंडन उचित नहीं। यदि वैसा भास हो भी, तो वह केवल भास ही होगा, यथार्थता नहीं।

अप्रत्यक्ष चुनाव

कुछ राजनैतिक पक्ष हमारे विचारों को कुछ अंशों में ग्रहण कर रहे हैं। आजकल अप्रत्यक्ष चुनावों की बात चल पड़ी है। दो-तीन साल से हम उस चीज को कहते आये हैं। अब वह विचार लोग कुछ मात्रा में मानने लगे हैं। पहले भी कुछ मानते थे, ऐसा नहीं कि बिलकुल ही न मानते थे। किन्तु पहले किसी कारण उन्हें लगता था कि यह नहीं हो सकता, पर अब हो सकेगा, ऐसा लगता होगा। यह भी एक परिवर्तन-सा हो रहा है। यह नहीं कि हमारे विचारों के कारण वह हो रहा हो। सम्भव है कि कुछ ऐसे संयोग दुनिया में पैदा हो गये हों, जिन्हें हम नहीं जानते। हालाँकि मैं तो महसूस करता हूँ—यद्यपि जानता नहीं, लेकिन भीतर से अनुभव करता हूँ—कि दुनिया में कुछ ऐसी प्रक्रियाएँ चल रही हैं, जो मनुष्य को एक विशिष्ट बिन्दु पर लाने की चेष्टा कर रही है। उसके परिणामस्वरूप हम भी दूसरों की तरफ जा रहे हैं और दूसरे हमारी तरफ। इसलिए फलाने ने फलाने का विचार-परिवर्तन किया या कराया, यह भाषा और

यह विचार भी गलत है। मैं नहीं समझता कि जिन लोगों ने यह विचार अभी प्रकट किया कि अप्रत्यक्ष चुनाव होने चाहिए, उनका पहले से कोई भिन्न विचार था। सम्भव है, पहले से भी उनके मन में वह रहा हो और किसी कारण उसे प्रकट न कर सके हों और अब प्रकट कर रहे हों। यह तो मैंने सिर्फ एक मिसाल दी।

इस तरह हृदय-परिवर्तन की कई मिसालें हिंदुस्तान में और उसके बाहर भी हो रही हैं। हमसे जिसका पहले ज्यादा मेल नहीं था, उससे अब थोड़ा ज्यादा हो गया है। जाहिर है कि मेल अगर थोड़ा ज्यादा हो गया, तो फर्क थोड़ा ही बचा है। इसलिए उस फर्क पर हम जोर न दें। बल्कि अगर वे कहते हैं कि आप और हम एकरूप हैं, तो हम भी उसे कबूल करें, यह समझकर कि उनकी मार्फत कुछ काम हो। काम होने के बाद विचार की सफाई के लिए गुंजाइश होगी, तब हम विचार की सफाई के लिए और कोशिश करें।

पास आनेवाले को आने दिया जाय

इस तरह का मत-परिवर्तन न सिर्फ राजनैतिक क्षेत्र में ही हो रहा है, बल्कि आर्थिक क्षेत्र में भी हो रहा है। मुझे तो खुशी हुई, जब मैंने 'खादी-बोर्ड' वालों का यह प्रस्ताव पढ़ा कि 'फलाने-फलाने उत्तम कार्य का सरकार ने एक अंश तो कबूल किया, अम्बर चरखे की हद तक।' उस प्रस्ताव में वे यह भी कहते हैं कि 'अब तक हमें "सर्व-सेवा-संघ" की मदद मिली और आगे भी मिलेगी, क्योंकि सर्व-सेवा-संघ का जन्म ही इसी काम के लिए हुआ है।' मैं कबूल करता हूँ, वह प्रस्ताव पढ़ने पर मुझे बड़ा आनन्द हुआ। इसलिए नहीं कि इस विचार में कोई भ्रम नहीं है, बल्कि इसलिए कि ऐसे भ्रम की जरूरत होती है। सामनेवाले को तो यह लगे कि आप और हम एक हैं, लेकिन आप कहें कि 'नहीं, नहीं, आप और हम एक नहीं, हमारा अपना अलग है', यह ठीक नहीं। जब वह कहता है कि 'आप और हम एक हैं', तो हम भी समझें कि 'हाँ, ठीक है।' जो बारीक फर्क होता है, वह रहने दें। हमारे मन में कोई गड़बड़ी (कन्फ्यूजन) न हो, यह जरूरी है, परंतु अगर वह हमारे साथ अपनी एकरूपता मानता है, तो हम

उसके साथ अपनी भिन्नता ही देखते रहें, यह उचित नहीं। उसका काम होने दें, कुछ कार्य बढ़ने पर फर्क दिखाई देगा। तब वह भी सोचने के लिए तैयार हो जायगा और दोनो आगे बढ़ेंगे।

मूर्ति-खंडन अहिंसा के लिए बाधक

सारांश, ये जो सारे कार्य चल रहे हैं, वे हमसे कुछ भिन्न हैं; लेकिन हमारे कुछ हिस्से कबूल करते जाते है, हमारे साथ एकात्मता मान लेते हैं। यहाँ तक कि पं० नेहरू ने ऑल इण्डिया कांग्रेस कमेटी में कहा, जहाँ मैं भी था—कि "सर्वोदय शब्द ही नहीं, बल्कि यह विचार भी सुन्दर है। यह अपने इस देश की जनता के मानस से निकला हुआ है। किन्तु हम उसके पात्र हैं, ऐसा नहीं लगता। उस हालत में हम उसका नाम लें और हमारा काम उससे कुछ थोड़ा भिन्न हो, यह ठीक नहीं। इसलिए हम अभी 'सोशलिस्ट स्टेट' (समाजवादी राज्य) की बात करते हैं।" फिर उन्होंने एक बात और जोड़ दी कि "यद्यपि समाजवाद कह देने से कोई खास अर्थ नहीं निकलता; उसके पचासों अर्थ निकलते हैं, यह सही है। फिर भी कुछ भाव उसमें से सबके समझने लायक निकल आता है।" उन्होंने जो कहा, उसका यह सारांश रहा। तो, मैं समझता हूँ कि अब अगर वे कहें कि 'हाँ, सर्वोदय अच्छा है और हम भी सर्वोदय की तरफ जाने की कोशिश करते हैं और करेंगे', तो उनका वह दावा भी सही होगा। धीरे-धीरे वे उस शब्द का सही मतलब समझ लेंगे। हम भी उनकी बात कुछ समझेंगे और वे भी हमारी बात कुछ समझेंगे। इसलिए उस दावे का मैं खंडन नहीं करता। इस तरह का खंडन एक प्रकार से मूर्ति-खंडन होता है और यह प्रक्रिया अहिंसा के लिए बाधक है।

उपासना की और ज्ञान की पद्धति

दो प्रकार से सोचा जा सकता है : एक तो यह कि 'हम आज सर्वोदय नहीं बना रहे हैं, लेकिन सर्वोदय बनाना अपना उद्देश्य जरूर मानते हैं; इसलिए हम "सर्वोदयवादी" हैं', यह कहना एक पद्धति है, और दूसरी पद्धति यह है कि 'चाहे हम सर्वोदय कैसे ही बनाना चाहते हो; फिर भी आज यह नहीं बन रहा

है, इसलिए आज हम "सर्वोदय" का नाम नहीं लेंगे।' दोनों पद्धतियों में गुण है। पहली पद्धति में उपासना अधिक है, तो दूसरी पद्धति में ज्ञान। जब मैं कहता हूँ कि 'मैं ब्रह्म हूँ, यह शारीरिक पिंड नहीं', तो कहनेभर से शरीर से अलग नहीं हो जाता। पर शरीर से अलग होकर ब्रह्मरूप होना चाहता जरूर हूँ। इस दृष्टि से आज ही 'मैं ब्रह्मरूप हूँ', 'शरीर से भिन्न हूँ', ऐसा जप मैं करता रहता हूँ। यह जप करना वस्तुस्थिति के साथ, 'स्थूल वस्तु-स्थिति' के साथ मेल नहीं खाता—इस अर्थ में यह एक भ्रम ही है। किन्तु यह भ्रम परम सात्विक है और इसकी जरूरत है। 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा कहने का आज मेरा तात्पर्य इतना ही है कि 'मैं ब्रह्म होना चाहता हूँ।' 'चाहना जब किसीको सूझता है, तब वह जिस वस्तु से प्यार करता है, उसके साथ उसका हृदय तन्मय है', इस दृष्टि से उसके कहने में सत्य भी आता है। यह उपासना की पद्धति है।

आज हम जो सर्वोदय का दावा करते हैं, उसमें हमारी यही उपासना-दृष्टि है। पं० नेहरू जो कहते हैं कि 'हम सर्वोदय चाहते तो हैं, लेकिन सर्वोदय के तत्त्व पर हम काम नहीं कर पाते और इसीलिए उसका नाम नहीं लेते', इसमें ज्ञान-दृष्टि है। हम नाम लेते हैं, तो कोई बड़ा काम कर पाते हैं, ऐसा नहीं। हम उसका नाम नहीं लेते, इसमें भी एक गुण है। हम नाम लेते हैं, इसलिए उसके लायक काम करते हैं, ऐसा भी नहीं। पर अपनी सद्वासना को प्राप्ति का रूप देकर, एक भ्रम रखते हुए हम उपासना करना चाहते हैं। यह उपासना की पद्धति है। जो ज्ञान की दृष्टि से देखता है, वह कहता है कि 'नहीं, जब तक मैं उस लायक नहीं होता, तब तक उसका दावा न करूँगा।'

वस्तुनिष्ठ और ध्येयनिष्ठ

एक प्रसिद्ध श्लोक है : "तद्ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसंघः।" इस पर किशोरलाल भाई का और हमारा हमेशा झगड़ा चलता था। पुरानी बात है, वे कहते थे कि 'यह श्लोक मुझे बिल्कुल नहीं जँचता। मुझे इसका अनुभव नहीं होता। सुबह से लेकर शाम तक खाना-पीना, स्नान आदि सारा शरीर-कार्य चलता रहता है। कभी-कभी सोचने पर मन में भले ही आ जाय कि मैं

देह से अलग हूँ; बहुत हुआ तो पाँच-दस मिनट सोचता हूँ। चौबीस घंटे में दस-बीस मिनट छोड़ करके बाकी सारा समय देह की सेवा और देहमयता में ही जाता है। इसलिए 'मैं देह नहीं हूँ और आत्मा हूँ', यह बोलना मुझे गौण मालूम होता है। अतः यह श्लोक मैं तो नहीं गाऊँगा।' मैं उन्हें समझाता था : "भाई, इसमें जो भ्रम है, वह उपासना का है।" यह वाद आखिर में मिटा। आखिर के दिनों में उनका एक पत्र आया। उसमें लिखा था कि 'आपको सुनकर अच्छा लगेगा कि जिस श्लोक के लिए मेरा पहले आक्षेप था, वही मुझे सबसे अधिक श्रेष्ठ श्लोक मालूम हो रहा है। वही श्लोक आज मुझे काम देता है।'

सारांश, भिन्न-भिन्न वृत्तियों के कारण कोई ज्ञान पर जोर देता है, तो कोई उपासना पर। ज्ञान पर जोर जो देता है, वह वस्तुनिष्ठ (रियलिस्टिक) अधिक होता है और जो उपासना पर जोर देता है, वह ध्येयनिष्ठ (आइडियलिस्टिक) अधिक होता है। इसीलिए उसमें कुछ भ्रम रहता है। इस दृष्टि से विचार-परिवर्तन या हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया में जो लोग या जो पक्ष हमारे कुछ नजदीक चले आते हैं, अथवा हम भी उनके जानते हुए या न जानते हुए उनके कुछ नजदीक चले जाते हैं, तो वैसी हालत में होनेवाले ऐक्य के अनुभव का हमें कभी खंडन न करना चाहिए। बल्कि उस ऐक्य या एकता को कबूल ही कर लेना चाहिए। हमें ऐसा काम करना चाहिए, जिससे वह एकता वास्तविक हो जाय। काम करने के बाद हम और भी नजदीक आयेंगे। तब विचारों में जो भेद होगा, उसकी अधिक सफाई होगी।

सत्य को खोलने की चिन्ता न करें

यह मैंने इसलिए कहा कि अहिंसा में विचार-परिवर्तन, हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया ही मुख्य अंग है। वह प्रक्रिया किस तरह प्रकट होती और किस तरह काम करती है, इसकी तरफ ध्यान देकर हम सत्य पर गलत जोर न दें। यह विश्वास रखें कि सत्य जब हम पहचानते हैं, तो वह कभी छिपेगा नहीं, खुलकर ही रहेगा। बिना बुद्धि खुले सत्य नहीं सूझता। हम वाणी से किसी को

कितना ही समझायें, हम चाहे जो करें, जब तक उसकी बुद्धि नहीं खुलती, तब तक मेरे लिए सत्य नहीं खुलेगा। इसलिए हम सत्य के खोलने की चिन्ता न करें। हाँ, सत्य को समझने की जरूर चिन्ता करें, जितना कि सामनेवाला ग्रहण करता जाय। मेरा खयाल है कि यह प्रक्रिया अहिंसा के लिए अधिक अनुकूल है। सत्य के लिए भी इसमें बाधा नहीं है, बल्कि अनुकूलता है।

धर्मपुरी (सर्वोदयपुरम्)
५-८-'५६

व्यापकता के साथ गहराई भी आवश्यक : ३२ :

आज विज्ञान ने एक चमत्कार कर दिया है। पुराने जमाने में जिन दो देशों के बीच समुद्र रहता, वे एक-दूसरे से अलग किये जाते थे। किन्तु आज वे इसी कारण आपस में जुट जाते हैं। आज अमेरिका के साथ चीन जुड़ा है, बीच में सिर्फ आठ हजार मील का समुद्र है। ऐसे देश एक-दूसरे को पड़ोसी मानते हैं। इसीलिए उनका एक-दूसरे से झगड़ा चलता है। वास्तव में यह शुभ लक्षण है; क्योंकि आज झगड़ा चलता है, तो कल प्रेम भी पैदा हो सकता है। किन्तु पहले न झगड़ा था और न प्रेम; क्योंकि एक-दूसरे का ज्ञान ही न था। इस तरह पुराने जमाने में जो चीज तोड़नेवाली होती थी, वही आज जोड़नेवाली सिद्ध हो रही है। कहना पड़ता है कि विज्ञान ने ही इतना आश्चर्यजनक अन्तर उपस्थित कर दिया है। इसीलिए अब वह उन्हें बिलकुल सह नहीं सकता, जिनका जीवन संकुचित हो। फिर वह संकुचितता भाषा की हो, कार्य की, धर्म की या प्रदेश की। सारांश, विज्ञान के इस जमाने में कोई भी संकुचित योजना टिक नहीं सकती। व्यापक विचार करना ही लोगों के लिए लाजिमी है।

गहराई की चिन्ता भी जरूरी

आज हमें सिर्फ इतनी ही चिन्ता रखनी है कि इस व्यापक विचार में हम

गहराई न खोयें। इतना करेंगे, तो यह जमाना भूदान के लिए बहुत ही अनुकूल है। एक बार 'आजाद हिन्द-सेना' के कुछ भाई 'पवनार आश्रम' में मुझसे मिलने आये। उन्होंने सलाम करते हुए कहा, 'जय हिन्द !' मुझे भी जवाब में सलाम करना चाहिए था, पर मैंने कहा : "जय हिन्द, जय दुनिया, जय हरि !" याने "जय हिन्द भी छोटा नारा साबित हो सकता है, ऐसा जमाना आ गया है—अब यह छह साल पुरानी बात हो गयी।" हमने आगे कहा : 'जय हिन्द' तभी सही है, जब कि उसके साथ 'जय दुनिया' भी जुड़ा रहे। अपने देश की जय में दूसरे देश की पराजय न हो। फिर सारी दुनिया इतनी पागल बन सकती है कि परमेश्वर को भी भूल जाय। इसीलिए उसके साथ 'जय हरि' भी जोड़ दिया। 'जय हरि' यह गहराई है, 'जय दुनिया' व्यापक और 'जय हिन्द' छोटी-सी चीज। जिसे आज हम सँभाल सकते हों, उससे भी छोटी चीज बोलें, तो नालायक साबित होंगे।

आत्मनिष्ठा चाहिए

अभी ढेबर भाई आये। हम उनका अभिनन्दन करते हैं, क्योंकि उन्होंने गुजरात और महाराष्ट्र का एक बड़ा द्विभाषाभाषी प्रदेश बनाया। वैसे कुल देश का अभिनन्दन करते हैं, क्योंकि यह निर्णय पार्लमेण्ट ने किया है।

हमें इसमें आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि इस जमाने में छोटी चीज चल ही नहीं सकती। किन्तु उसके साथ गहराई भी होनी चाहिए। व्यापक बनने के जोश में हम आत्मनिष्ठा खोयेंगे, तो उससे भी बड़ी चीज खोयेंगे। इसीलिए शास्त्रकार ने लिखा है कि हम दुनिया के लिए सब कुछ छोड़ सकते हैं, पर 'आत्मार्थं पृथिवीं त्यजेत्' आत्मा के लिए पृथ्वी (दुनिया) का भी त्याग करना चाहिए। हम व्यापक जरूर बनें, यह इस जमाने का धर्म है। किन्तु व्यापक बनने के साथ गहराई रहेगी, तभी वह (व्यापकता) निर्दोष बनी रहेगी। नहीं तो हम व्यापक परिमाण में व्यापक बुराइयाँ भी करने लगेंगे।

इसलिए विश्वव्यापकता रखते हुए भी ग्राम ग्राम की योजना आत्मनिष्ठ होनी चाहिए। आज तो 'अखिल भारत' का राज्य है। वह 'अखिल दुनिया का राज्य'

मैं नहीं करूँगा, मेरी चिंता आप नहीं करेंगे, बल्कि हम दोनों की चिंता यह बीच का अधिकारी-वर्ग करेगा। अगर हम इस बीच के अधिकारी-वर्ग को हटाना चाहते हैं, तो हमको एक-दूसरे की चिंता करना सीखना होगा और उनको कहना होगा कि हम आपस में मिल-जुलकर काम करेंगे। हमें आपकी जरूरत नहीं है। आप कृपा करके खेती करियेगा। वे कहेंगे कि हमारे पास खेती करने के लिए जमीन नहीं है, तो बाबा उनको भूमिदान में से भूमि देगा और कहेगा कि आइये, काम करिये और अधिकार पद से हटिये। यह जब आप लोग करेंगे, तब सुखी होंगे।

संतूर (सेलम)
४-८-'५६

मूर्ति-पूजा से मुक्त होने का तरीका : ३४ :

हमने सुना कि यहाँ पर कुछ लोगों ने राम के चित्र जलाये और कहा कि अब रंगनाथन् के जलायेंगे। इसका मतलब यह हुआ कि ये राम और रंगनाथन् तुम्हारे सिर पर सवार हैं, उन्होंने आपकी गर्दन पकड़ ली है। इससे आप राम के चेदे बनते हैं। अगर आपका मूर्ति-पूजा में विश्वास नहीं है, तो आपको उसकी उपेक्षा ही करनी चाहिए। मुसलमानों ने कितनी दफा मूर्तियाँ तोड़ीं, लेकिन उससे मूर्ति-पूजा मिटी नहीं, क्योंकि उसे मिटाने का वह तरीका नहीं है। आप मूर्ति पूजा को मुक्ति देना चाहते हैं, तो आपको ज्ञान-प्रचार करना होगा, मूर्ति से भी महान् कोई चीज लोगों के सामने रखनी होगी। जब वह भावना निर्माण होगी, तब मूर्ति-पूजा नहीं रहेगी। हम भी वही कर रहे हैं। हम भी मूर्ति-पूजा में विश्वास नहीं करते, परन्तु हमें मूर्ति-पूजा का द्वेष नहीं है। उसमें द्वेष करने जैसी कोई चीज है ही नहीं। हम लोगों को समझाते हैं कि आप मूर्ति की पूजा करते हैं, जो खाता नहीं, उसके सामने नैवेद्य चढ़ाते हैं और पास ही जो भूखा खड़ा है, उसे खिलाते नहीं। इस तरह करुणाहीन बनने से भक्ति नहीं होगी। लोग यह बात समझते हैं। इसके बदले में आप मूर्ति

तोड़ेंगे, तो लोगों की मूर्ति पर जो निष्ठा थी, वह और मजबूत होगी। इससे आपकी भी निष्ठा मजबूत होगी याने आपके पास भी दूसरा धंधा नहीं रहेगा। दोनों का धर्म मूर्ति के आसपास ही खड़ा है। यह मूर्ति पूजा मिटाने का रास्ता नहीं है। कोई भी विचार तब आता है, जब उससे उच्च विचार लोगों के सामने आता है।

रामकृष्ण परमहंस पहले मूर्ति-पूजा करते थे। बाद में उनका विचार बदला, दूसरा विचार सामने आया। तब वे मूर्ति के सामने बैठते थे, परंतु उनके हाथों से पूजा ही नहीं होती थी। उनके मन में विचार आता था कि यह मूर्ति परमेश्वर है, तो क्या यह फूल परमेश्वर नहीं है? यह चंदन परमेश्वर नहीं है? तो फिर यह फूल क्यों यहाँ से उठाकर वहाँ रखना चाहिए? जहाँ यह विचार आया, वहाँ पूजा खतम हो गयी। इसलिए छोटे विचार को मिटाना है, तो ऊँचे विचार को लाना चाहिए।

मूर्ति पूजा को हिन्दू-धर्म में बहुत ऊँचा स्थान नहीं दिया गया है। जैसे अक्षर सीखने के लिए पत्थरों का उपयोग करते हैं, वैसी ही यह मूर्ति-पूजा है। एक बार अक्षर पढ़ना आ जाय, तो बाद में पढ़ना-लिखना सीख जायेंगे। फिर पत्थरों की क्या जरूरत? फिर तो आप ग्रंथ पढ़ेंगे। मूर्ति-पूजा प्राइमरी स्कूल की पहली कक्षा है, एम० ए० की कक्षा नहीं। इसलिए ऊँची बात आ जायगी, तो वे पत्थर छोड़ देंगे। इसलिए मूर्तियाँ तोड़ने का कोई मतलब नहीं है। आप लोगों को किताब भी नहीं देते हैं और पत्थर भी फेंक देते हैं। यह पत्थर की मिसाल हिन्दू-धर्म के ग्रंथों में दी गयी है :

'अक्षरावगम-लब्धये यथा
स्थूल-वर्तुल-दृषत्-परिग्रहः॥
शुद्ध-बुद्ध-परिलब्धये तथा
दारु मृण्मय-शिलामयार्चनम्॥'

मुत्तमपट्टी (मेलम)
१०-८-'५६

होगा, तो हम कैसी योजना करेंगे ? हम कहते हैं कि सारी दुनिया का राज्य हो जाय, तो भी योजना यही होनी चाहिए कि हर गाँव का स्वतंत्र राज्य हो।

वेलामपट्टी (सेलम)
७-८-'५६

अधिकारी-वर्ग को हटाना है : ३२ :

प्रजा की जिम्मेवारी

आज तक कितने ही राज्य आये और गये। अब यहाँ नया राज्य आया है। यह लोगों का राज्य है। पहले राजाओं का राज्य था। उनमें कई अच्छे राजा भी होते थे, तो प्रजा को लगता था कि वे हमारे माता-पिता हैं और उनके राज्य में हम सुखी हैं। बीच में कोई खराब राजा आता था, तो लोग तंग आ जाते थे और भगवान् से प्रार्थना करते कि 'ऐसे राजाओं से छुड़ाओ।' इस तरह कभी खट्टा तो कभी मीठा अनुभव होता था, ऐसा खट्टा-मीठा खाते-खाते लोग बिलकुल हैरान हो गये। उन्होंने तय किया कि अब हमें खट्टा और मीठा नहीं चाहिए। तब राजा मिट गये और लोकसत्ता शुरू हुई। लोकसत्ता याने लोगों के नाम से चंद लोगों की सत्ता। पहले भी ऐसा ही था। पहले कोई एक राजा की सत्ता चलती थी, ऐसी बात नहीं। उसके सरदार, मंत्री, सेनापति और नौकर होते थे। सबको तनख्वाह मिलती थी और वे राज्य चलाते थे। आज भी वैसा ही है। पचासों लोग राज्य में काम करते हैं, तो राज्य चलता है। पहले जो पचासों लोग काम करते थे, वे राजा के नाम से करते थे। राजा अकेला भला-बुरा नहीं करता था, उसके साथी ही प्रजा का भला या बुरा काम करते थे। वैसे ही आज सैकड़ों लोग राज्य चलाते हैं, भला बुरा काम भी करते हैं, परंतु वे आप लोगों के नाम से करते हैं।

अधिकारी-वर्ग हटाया जाय

लाठीचार्ज और गोलाबारी की जायगी, बुनकरों का धंधा छुड़ाया जायगा

और कहा जायगा कि यह लोगों के हित के लिए, लोगों की मार्फत, लोगों की आशा से काम हो रहा है। पहले के राजा प्रजा की सेवा नहीं करते थे, सो नहीं, कुछ राजा करते भी थे। परंतु वे कब अच्छा-बुरा करेंगे, इसका कोई हिसाब नहीं था। इसलिए राजाओं की वह परंपरा हमने तोड़ डाली। अब हमें समझना होगा कि राजा लोगों ने हमारा उतना बुरा नहीं किया, जितना बीच के अधिकारी लोगों ने किया। ऊपर से तो लिखकर आया कि प्रजा बलवा कर रही है, इसलिए उसका बन्दोबस्त किया जाय। कितने सिर फोड़े जायँ, यह तो अधिकारी की अक्ल पर निर्भर करता है। अगर अधिकारी अक्लवाला हो, तो कम-से-कम बलप्रयोग से काम कर सकता है और अगर वह मूर्ख और क्रोधी है, तो जरूरत से बहुत ज्यादा अत्याचार कर देगा। इसलिए इतिहास में हम लोगों को जो तंग होना पड़ा, वह केवल राजाओं के कारण नहीं; बल्कि राजा और प्रजा के बीच जो अधिकारी रहते थे, उनके कारण यह सब होता था। इसीको नौकर-वर्ग कहते हैं। राजसत्ता में भी नौकर-वर्ग था और लोकसत्ता में भी नौकर-वर्ग कायम है। आप लोगों ने अब इतना समझ लिया कि जब तक राजा-महाराजाओं की चलेगी, तब तक हम सुखी नहीं हो सकेंगे, चाहे बीच में कोई अच्छा राजा आये। इसलिए हमने राजाओं को हटा दिया। अब यह समझना बाकी है कि जब तक अधिकारी को नहीं हटायेंगे, तब तक हम सुखी नहीं हो सकेंगे, चाहे बीच में कोई अच्छा अधिकारी भी रहा हो। सर्वोदय का सिद्धान्त है कि बीच का अधिकारी भी मिट जाय। यह हमारे ध्यान में आया, तो राजनीति में एक कदम आगे उठाया, ऐसा कहा जायगा। तो अब एक कदम और आगे बढ़ने की बात है। यह ऐसा कदम है कि उससे राजा भी खतम और राजा तथा हमारे बीच के अधिकारी भी खतम हो जायँगे। इसका नाम है सर्वोदय याने सबका भला, सब लोग अपनी शक्ति से अपने-आप अपना कार्य करें।

अधिकारी खेती करें

आज तो लोग आपस में मिलते-जुलते तक नहीं हैं। सबके परिवार अलग-अलग हैं। हम अपना जो काम करेंगे, उसका फलभोग करेंगे। आपकी चिंता

'रे' का 'रे-पन' मिटाना नहीं है, 'ग' का 'ग-पन' मिटाना नहीं है, लेकिन उन सबको मिलाकर एक राग बनाना है। भारत देश में हमको एक सुन्दर व्यापक राग, 'भारत-राग' बनाना है। अभी तक भिन्न-भिन्न प्रान्तों के अलग-अलग राग थे। कलिंग देश का 'कलंगडा राग' था, मालवीय देश का 'मालव राग' था, सौराष्ट्र देश का 'सोरठा राग' था, 'तेलंगी राग' तेलगाना का है और 'कानड़ा' कर्नाटक का राग है। संगीत जाननेवालों को यह सब मालूम ही होगा। हमारे देश में ऐसे भिन्न-भिन्न राग तो बहुत सुदर हैं, लेकिन हमको 'भारत-राग' बनाना है, यह 'भारत-राग' बनाने की कोशिश में ही ये अलग-अलग कन्नड़, कलिंग आदि राग बनाये गये। जैसे इधर का एक नाला, उधर का एक नाला, ऐसे अलग-अलग नाले मिलकर नदी बनती है, अलग-अलग नदियाँ मिलकर समुद्र बनता है, समुद्र बनाने के लिए ही नाले की नदियाँ बनीं और नदियों का समुद्र बना। वैसे हमको एक 'भारत राग' बनाना है।

तमिल की प्रतिष्ठा बढ़नी चाहिए

अब एक नवम्बर से नयी प्रान्त-रचना का आरंभ होगा, और यहाँ का कुल कारोबार तमिल भाषा में चलेगा और चलना चाहिए। यह बहुत जरूरी है कि तमिल भाषा की प्रतिष्ठा को यहाँ का हर व्यक्ति समझे। सन् १९४३ में जब हम वेलूर जेल में थे, तब की बात है। १३ साल पहले जिस दिन हमने जेल में कदम रखा, उसी दिन हमने तमिल सीखना शुरू किया। हमने बड़ी फजर जेल में प्रवेश किया था। प्रवेश करते ही जेलर ने हमसे आकर पूछा कि आपकी आवश्यकता क्या है? हमने कहा, फौरन आज के आज हमें तमिल का वर्ग शुरू करना है, इसलिए कोई तमिल मनुष्य मदद के लिए चाहिए। जेल में जो तमिल भाई थे, उनको यह देखकर आश्चर्य होता था कि यह शख्स तमिल भाषा क्यों सीखता है। क्या यह मद्रास में व्यापार करना चाहता है? मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता था कि लोग अपनी भाषा की प्रतिष्ठा महसूस नहीं करते हैं। जिस भाषा में दो हजार साल का पुराना साहित्य है, उसका उत्तम अध्ययन यहाँ के बच्चों को होना चाहिए। आज देहात और शहरों के बीच जो खाई

बन गयी है, वह अंग्रेजी विद्या के कारण ही। वह बिल्कुल मिट जानी चाहिए। किसी भी किसान का न्यायपत्र तमिल भाषा में न्यायाधीश को लिखना चाहिए। कॉलेज, हाईस्कूल की कुल तालीम तमिल भाषा के जरिये दी जानी चाहिए। इस तरह तमिल का गौरव बढ़ना चाहिए। इसीसे उसकी ताकत बनेगी। तमिल भाषा में आपको 'भारत-राग' गाना चाहिए। हरएक भाषावाले अपनी-अपनी भाषा में गायेंगे, लेकिन राग "भारत राग" गायेंगे।

भारतीयता कम-से-कम

हमको अपने देश में यह एक काम करना है, लेकिन यह हमारे कार्य का आरंभ है। हम भारतीय हैं, यह हमारा कम-से-कम गुण है, यह हमारा उत्तम गुण नहीं है। हमको इससे संकुचित नहीं बनना है। 'हम भारतीय हैं', इससे छोटी भाषा बोलने की हमको मनाई है। हमारे मन में भाषा यह होनी चाहिए कि हम विश्वमानव हैं, हम विश्व के नागरिक हैं, हमको विश्वकार्य करना है, हमको विश्वशान्ति की स्थापना करनी है। मनु ने यही लिखा था, "एतद्देश-प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।" इस देश के नागरिकों से पृथ्वी के नागरिकों को शिक्षा मिलेगी। मनु ने यह बहुत पहले लिखा था। जब इधर से उधर जाने में पचासों साल लग जाते थे, उस जमाने में भी वह भाषा में कोई संकोच नहीं रखता है। तब आज तो ऐसी तैयारियाँ हो रही हैं कि पृथ्वी जितनी गति से दौड़ रही है, उससे भी ज्यादा गति से दौड़नेवाले हवाई जहाज की शोध हो रही है। पृथ्वी २४ घण्टे में चौबीस हजार मील चलती है। उसकी परिधि चौबीस हजार मील की है और वह दिन-भर में इतना घूम लेती है। अब कोशिश यह हो रही है कि हवाई जहाज की गति घंटे में १५०० मील की हो। उसका परिणाम यह होगा कि आज हम यहाँ से दोपहर में १२ बजे निकलेंगे, तो इंग्लैंड में आज की दोपहर को ११ बजे पहुँचेंगे, ऐसा चमत्कार होगा। दूसरे दिन के ११ बजे नहीं, उसी दिन के ११ बजे पहुँचेंगे। १२ बजे निकलेंगे तो १२ बजकर १० मिनट या ५ मिनट पहुँचे, तब तो हम कुछ समझ सकते हैं, लेकिन उसी दिन दोपहर में ११ बजे

पहुँचना आश्चर्य जैसा लगता है। परन्तु जब पृथ्वी की गति से अधिक गति हवाई जहाज की होगी, तब यह चमत्कार होगा। पुराने दिनों में तो उसकी कल्पना भी नहीं थी, फिर भी वह मनु कह रहा है कि इस देश के मानवों से सारी पृथ्वी की सेवा होगी। भारत को आजादी मिली है, इसलिए कश्मीर से कन्याकुमारी तक सारे समाज को एकरस करने का एक बड़ा मौका हमें मिला है। परन्तु हम विश्वमानव बनेंगे और विश्वशान्ति के लिए काम करेंगे, तभी हमारा कार्य पूर्ण होगा। 'इसीलिए हम भारतीय हैं', यह हमारा छोटा-सा गुण है। इससे छोटी चीज हम बोल ही नहीं सकते। इससे बड़ी चीज हम बोल सकते हैं और हमको बोलना चाहिए।

व्यापक चिन्तन विशिष्ट सेवा

आजकल हम एशियाई हैं, यह बोला जाता है। ये सब टुकड़े बिलकुल निकम्मे हैं। भारत के बाहर नजर दौड़ायेंगे, तो हम दुनिया के हैं, ऐसा ही बोला जाना चाहिए। उसमें बीच में एशियाई आयेगा, तो झगड़े शुरू हो जायेंगे। उसको हम खतरा समझते हैं। हमारी राय में हम भारतीय हैं और विश्वमानव हैं, इतना व्यापक खयाल हमें अपने लिए रहना चाहिए। कुल दुनिया के लिए हमारी सेवा उपस्थित होनी चाहिए। आज के यहाँ के विद्यार्थियों के सामने सारी दुनिया का क्षेत्र उपस्थित होना चाहिए। वह भवानी में बैठा है, तो भवानी को दुनिया का मध्यबिंदु समझे और उसके सामने सारी दुनिया का चित्र होना चाहिए। उसको अभ्यास करना चाहिए कि भवानी से जापान, मास्को, न्यूयार्क कितनी दूर है। इस तरह उसके सामने कुल दुनिया होनी चाहिए। सेवा के लिए छोटा क्षेत्र चाहिए, चिंतन के लिए व्यापकता चाहिए, अगर अपना चिंतन हमने छोटा बनाया, तो हम खतरे में हैं। अगर हम सेवा को व्यापक बनाने की कोशिश करेंगे, तो हमारे हाथ से सेवा ही नहीं होगी। इधर से उधर दौड़ने में ही हमारा समय चला जायगा। आज देहलीवाले सारे भारत की सेवा करते हैं, इसलिए हवाई जहाज से इधर से उधर दौड़ने के सिवा और कोई सेवा नहीं होती है। अभी तो केवल भारत एक है, लेकिन जब विश्व

एक होगा, तब तो और तमाशा होगा। उस समय कामश्चाटका सेन्टर होगा और वहाँ पर जो *व्यवस्थापक होगा, वह सारी दुनिया में चारों खंडों में दौड़ता* रहेगा। यह सेवा करने का ढंग नहीं है। सेवा करने के लिए आसपास का छोटा क्षेत्र चाहिए और चिंतन के लिए व्यापक दुनिया चाहिए। चिंतन छोटा हो गया, तो हम संकुचित हो जायेंगे और अगर सेवा व्यापक बनाने जायेंगे, तो निष्फल हो जायेंगे। इसलिए भवानीवालों को सेवा भवानी की ही करनी होगी, लेकिन चिंतन सारी दुनिया के लिए व्यापक करना होगा। इसलिए आप भवानी की ऐसे ढंग से सेवा नहीं करेंगे, जिससे भवानी के साथ टक्कर आये, क्योंकि उसका *चिंतन व्यापक होगा, इसलिए वह टक्कर नहीं आयेगी।*

हमारा पाँव कहाँ है और आँख कहाँ है? यह देखो। मेरी आँख आसमान के चंद्र को देखती है, इतनी व्यापक आँख भगवान् ने दी है, लेकिन पाँव तो भवानी से कोयम्बतूर जायगा और कोयम्बतूर से *त्रिचनापल्ली जायगा। वह* चंद्र पर नहीं जायगा। हम चंद्र को सिर्फ देख ही सकेंगे। आँख की व्यापकता और पाँव की सेवावृत्ति। पाँव के समान नजदीक के क्षेत्र में काम करना होगा और आँख के समान व्यापक क्षेत्र में चिंतन करना होगा। इस तरह दो काम करने होंगे। सेवा करते हुए तमिल भाषा की सेवा और उसीके जरिये भारत की और दुनिया की सेवा, और चिंतन करते समय कुल दुनिया का चिंतन। ऐसी युक्ति जब सधेगी, तभी हम वैज्ञानिक जमाने में टिकेंगे, नहीं तो टिक नहीं सकेंगे। उसीको दो पक्ष कहते हैं—'व्यापक चिंतनम् विशिष्ट सेवा।'

भूदान की ग्राम-योजना

हम भूदान-यज्ञ के जरिये, गाँव-गाँव की सेवा करना चाहते हैं। हर गाँव की कुल जमीन गाँव में बँटनी चाहिए, हरएक गाँव में ग्रामोद्योग होने चाहिए, हरएक गाँव में अपने लिए कौन-सा माल चाहिए, उसकी योजना गाँव में होनी चाहिए। हमारे गाँव में कौन-सा औजार चलना चाहिए, उसका निर्णय भी *हमारा गाँव करेगा। इस तरह भूदान में जहाँ तक सेवा का सवाल है, वहाँ तक* गाँव-गाँव के लिए सोचते हैं। हमारा हरएक गाँव अपने लिए चिंतन करेगा और

अपना कार्य अपने ढंग से करेगा। आज तो ये देहलीवाले सारे हिन्दुस्तान के पाँच लाख देहातों के लिए प्लानिंग करते हैं। वे यहाँ तक कहते हैं कि तुमको फलाना-फलाना करघा चलाना पड़ेगा और उसको बिजली देनी पड़ेगी। अगर हाथ-करघे पर चलाओगे, तो तुमको लाइसेन्स लेना पड़ेगा। जैसे शराब की दूकान रखने के लिए लाइसेन्स चाहिए। मैं उसकी टीका करना नहीं चाहता। उनकी भी एक दृष्टि है, वे यंत्रीकरण के खयाल से सोचते हैं, उससे कुछ लोग बेकार हो जायेंगे तो होने दो, लेकिन कुल प्रगति होनी चाहिए। प्रगति के खयाल में जो फिटेस्ट हैं, वे जियेंगे और जो अनफिटेस्ट हैं, वे जायेंगे। उसको अंग्रेजी में "सर्वाइवल ऑफ दि फिटेस्ट" कहते हैं। यह एक स्वतंत्र सिद्धान्त बनाया गया है। उसके आधार पर दुनियाभर में कुल योजना बनायी जा रही है, लेकिन दुःख की बात है कि उन लोगों की युद्ध-योजना में सर्वाइवल ऑफ दि अनफिटेस्ट होता है। लड़ाई में २५ साल के जवानों को पहले मरना चाहिए। अगर तिस पर भी काम नहीं चला, तो २४ साल के लड़के चाहिए। इतने से भी अगर युद्ध-देवता प्रसन्न न हुई, तो १८ सालवालों को मरने के लिए भरती करेंगे, और जियेंगे कौन? ६० साल का विनोबा, याने जीने के लिए जो अनफिटेस्ट है, वह ज्यादा-से-ज्यादा जियेगा और जो जीने के लिए फिट है, वह मरेगा। ऐसी तो उनकी युद्ध-योजना है, जिसमें सर्वाइवल ऑफ दि अनफिटेस्ट है।

भूदान का विश्वव्यापी चिंतन

अपने गाँव की योजना हम बनायेंगे, देहलीवाले नहीं बनायेंगे। इसका अर्थ यह है कि हम नजदीकवाले सेवा की वृत्ति से सोचेंगे, परंतु ऐसे ढंग से काम नहीं करेंगे कि दूसरे लोगों को तकलीफ हो, क्योंकि हमारा चिंतन व्यापक होगा। 'सर्वेपि सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःखभाग् भवेत्।' दुनिया के सब लोग सुखी हों, यह हम चाहेंगे। लेकिन कोशिश तो आसपास के लोगों को सुखी बनाने की करेंगे। इस प्रयत्न में दूसरे लोगों को कोई तकलीफ न हो। भूदान-यज्ञ में एक ओर गाँव की भूमि-समस्या का हल तो एक छोटी चीज है, पर उसमें बड़ी चीज यह है कि जमीन की

मालकियत ही मिट जाय। किसी देश की किसी देश पर मालकियत नहीं होनी चाहिए। अमेरिका की जमीन पर अमेरिका की मालकियत का हक नहीं है, भारत की जमीन पर भारत की मालकियत का हक नहीं है। जमीन भगवान् की है। आज अमेरिका में बहुत जमीन है, लेकिन वहाँ आने नहीं देते। अगर वे किसीको आने देते, तो चीन-जापानवाले चाहेंगे, तो जा सकेंगे। अमेरिका के लोग अंदर के भाग में जाते ही नहीं हैं, क्योंकि गर्मी बहुत है, इसलिए वे समुद्र के किनारे-किनारे रहते हैं। अंदर बहुत जमीन पड़ी है, लेकिन किसीको अंदर जाने नहीं देते। एक आस्ट्रेलियन से हमारी बात हो रही थी। वह कहता था कि दूसरे लोगों को आने देने में संस्कृति का विषय आता है। योरप के लोगों को आने देने में हम राजी हैं, उनको संस्कृति का विचार क्यों आया? भारत की यही विशेषता है। भारत ने दूसरे-तीसरे सब लोगों को यहाँ आने का मौका और इजाजत दी। उनको रोकने के बदले उनकी जातियाँ बना लीं, क्योंकि उनकी संस्कृति अलग-अलग थी। वे जातियाँ आज हमें तकलीफ दे रही हैं, लेकिन वे जब बनायी गयीं, तब सहूलियत के लिए बनायी गयी थीं। दूसरे को अपने देश में आने ही न देने के बदले आने दिया और उनकी जातियाँ बनायीं। तुम अपने ढंग से खाओ-पीओ, हम अपने ढंग से खायेंगे-पीयेंगे। इस तरह की व्यवस्था बना ली। भारत का विचार इतना आगे बढ़ा हुआ है। अब जाति की जरूरत नहीं है। वह तकलीफ देनेवाली है, इसलिए इसको हम मिटा देना चाहते हैं। परंतु जब बनायी थी, तब उसके साथ एक गौरव की बात भी है। अमेरिका दूसरे को आने ही नहीं देना चाहता है। हम चाहते हैं कि यह नहीं चलेगा। यह ईश्वर-योजना के विरुद्ध है। भूदान-यज्ञ में मालकियत मिटाने जा रहे हैं, उसका अर्थ यह है कि सारे मानवों को कुल जमीन का हक है। यह भूदान का व्यापक विचार हुआ। यह है भूदान का चिंतन।

भूदान का सेवा-कार्य गाँव में चलता है। गाँव के कुल भूमिहीनों को जमीन मिलनी चाहिए। गाँव के सब लोगों को एक परिवार के समान रहना चाहिए। कुल जमीन गाँव की बननी चाहिए। यह ग्रामदान इत्यादि विचार हमारा सेवा

का विचार है। सेवा के लिए छोटा क्षेत्र, चिंतन के लिए व्यापक क्षेत्र। इस तरह जब भारत के कुल गाँवों की जमीन बँट जायगी, तब भारत की नैतिक ताकत बढ़ेगी। एक बड़ा भारी मसला हमने शान्ति से और प्रेम से हल किया है। इतना हमने किया, तो हमारी नैतिक ताकत खूब बढ़ेगी। फिर उसके आधार से आस्ट्रेलिया, ब्राजिल हम सबका है, यह साबित करेंगे।

जापान को भूदान का आकर्षण

जापान के लोगों में भूदान के प्रति प्रेम पैदा हुआ है। जापान में भूदान के लिए एक मासिकपत्रिका भी निकली है, जिसमें हिन्दुस्तान की खबरें आती हैं। भूदान का आंदोलन जापान में चलनेवाला नहीं है; क्योंकि वहाँ की जमीन बँट गयी है। परन्तु भूदान का व्यापक विचार है कि जापान के लोग आस्ट्रेलिया जा सकते हैं, उसका उनको आकर्षण है। इसलिए जापान के लोग समझते हैं कि बाबा ने हमारा बचाव किया, इसलिए भूदान का जो व्यापक विचार है, वह सारी दुनिया को प्रिय होनेवाला है। और भूदान का विशिष्ट विचार गाँव की समस्या हल करनेवाला है।

भवानी (कोयम्बतूर)
२२-८-'५६

आप सब लोगों के चुने हुए, उनके विश्वासपात्र सेवक हैं और आप ऐसी संस्था को आधार दे रहे हैं कि जिसने हिंदुस्तान को आजादी दिलाने का काम किया। लेकिन यह तो भूतकाल का इतिहास हो गया। कोई भी शख्स अपने पूर्वजों की कमाई पर नहीं रह सकता। पूर्वजों के नाम का उसे बल मिलता है, परंतु उसे खुद भी अपना बल दिखाना चाहिए।

गांधीजी ने सच्चे आस्तिकों और नास्तिकों को एक किया

कोई नहीं भूल सकता कि हिंदुस्तान ने आजादी हासिल की, वह अपने ढंग से की और दुनिया में वह एक विशेष घटना है। महात्मा गांधी का नेतृत्व भारत को मिला। यह गांधीजी का भी भाग्य था और भारत का भी भाग्य था। भारतीय संस्कृति में जो ताकत थी, उसे प्रकट करने का मौका गांधीजी को मिला, और उन्होंने स्वराज्य-प्राप्ति के काम को भी मानव-सेवा का रूप दिया। वह केवल एक राजनैतिक आंदोलन नहीं रहा। उसमें ऐसे असंख्य पुरुषों ने हिस्सा लिया, जो भूतदया-परायण थे। उनके दिमाग में कोई भेद नहीं थे, क्योंकि उन्होंने वहाँ राउंड-टेबल कान्फरेन्स में यह नहीं कहा कि स्वराज्य हमें अपने अभिमान के लिए चाहिए। बल्कि यह कहा कि हमें स्वराज्य चाहिए, क्योंकि हम उसके बिना दरिद्रनारायण की सेवा नहीं कर सकते। दरिद्रनारायण शब्द से उन्होंने अच्छे आस्तिकों का और अच्छे नास्तिकों का भेद मिटा दिया। अच्छे नास्तिक सज्जन होते हैं। अपने सामने प्रत्यक्ष जो सेवा है, वह छोड़कर वे हवाई बातें करना नहीं चाहते। इसीलिए वे नास्तिक कहलाते हैं। ऐसे नास्तिकों में बहुत सज्जन हो गये हैं। सच्चे आस्तिक वे होते हैं, जो मानव-हृदय पर विश्वास रखते हैं; मानव हृदय में एक ज्योति है और उस आधार पर से हम सब प्रकार के अंधकार को मिटा सकते हैं। एक तो जन-सेवा का विचार है और दूसरा हृदय-परिवर्तन का विचार है। सच्ची नास्तिकता वह है, जिसके महामुनि कपिल प्रतिनिधि

थे, यानी जन-सेवा की वृत्ति। वे कहते हैं, साक्षात् सेवा में हम लगे रहेंगे, इसलिए इससे भिन्न बातें हम नहीं सोचेंगे। दूसरी है हृदय-परिवर्तन की वृत्ति। इसीको भक्ति-मार्ग कहते हैं। वह मार्ग कहता है, हम मनुष्य की सेवा जरूर करेंगे; परंतु जिस भूमिका में वे आज हैं, उसीमें रखकर सेवा नहीं करेंगे। उनके हृदय में हम अपनी सेवा से परिवर्तन लायेंगे। याने उनके हृदय में परिवर्तन लाना हमारी सेवा का एक अंग है। इसलिए हमें नारायण का स्पर्श करना होगा। यह नारायण-स्पर्श जिस सेवा को होगा, उस सेवा में हृदय-परिवर्तन की ताकत आयेगी। दरिद्रनारायण शब्द से ये दोनों चीजें जुड़ जाती हैं।

सरकार सच्चे अर्थ में नास्तिक

लोग बीड़ी पीते हैं। उन्हें बीड़ी सप्लाई करना सेवा का अंग है। परन्तु उन्हें उससे मुक्त करना भी सेवा का एक अंग है। सरकार अक्सर पहली भूमिका में रहती है। याने आज जनता जिस स्थिति में है, उस स्थिति में उसकी सेवा करना सरकार का काम है। सरकार नेता नहीं है, जनसेवक है। यह अलग बात है कि वहाँ कुछ नेताओं की योग्यता के लोग भी हैं, फिर भी वे वहाँ सेवक हैं। जिस दिन आपने पं० नेहरू को चुनकर अपना प्रधान-मंत्री बनाया, उसी दिन आपने उनके नेतृत्व का सेवकत्व में परिवर्तन कर दिया। वे आपके सेवक हैं, प्रतिनिधि हैं। आप अगर उन्हें चुनेंगे, तो वे उस स्थान में रहेंगे, आप नहीं चुनेंगे, तो वे वहाँ नहीं रहेंगे। अपने माँ-बाप को आपने चुना नहीं, वे स्वयंभू हैं। वे आपको तालीम देंगे, आपके हृदय में परिवर्तन लायेंगे। सरकार आपकी सेवा करेगी, इसलिए वह सच्चे अर्थ में प्रायः नास्तिक होती है। मैंने 'सच्चे अर्थ में' कहा, याने अच्छे अर्थ में वह नास्तिक है। नास्तिकों में भी कुछ अच्छे नास्तिक और कुछ बुरे नास्तिक होते हैं, आस्तिकों में भी कुछ अच्छे आस्तिक और कुछ बुरे आस्तिक होते हैं। सरकार सेवा का काम ले सकती है, लेकिन वह नारायण-स्पर्श नहीं जानती। हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया सरकार से नहीं बन सकती, वह हृदय-परिवर्तन नहीं करेगी। क्योंकि

आपका आज का जो हृदय है, उसकी यह प्रतिनिधि है। इसीलिए यह 'सेक्युलर' कहलाती है।

गांधीजी ने दरिद्रनारायण शब्द से अच्छे आस्तिकों और अच्छे नास्तिकों को एक प्लैटफार्म पर बैठा दिया। उन्होंने सेवा को ही भक्ति का रूप दे दिया। इसलिए हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया और सेवा की प्रक्रिया एक हो गयी।

सेवा और हृदय-परिवर्तन

भूदान से जमीन बँटेगी, तो उस प्रक्रिया में गरीबों की सेवा होगी और भूमि का बँटवारा करना ही काम नहीं होगा। उसके अलावा व्यापक प्रमाण में समाज के हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया होगी। क्योंकि इसमें लोग अपने हाथों से अपनी चीज का एक हिस्सा हक समझकर दूसरों को देने के लिए प्रवृत्त किये गये। इसीको हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया कहते हैं। सरकार के जरिये अगर भूमि बँटेगी, आप जानते हैं कि अभी वह नहीं बँट रही है, तो उसके लिए कितना समय लगेगा, मालूम नहीं। परन्तु मान लीजिये कि बँटेगी, तो एक सेवा मात्र होगी, हृदय-परिवर्तन नहीं होगा। बिना हृदय-परिवर्तन के जो सेवा होती है, वह हमेशा निश्चित ही सेवा होती है, ऐसा नहीं कह सकते। जैसे मैंने कहा कि बीड़ी पीनेवाले को बीड़ी सप्लाई करना, यह निश्चित ही सेवा है, ऐसा नहीं। हम किसीसे जमीन माँगकर दूसरों को दिलवायेंगे, इतना ही नहीं; बल्कि देनेवाले से कहेंगे, तुमने जमीन तो दी, लेकिन उसका काश्त के लिए गरीब को और मदद दोगे कि नहीं ? इस साल के लिए बीज दे दो, तो वह देगा। सरकार यह नहीं कर सकती। सरकार जमीन लेगी, तो उसे मुआवजा देना पड़ता है। बीज माँगना, बैल माँगना यह सारी प्रक्रिया भूदान में है, क्योंकि इसमें सिर्फ सेवा की प्रक्रिया नहीं है, हृदय-परिवर्तनपूर्वक सेवा है।

हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया और कांग्रेस

यह सारा लंबा प्रस्तावनारूप व्याख्यान इसलिए दिया कि आप कांग्रेसवाले डबल कैपैसिटी में हैं। आप सरकारी सेवा-वृत्ति को भी रिप्रेजेंट करते हैं और कांग्रेसमैन की हैसियत से आप हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया को भी

मानते हैं। उसके भी आप प्रतिनिधि हैं। यहाँ मैं अपना अभिप्राय स्पष्ट कह देना चाहता हूँ। जो कांग्रेसमैन हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया में विश्वास नहीं करता, वह कांग्रेसमैन कहलाने लायक नहीं है। अगर इसमें किसीको शक है और कोई दावा करता है कि मैं कांग्रेसमैन हूँ, परंतु हृदय-परिवर्तन को नहीं मानता, तो उसके साथ मैं चर्चा करने के लिए तैयार हूँ। कांग्रेस के हाथ में आज राज्य है। इस वास्ते आज की हालत में केवल सेवा करने की जिम्मेवारी भी कांग्रेस पर है। परंतु उसके साथ-साथ हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया से जनता को आगे ले जाने की भी जिम्मेवारी कांग्रेस की है। यह दूसरी बात कांग्रेस से नहीं होगी। तब कांग्रेस केवल चुनाव लड़नेवाली रहेगी। परंतु कांग्रेस-मैन ऐसा नहीं समझता कि कांग्रेस चुनाव लड़नेवाली पार्टी है, क्योंकि कांग्रेस का सारा इतिहास ही भिन्न है। इसलिए पं० नेहरू ने बार-बार कहा है कि 'कांग्रेस एक सिमेंटिंग फैक्टर है।' मैं सुप्रीम सिमेंटिंग फैक्टर हूँ, क्योंकि मैं किसी पक्ष में नहीं हूँ। यह तो मेरा निगेटिव वर्णन हो गया। मेरा पॉजिटिव वर्णन यह है कि सब पक्षों में जो सज्जन हैं, उन पर मेरा प्रेम है। आज मुझे कांग्रेसवालों ने बुलाया और यहाँ बोलने का मौका दिया। कल अगर कम्युनिस्ट भी ऐसी कान्फरेन्स करें और मुझे बुलायें, तो मैं जरूर जाऊँगा और प्रेम से बात करूँगा। इसलिए मैं अपने को सुप्रीम फैक्टर मानता हूँ। यह मेरा व्यक्ति-गत वर्णन नहीं है। जो शख्स ऐसा काम उठाता है, जिससे कि हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया से क्रांति होगी, वह एक देश के लिए नहीं, बल्कि सब देशों के लिए सिमेंटिंग फैक्टर होगा। परन्तु कांग्रेस का भी दावा है कि वह सिमेंटिंग फैक्टर है और इसे मानना होगा, क्योंकि आप हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया को मानते हैं। अगर कांग्रेसमैन नहीं मानता होगा, तो वह सिमेंटिंग फैक्टर होने का दावा नहीं कर सकेगा। इसलिए अच्छे लोगों को चुनकर राज्य में भेजना, यह आपकी जितनी जिम्मेवारी है, उतनी ही जिम्मेवारी होगी भूदान जैसे काम में शरीक होना। मैं जानता हूँ कि इस बात पर मुझे यहाँ बहुत जोर नहीं देना चाहिए। क्योंकि आप यह बात मानते हैं, इसलिए आपने मुझे यहाँ बोलने का मौका दिया है।

मंत्र से जीवन में रस आता है

देश का यह बहुत बड़ा भाग्य है कि जहाँ एक मंत्र समाप्त होता है, वहाँ दूसरा मंत्र सामने आता है। *जिस देश के सामने मंत्र नहीं होता, उस देश के जीवन में रस नहीं रहता।* हमें ३०-४० साल लगातार स्वराज्य का मंत्र मिला था और उस मंत्र के लिए जितना त्याग हो सकता था, उतना करने की कोशिश की गयी। उससे समाज के जीवन में उत्साह आया, लोक-जीवन रसमय बना। जहाँ एक मंत्र की सिद्धि हुई, वहाँ साधक अक्सर मुक्त बनता है, सिद्धि के भोग में पड़ता है। यह उसके लिए खतरा होता है। उसकी प्रगति रुक जाती है। इसलिए एक मंत्र की सिद्धि पर ध्येय की सिद्धि हुई, वहाँ फौरन दूसरा मंत्र, दूसरा ध्येय सामने आता है। वहाँ फौरन स्फूर्ति आती है और कावेरी नदी के प्रवाह के समान जनता का जीवन प्रवाहमय बनता है। भारत का यह बहुत बड़ा भाग्य है कि 'स्वराज्य' के बाद 'सर्वोदय' का मंत्र मिला। इससे बेहतर शब्द हमारी भाषा में नहीं है। यह एक बड़ा भारी मंत्र हमें मिला है। इस मंत्र की पूर्ति में हमें लगना चाहिए। इससे समाज-जीवन में नया त्याग-उत्साह, नयी प्रेरणा आयेगी। अब इस काम में जो त्याग करना होगा, वह दूसरे ढंग का और अधिक श्रेष्ठ होगा।

स्वराज्य-प्राप्ति में लोभ था

दूसरों से कोई चीज प्राप्त करनी है, लेनी है—ऐसी लेने की बात जहाँ होती है, वहाँ खूब उत्साह आता है। इसलिए हमने कई मर्तबा वर्णन किया है कि स्वराज्य का काम निगेटिव था। याने उसमें जो त्याग का अंश था, वह बहुत छोटा था। आज जो त्याग करना होगा, वह पाजिटिव है। उस त्याग में ज्यादा बल की जरूरत थी। अंग्रेजों ने हमारी यह कमजोरी देख ली। पहले-पहले तो वे हमें जेल में डालते थे। लोग जेल में जाकर निश्चिन्त होते थे। उन्होंने देखा कि हम लोगों के लिए जेल में जाना बहुत आसान हो गया है, तब उन्होंने जुर्माना शुरू किया। घर-घर में जाकर वे जुर्माने वसूल करने लगे। *उसमें हमारे लोग कमजोर साबित हुए। क्योंकि उसमें*

आर्थिक त्याग था, लोभ छोड़ने की बात थी। उस जमाने का अनुभव जिन्हें है, उन्हें इस बात का भान है। स्वराज्य-प्राप्ति में लोभ को एक प्रकार से मदद ही मिलती थी। उसके लिए लाठी खाना, त्याग करना, जेल जाना पड़ता था। लेकिन उसके पीछे जो लोभ था, वह अच्छा था, खराब नहीं था। लेकिन था वह लोभ ही। जो बड़े-बड़े लोग जेल में जाते थे, उनमें और सरकार में एक बात में मतैक्य था। वे यह भी समझते थे कि आज हम जेल में हैं, परन्तु कल राजसिंहासन पर बैठेंगे। सरकार भी यही समझती थी कि इनको आज जेल में डाला है, परंतु कल इन्हींके हाथ में सत्ता देनी होगी, राजसिंहासन पर बैठाना पड़ेगा। इसलिए वह त्याग ही था, परंतु उसके पीछे लोभ था। जहाँ लोभ छोड़ने की बात आती है, वहाँ मामला कठिन होता है। लोभ आदमी का सबसे बड़ा शत्रु है।

उदार और कंजूस पार्टी

अब ऊपर से कांग्रेस के अध्यक्ष या सेक्रेटरी लिखते होंगे कि 'भूदान के काम में कुछ योग दो।' आदेश-पत्र पी० सी० सी० के पास जाता होगा और उसकी एक-एक कापी हर जिले के कांग्रेस-आफिस में जाती है। इस तरह एक पत्रक में से दूसरा पत्रक निकलता है, पर 'दानपत्र' नहीं निकलता। क्योंकि इसमें अपना व्यक्तिगत दिये बगैर लोगों के पास माँगने जायँ कैसे? यह बहुत बड़ी कठिनाई लोगों के सामने है। हम बिहार में घूमते थे, तब जयप्रकाश बाबू अस्वास्थ्य के कारण पूना में डॉक्टर के पास थे। उन्होंने एक पत्र लिखा था कि "आप घूम रहे हैं। आपकी मदद में मैं नहीं जा सकता। लेकिन मैंने पार्टी को आदेश दे दिया है कि वह काम में लगे।" फिर हमने जयप्रकाशजी को एक पत्र लिखा कि 'आप समझते हैं कि बिहार में एक कांग्रेस पार्टी और दूसरी पी० एस० पी० है। लेकिन हमारा अनुभव दूसरा है। यहाँ न कांग्रेस है, न पी० एस० पी०। यहाँ दो पार्टियाँ हैं। एक है उदार पार्टी और दूसरी है कंजूस पार्टी। और यह उदार और यह कंजूस कांग्रेस में भी घुसे हैं। सोशलिस्ट पार्टी में भी घुसे हैं और कम्युनिस्टों में भी घुसे हैं।

एक ही शब्द 'करुणा'

तात्पर्य, इस आंदोलन में वह त्याग करना पड़ेगा, जो त्याग स्वराज्य-आंदोलन में नहीं करना पड़ा। पार्लमेन्टरी हाथ में लेनी है, ऐसी बात होती है, तो कैसा उत्साह आता है ! गोवा में आंदोलन करना है, तो कैसा उत्साह आता है ! क्योंकि इसमें प्राप्त करना है। यह बात बुरी नहीं है, अच्छी है, परंतु प्राप्ति की है। भूदान में देना है, इसलिए हमने कांग्रेस पार्टी, सोशलिस्ट आदि से अपील करना छोड़ दिया है। क्योंकि उनके मुख्य लोगों की हमारे प्रति सहानुभूति है और हमें उन पर दया आती है। दया इसलिए कि उनके जो सारे लोग हैं, वे उनके पत्रक से प्रेरित हों, ऐसी मनःस्थिति नहीं है। इस कार्य में उसी मनुष्य को प्रेरणा होगी, जिसके अन्तर में करुणा होगी। किसी संस्था की आज्ञा से यह काम नहीं होगा, अन्तःप्रेरणा से होगा। भगवान् बुद्ध के पिता ने उन्हें सौख्य में रखा था। उन्हें किसी दुःख का दर्शन न हो, ऐसा इन्तजाम किया था। तिस पर भी उन्हें दुःख का दर्शन हुआ। उन्होंने कहा कि मुझे बिल्कुल ही दुःख का दर्शन न हो, ऐसी कोशिश करने पर भी मुझे इतना दुःख दीखता है, तो दुनिया में कितना दुःख होगा। इसलिए उन्होंने राज्य का परित्याग करके दुःख-निवारण का काम किया। उसके वास्ते ध्यान किया और उपवास किये। चालीस दिन के उपवास के अन्त में उन्होंने आँख खोलकर देखा। उन्हें चारों ओर प्रकाश फैला हुआ दीखा, चारों ओर करुणा फैली है, ऐसा दीखा—ऐसा वर्णन मिलता है। हम आजकल भक्ति-साहित्य पढ़ते हैं। उसमें भी हम यही चीज देखते हैं। हमने पढ़ा कि 'ऐसी करुणा जहाँ पैदा होगी, जैसे बाढ़ आयी हो'। आपके लिए हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि जिस संस्था को महात्मा गांधी का नेतृत्व मिला, उस संस्था के लोगों के हृदय में करुणा भर दे। बिना करुणा के भूदान जैसा काम नहीं हो सकता। इसमें अपना अंश देना पड़ता है। यह इसकी एक रुकावट है। लेकिन इतनी ही रुकावट नहीं है। इसमें गाँव-गाँव में घूमना पड़ता है, धूप में, बारिश में, ठंड में घूमना पड़ेगा, सतत काम करना होगा। यह भी तपस्या करनी होगी। लोभ का त्याग करना पड़ेगा।

यह सारा करुणा के बिना नहीं होगा। बाबा पाँच साल से घूम रहा है। उसे थकान नहीं आती है, क्योंकि परमेश्वर ने उसे प्रेरणा दी है। वह समझता है कि दिनभर उसे जो दान मिलता है, उससे उसका दिन सार्थक होता है। उसमें उधार की बात नहीं है। नकद की बात है। खा लिया और तुरंत संतोष हुआ, आज खाया और मरने के बाद संतोष हुआ, ऐसा नहीं। इस कार्य का आनंद उसी क्षण महसूस होता है। इसलिए आपके सामने बोलने का मौका मिला है, तो एक ही शब्द रखना चाहता हूँ : 'दान' नहीं, 'करुणा'।

—तमिलनाड के कांग्रेस-कार्यकर्ताओं के बीच

भवानी (कोइम्बतूर)
२२-८-'५६

हम भक्ति की सेना के सिपाही बनें : ३७ :

भक्तों की राह पर

हिंदुस्तान के हर प्रान्त में और हर भाषा में भक्तों की नामावली सुनते हैं, क्योंकि हिंदुस्तान की सब भाषाओं का कुछ-न-कुछ अध्ययन करने का मौका हमें मिला है। जैसे शिव-सहस्रनाम या विष्णु-सहस्रनाम गाये जाते हैं, वैसे ही भक्तों के भी सहस्रनाम गाये जा सकते हैं। यही हिंदुस्तान की बड़ी भारी संपत्ति और शक्ति है। भक्तों ने ही भारतभूमि को एक देश बना दिया है। जाति, कुल, जन्म आदि का कोई ख्याल भक्तों को कभी नहीं रहा। वे गाँव-गाँव और घर-घर जाते थे। इन दिनों हम अप्पर स्वामी का 'तेवारम्' पढ़ रहे हैं, जिसे मैंने उनके भजनों का स्थल के अनुसार संग्रह किया है। उसमें डेढ़-पौने दो सौ स्थलों में गाये हुए भजन हैं। इसका अर्थ यह है कि वे सतत घूमते रहते थे। किसी प्रकार की, किसी स्थान की आसक्ति रखे बिना, भक्ति-विचार का प्रचार करते हुए वे सतत घूमते ही चले जाते थे। इसी तरह से चैतन्य-महाप्रभु करते थे। नानक, कबीरदास, तुलसीदास ने वैसा ही किया। नामदेव

भी सतत घूमते ही रहते थे। इस तरह हमें हर प्रान्त के भक्तों के नाम मालूम हैं, जो कि सतत घूमते ही रहते थे और भक्ति का संदेश हर मनुष्य को सुनाना ही अपना काम समझते थे। हमें भी आज यात्रा का जो इतना बल प्राप्त है, वह इसीलिए कि हम अपने मन में समझते हैं कि हम इस युग के लिए सच्ची भक्ति का प्रचार कर रहे हैं। जैसे किसी सिपाही को उत्साह और हिम्मत कम नहीं पड़ती है, जब कि वह याद करता है कि मैं शिवाजी की सेना का सिपाही हूँ या अर्जुन की सेना का सिपाही हूँ, उसी तरह हम अपने को इन भक्तों की सेना का एक सिपाही समझते हैं। इसीलिए हमें बल मालूम होता है। जब आप भी यह महसूस करेंगे कि एक बहुत ही विश्वव्यापी भक्ति का प्रचार करने का मौका हमें मिला है, तब आप सब लोगों को यह उत्साह स्पर्श करेगा।

समाज, सृष्टि और स्रष्टा के साथ एकरूप होने के लिए भूदान

भक्ति के मानी हैं, अपना अहंकार छोड़कर विराट् में विलीन हो जाना। मनुष्य जितने अंश में समाज से, सृष्टि से और स्रष्टा से अलग रहेगा, उतने अंश में वह दुःख का भागी रहेगा। जब वह समाज में, सृष्टि में और ईश्वर में लीन होगा, तब वह अनंत आनन्द का भागी होगा। भूदान-यज्ञ में सृष्टि, समाज और परमेश्वर में एकरूप होने की तरकीब बतायी गयी है। हम अपने पास जो जमीन है, उसका एक हिस्सा अपने समाज में जो ऐसे भाई हैं, जिन्हें उसकी आवश्यकता है, उनके लिए देते हैं, तो समाज के साथ एकरूप होने का आरंभ करते हैं। वैसे ही जब हम अपने पास ज्यादा जमीन रखते हैं, तो हम कुदरत से अलग रह जाते हैं। हम खुद खेती करते नहीं, दूसरों से परिश्रम करवाते हैं। इसलिए जब हम अपनी सब अधिक जमीन समाज को देंगे, तो बची हुई जमीन पर हम खुद काश्त करेंगे और हमें कुदरत के साथ एकरूप होने का मौका मिलेगा। जब हम अपने हृदय में इतना कारुण्य रखेंगे, जिससे कि भूदान हो सकेगा, तो ईश्वर के साथ अत्यन्त स्वाभाविकता से एकरूप होंगे, क्योंकि वह तो करुणा-मूर्ति है। हम निठुर बने रहेंगे, तो उससे अलग रहेंगे। मनुष्य थोड़ा भी करुणा का कार्य करता है, तो उसके

हृदय को समाधान होता है। यह अनुभव की बात है। जैसे खाने में तृप्ति का अनुभव होता है, वैसे ही भूतदयात्मक काम करने से हृदय को तृप्ति का अनुभव होता है। करुणा-कार्य से इसलिए समाधान होता है कि परमेश्वररूप करुणा के साथ हमारा संबंध जुड़ जाता है; इसीलिए ईश्वर-स्पर्श का अनुभव होता है और उससे समाधान होता है। भूमिदान को हम एक परिशुद्ध भक्ति-मार्ग कहते हैं। हमें आश्चर्य होता है कि भूमिदान पर अपना अभिप्राय प्रकट करते हुए कई लोग कहते हैं कि यह तो हमारे धर्मग्रंथों में लिखी हुई बात है। मलाबार के ईसाइयों ने कहा है कि बाबा तो सच्चे ईसाई-धर्म का प्रचार कर रहा है। हम जब उत्तर-प्रदेश में घूमते थे, तब एक मुसलमान भाई ने कहा कि 'यही इसलाम है, जो आप कर रहे हैं।' हमने तो इनमें से किसी धर्म का उपदेश ध्यान में रखकर काम शुरू नहीं किया था। परंतु जो करुणा का कार्य होता है, उसमें सब धर्मों का सार आ जाता है।

हम मुक्ति दिलानेवाले नहीं, भक्ति सिखानेवाले हैं

भूदान के काम में कभी किसीको थकान होनी ही नहीं चाहिए। मान लीजिये कि हमें दिनभर मेहनत करके ४-५ एकड़ जमीन प्राप्त हुई, तो और किसी भी उद्योग से हम दिनभर में जितना सेवा-कार्य कर सकते थे, उससे ज्यादा सेवा हुई, ऐसा समझना चाहिए; क्योंकि ४-५ एकड़ जमीन की प्राप्ति याने एक परिवार के लिए आजीविका का साधन हासिल करना है। आपने २-३ दिनों में २-३ परिवारों के लिए भूमि प्राप्त की और फिर भी आपको लगता है कि हमने परिश्रम ज्यादा किया और परिणाम कम आया। ऐसा इसलिए होता है कि हम अपने को बहुत बड़ा समझते हैं। हम समझते हैं कि हम सूर्यनारायण हैं, इसलिए जहाँ हम जायेंगे, वहाँ अंधकार का मुँह नहीं दीखना चाहिए। हम कहीं भी गये और लोगों से कहा कि जीवनदान दो, तो लोगों ने दे दिया, हम किसी गाँव में गये और ग्रामदान की बात की, तो लोगों ने ग्रामदान दे दिया, ऐसा होना चाहिए, तब हम कहेंगे कि हमसे काम हुआ। यह तो ईश्वर भी नहीं करता है, तो हमसे क्या होगा? ईश्वर दुनिया में काम करता है, फिर भी

सब लोगों का हृदय-परिवर्तन नहीं होता। जो हृदय-परिवर्तन की कीमिया ईश्वर को नहीं सधी, वह क्या मुझसे सधेगी ? हम लोगों को मुक्ति दिलानेवाले नहीं हैं, बल्कि भक्ति सिखानेवाले हैं। मुक्ति दिलानेवाला तो परमेश्वर है। हम भक्ति का प्रचार करते चले जायँ, तो उसका थोड़ा-सा परिणाम होगा। लेकिन उसका मुख्य परिणाम तो यह होना चाहिए कि उससे हमारे हृदय की शुद्धि हो, उसका परिवर्तन हो। इन दिनों हर कोई दूसरे के हृदय-परिवर्तन की बात करता है। वह समझता है कि अपने हृदय में ऐसी कोई चीज नहीं है, जिसका परिवर्तन होना जरूरी है। और लोगों के हृदय में ऐसी चीजें भरी हैं, जिनका परिवर्तन होना जरूरी है। कितना अहंकार, कितना अज्ञान !

अंदर का प्रवाह सूखता नहीं

हमें ज्यादा जमीन मिलती है, तो खुशी नहीं होती और कम मिलती है तो, दुःख नहीं होता। हमारी बिहार-यात्रा में हमें औसत प्रतिदिन तीन हजार एकड़ जमीन और तीन-साढ़े-तीन सौ दान-पत्र मिले। वकील की प्रैक्टिस बढ़ती है, तो उसकी फीस भी बढ़ती है, परन्तु यहाँ के लोगों ने हमें डिग्रेड कर दिया है। सेलम जिले में हमें ३३ दिनों में सिर्फ ४-४॥ हजार एकड़ जमीन मिली। इतनी कम जमीन हमें आज तक कभी नहीं मिली। तेलंगाना में भूदान-यज्ञ के आरंभ में भी हमें हर रोज २०० एकड के हिसाब से जमीन मिली थी। उसके बाद तो काम बढ़ता ही चला गया। नदी जैसे आगे बढ़ती है, वैसे छोटी नहीं बनती। लेकिन तमिलनाड में हमारी नदी सूखने लगी। फिर भी अंदर जो नदी बहती है, वह सूखी नहीं है। भक्ति का प्रवाह अखंड बह रहा है। चाहे कावेरी सूख जाय, लेकिन अन्दर का झरना नहीं सूखेगा। जमीन कम मिले या ज्यादा, उससे हमारा क्या बिगड़ता है ? मेरा तो तब बिगड़ेगा, जब अन्दर का भक्ति का झरना सूखना शुरू होगा। लेकिन वह नदी इतनी भरी है कि हम उसे रोक लेते हैं। नहीं तो चौबीस घंटे अश्रुधारा चलेगी, ऐसी मेरी हालत है। हमें इन सारे ईश्वरों का दर्शन हो रहा है। सच्चे और बुरे अर्थ में हमारी यह यात्रा चल रही है।

समाज-सुधारक की कसौटी हो

हम किसी गाँव में जाते हैं और छोटा-सा व्याख्यान देते हैं। लोगों पर उसका कोई असर नहीं हुआ, तो हमें ईश्वर का दर्शन होता है। हम समझते हैं कि लोग कुछ सत्व रखते हैं, पूरा विचार समझे बिना देते नहीं। कोई भी लोगों के पास जाकर माँगे और लोग देने लगें, तो हम तो डर जायेंगे, हम समझेंगे कि अब हिंदुस्तान टिकेगा नहीं, लोग ऐसे मूरख बन गये हैं कि कोई भी माँगता है, तो दे देते हैं। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गांधी आदि सब आये, परंतु लोगों ने उनकी बातें मानी नहीं। लोग पुरानी पद्धति एकदम छोड़ते नहीं और नयी अपनाते नहीं, इसीमें हम समाज का भला समझते हैं। जो भी समाज-सुधारक आयेंगे, उनकी तपस्या की कसौटी किये बिना, उनके विचार की कसौटी किये बिना उनके अनुकूल न होने में ही समाज का भला है।

प्रयत्न से फल ज्यादा

यह बीज बिलकुल छोटा-सा दीखता है, लेकिन यह वटवृक्ष का बीज है। जब यह छोटा बीज बोया जायेगा, तो उसमें से विशाल वटवृक्ष पैदा होगा। स्वराज्य के लिए कितने लोगों ने कोशिश की परंतु वे स्वराज्य को देख नहीं सके। हम एक ही नाम लेते हैं लोकमान्य तिलक का। उन्होंने जिंदगी भर स्वराज्य के लिए कोशिश की, लेकिन उन्हें उसका दर्शन न हो सका। तो क्या आप समझते हैं कि वे दुःख से मरे थे। मरने के पहले जबतक उन्हें सूझ थी, 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।' तब तक वे बोलते रहे। 'जब-जब धर्म की ग्लानि होती है, तब-तब भगवान् का अवतार होता है।' इसलिए वे लोग भी बड़े भाग्यवान हैं, जिन्हें फल देखने को नहीं मिलता, पर प्रयत्न करने को मिलता है। हमें तो लगता है कि हम जितना प्रयत्न कर रहे हैं, उससे ज्यादा फल मिल रहा है। इसलिए आप सब लोग अत्यन्त उत्साह से और सातत्य से लोगों के पास जाइये और प्रेम से यह अपना प्रेम-संदेश दीजिये, फिर आप देखेंगे कि उससे आपके हृदय को कितनी प्रसन्नता होती है और समाज को कितना समाधान होता है।

नेता की नहीं, ईश्वर की मदद

हमेशा यह शिकायत की जाती है कि हमारे कार्यकर्ताओं के पीछे कोई बड़ा मनुष्य नहीं है। यह सोचने की बात है कि बड़ा कौन है। इस दुनिया में जो सबसे छोटे होते हैं, वे ईश्वर के राज्य में सबसे बड़े होते हैं। अगर आपको किसी नेता की मदद मिलती, तो आप ईश्वर की मदद से वंचित रह जाते, ईश्वर की ज्योति आपके हृदय में प्रकट नहीं होती। अगर जमीन मिलती तो आपको यही लगता कि उस नेता की ताकत के कारण मिली और नहीं मिलती, तो लगता कि उसमें ताकत नहीं है। याने वह यश और अपयश, दोनों आप उस नेता पर डालते तो आपकी हृदय-शुद्धि का कोई सवाल ही नहीं रहेगा। इसलिए आज की हालत बहुत अच्छी है, उससे आपके अंतर में जो ज्योति है, वह बढ़ेगी, आपको आत्म-निरीक्षण का मौका मिलेगा और ईश्वर ने चाहा, तो आपकी ही ताकत बढ़ेगी और आपकी शक्ति से ही काम होगा। लेकिन फिर अहंकार मत रखो कि हमारी शक्ति से काम हुआ। आपको समझना चाहिए कि यह कार्य नया है, इसलिए नये मनुष्यों के लिए ही है। नया कार्य पुराने लोगों के लिए नहीं होता है। ईश्वर अगर नये कार्य पैदा करता है, तो उसके लिए नये मनुष्यों को भी पैदा करता है। पुराने नेता नये कार्य को पहचानें, यह आशा रखना व्यर्थ है। पुराने लोग आपके काम को अच्छा कहते हैं, आपको आशीर्वाद देते हैं, इससे ज्यादा क्या चाहिए? समझना चाहिए कि भगवान् ने आपके लिए सब द्वार खोल दिये हैं, आप जाइये और बे-रोक-टोक काम कीजिये। आपके प्लैटफार्म पर बोलने के लिए कोई नहीं आता है, वह बिलकुल खाली है, आपके लिए ही खाली रखा है। बारिश में, ठंड में, धूप में घूमना पड़ता है, छोटे-छोटे गाँवों में जाना पड़ता है, लोगों को बार-बार समझाना पड़ता है। कौन आयेगा बारिश में और काम करेगा? इसलिए यह सारा कार्यक्रम हमारे लिए खाली रखा है। इसलिए परमेश्वर का नाम लेकर उत्साह के साथ काम करो।

भवानी (कोइम्बतूर)
२३-८-'५६.

जब ज्ञान, प्रेम और धर्म भी कैदी बने !

आज रास्ते में एक हाईस्कूल में पहुँचे। वहाँ एक कमरे पर अच्छा-सा वचन लिखा था, जिसका आशय था 'धर्म, प्रेम और ज्ञान, तीनों एकत्र होने चाहिए।' बात बड़े पते की है। आजकल तीनों का बँटवारा हो गया है। विद्या विद्यालयों में कैद है, प्रेम घरों में, तो धर्म देवालयों की चहार-दीवारों में जकड़ा हुआ है। तीनों ताकतें आज कैदी बन गयीं।

ज्ञान विद्यापीठों में कैद

एक जमाना था, जब देश के परिव्राजक और भक्तजन गाँव-गाँव, घर-घर जाकर ज्ञान पहुँचाते थे, लेकिन उसके बदले वे कुछ भी न माँगते थे। पर आज वह विश्वविद्यालयों में बन्द है। आज का प्रोफेसर गाँव-गाँव जाकर ज्ञान नहीं पहुँचाता। लड़कों को ही हर साल दो-तीन हजार रुपये खर्च कर शहर जाना पड़ता है। तब उन्हें ज्ञान मिल पाता है। पर सब लोग शहरों में, विश्वविद्यालयों में जा नहीं सकते और बिना पैसा दिये तो जा नहीं सकते। उन्हें ज्ञान की जरूरत तो रहती है, पर उनके पास उसे मुफ्त पहुँचाने का हमारे पास कोई इन्तजाम नहीं। अगर कोई बन्दोबस्त होता है, तो वह प्राइमरी स्कूल का ही होता है। देहाती लोगों के लिए विश्वविद्यालय की तालीम की जरूरत नहीं मानी जाती।

वास्तव में विश्वविद्यालयीय शिक्षण की सबसे ज्यादा जरूरत देहातियों को है; क्योंकि वहाँ देहाती जीवन के प्रयोग चलते हैं, खेती होती है। जिसे आप 'कच्चा माल' कहते हैं, सारा देहात में पैदा होता है। कुल उद्योग देहात के लोग ही कर सकते हैं। उन सब कामों पर ज्ञान के प्रकाश की सख्त जरूरत है। लेकिन उस प्रकाश को वहाँ पहुँचाने की हमारे पास कोई तरकीब नहीं। जैसे सूर्य-किरणें घर-घर पहुँचती हैं, वैसे ज्ञान भी घर-घर पहुँचना चाहिए।

एक तरफ विद्या के पहाड़ हैं, तो दूसरी तरफ अज्ञान के गड्ढे। पहाड़ों

पर पानी बरसता और बहकर गड्ढों में चला जाता है। फसल के लिए पहाड़ काम नहीं आते। गड्ढों में पानी गिरता और वे भर जाते हैं, इसलिए फसल नहीं होती, सड़ जाती है। कालेज में जो ज्ञान सीखेगा, वह काम नहीं सीख सकता, इसलिए उसका ज्ञान बेकार है। जो खेतों में काम करेगा, उसे ज्ञान न मिलेगा, इसलिए उसका काम भी बेकार है। न तो इसके ज्ञान में कोई ताकत पैदा होती है और न उसके काम में भी। वह ताकत पैदा करने का यही उपाय है कि ज्ञान विद्यालयों में और पुस्तकों में कैद न रहे।

प्रेम घरों में कैद

दूसरी बात प्रेम की थी। आज प्रेम बिलकुल घनीभूत हो गया है। लड़का, पत्नी, माँ, बाप में ही सारा प्रेम खत्म हो जाता है, वह बहता झरना नहीं रहा। अपने लड़के की सुंदर नाक देख मुझे बड़ी खुशी होती है, पर पड़ोसी के लड़के की उससे बेहतर नाक मुझे खटकती है। इसीका नाम है, प्रेम की सड़न! उसका बहाव बंद हो गया। जहाँ पानी का बहाव बंद हो जाता है, वहाँ वह इकट्ठा होकर सड़ने लग जाता है। आत्मा का अखंड प्रवाह है। क्या वह मुझमें और मेरे लड़के में कैद हो गयी है? ये सब-के-सब आत्मराशि मेरे सामने खड़े हैं, ये सभी मेरे ही रूप मेरे सामने खड़े हैं। लेकिन मैं उसे काटता हूँ, उसके दो टुकड़े करता हूँ। मेरे अड़ोसी-पड़ोसी मुझसे भिन्न हैं और मेरे घर के सभी मेरे हैं। घर में प्रेम का कानून काम करेगा, पर गाँव में स्पर्धा का। जो जितना कमायेगा, उतना खायेगा, यह कानून गाँव के लिए है और जो सब कमायें, वह इकट्ठा कर बाँट खायेंगे, यह घर का कानून है। मान लीजिये, गाँव के लिए यह कानून ठीक है। एक में कम योग्यता थी, इसलिए उसने कम कमाया और कम खाया। दूसरे में अधिक योग्यता होने से ज्यादा कमाया और ज्यादा खाया। हम तो इसे भी अत्यंत अन्याय समझते हैं, पर घड़ी भर मान लेते हैं कि यह न्याय है। इसी तरह खूब ज्ञानी को ज्यादा पैसा देना और खेत में मजदूरी करनेवालों को बारह आना देना, हम न्याय नहीं समझते; पर कुछ देर के लिए मान लेते हैं कि यह भी न्याय है।

लेकिन आगे पूछते हैं कि उन दोनों के लड़कों में विद्वान् के लड़के को अच्छा खाना, अच्छा कपड़ा, अच्छी तालीम मिले और अज्ञानी मजदूर के लड़के को कम खाना, कम कपड़ा, कम तालीम, यह कहाँ का न्याय है ? दोनों के लड़के समान हैं, और दोनों कमानेवाले नहीं। पहला ज्ञानी नहीं और दूसरा अज्ञानी नहीं। अच्छी तालीम मिली, तो दोनों विद्वान् बनेंगे। दोनों को अच्छा खाना मिले, तो दोनों मजबूत बनेंगे। फिर बाप में फर्क होने के कारण बच्चों पर क्यों अन्याय किया जा रहा है ? आज के समाज के पास इसका जवाब क्या है ? क्या इस तरह घर के लिए सीमित प्रेम का और समाज के लिए स्पर्धा का कानून नहीं बना लिया गया ?

घर का न्याय समाज में क्यों नहीं ?

कुछ बड़े लोग, बड़ी-बड़ी अक्लवाले व्याख्यान सुनाते हैं कि पहले उत्पादन बढ़ाना चाहिए और फिर बँटवारा करें। एक अक्लवाले ने तो यहाँ तक कह दिया कि 'बाबा गरीबी बाँट रहा है—'डिस्ट्रीब्युशन ऑफ पॉवर्टी' कर रहा है। पहले खूब उत्पादन बढ़ाना चाहिए और फिर बँटवारा। लेकिन बाबा तो पहले से ही बाँटने की बात करता है। हम उनसे पूछते हैं कि अगर आपके घर में मनुष्य पाँच और खाना चार के लिए पर्याप्त है, तो क्या पहले चार पेटभर खा लेंगे और पाँचवें को कह देंगे कि उत्पादन बढ़ाने पर तुम्हें मिलेगा या पहले जो कुछ होगा, सब बाँटकर खा लेंगे, और फिर सब मिलकर उत्पादन बढ़ायेंगे ? स्पष्ट है कि घर का यही न्याय होगा कि आज की हालत में जो कुछ भी हो, सब बाँटकर खायेंगे, थोड़ा हो तो कम खायेंगे, और फिर सब मिलकर ज्यादा खाना पाने की कोशिश करेंगे। हम पूछते हैं कि अगर घर में ऐसा है, तो समाज में क्यों नहीं ? घर का और समाज का अलग-अलग न्याय क्यों ? हरएक मनुष्य कहता है कि इस दुःखमय संसार में घर में प्रेम है, इसलिए सुख है। फिर जब घर की छोटी-सी प्रयोगशाला में प्रेम का प्रयोग छोटे पैमाने पर सफल हो गया, तो उसे बड़े पैमाने पर क्यों नहीं करते ? अगर घर में एक-दूसरे को प्रेम करने और एक-दूसरे के लिए त्याग करने में तकलीफ हुई हो, तब तो उसे समाज

में लागू न करना चाहिए। लेकिन जब घर का प्रेम-प्रयोग यशस्वी हुआ है, तब उसे समाज में बड़े पैमाने पर लागू करना ही चाहिए। सारांश, हमने आज प्रेम को जाना है, पर उसे घर में कैद कर रखा है। उसका व्यापक प्रयोग नहीं करते, उसे बढ़ने नहीं देते।

धर्म मंदिरों में कैद

तीसरी बात धर्म की है। धर्म भी हिन्दुस्तान के लोग पहचानते नहीं, सो नहीं। किन्तु उन्होंने उसे मंदिर की चहारदीवारों में कैद कर रक्खा है। व्यवहार में, बाजार में धर्म की कोई जरूरत नहीं। बाजार में खुलकर झूठ चलेगा।

कुछ लोग इधर बाबा को भूदान में जमीन दान में देते हैं, तो उधर अपने काश्तकारों को बेदखल करते हैं। यह देख हमारे कम्युनिस्ट भाई कहते हैं : 'बाबा, क्यों ठगे जा रहे हो? ये लोग तो तुम्हें साफ ठग रहे हैं।' मैं उनसे यही कहता हूँ कि वे मुझे नहीं ठगते, अपने आप को ठग रहे हैं। वे जानते नहीं कि इसमें ढोंग हो रहा है। सोचते हैं कि बाबा जैसा एक सत्पुरुष दान माँगता और धर्म की बात बोलता है, तो दान देना हमारा धर्म है, लेकिन उधर व्यवहार में न मालूम सरकार क्या करेगी; इसलिए जमीन कब्जे में ले लेना ही अच्छा है। एक ही शख्स दोनों चीजें करता है। मनुष्य के हृदय में दोनों चीजें हैं। तुलसीदास ने गाया है : 'कुमति सुमति सबके उर बसई।' कौरव-पांडवों का कुरुक्षेत्र हर हृदय में है। वहाँ सतत राम-रावण युद्ध चलता है। इसलिए उनका यह ढोंग है, ऐसा भी हम नहीं कहते। फिर भी उस धर्मबुद्धि का संबंध अपने बाजार, व्यवहार और जीवन के साथ है, यह बात उनके खयाल में नहीं रही। उनकी वह धर्मभावना मंदिर में ही प्रकट होती है। हमने धर्म-भावना को पहचाना है, लेकिन उसे मंदिर तक ही सीमित माना है।

बाजार का अधर्म मंदिरों में

इन तीन परम मित्रों को, जिनकी मदद हमारी उन्नति के लिए अत्यंत जरूरी है, हमने घर, युनिवर्सिटी और देवालय में कैद कर रखा है! इन्हें शीघ्र से शीघ्र खोल दें और समाज में लायें। समाज में ज्ञान आये और

घर-घर पहुँचे। प्रेम घर से बाहर निकलकर सारे समाज में व्याप्त हो तथा धर्म मंदिरों में से बाहर निकलकर बाजार तक, सर्वत्र फैले। यहाँ के एक महापुरुष ने गाया है कि 'परमेश्वर इस भूमि के साथ आकाश में फैला है।' हम उसे आकाश में देखना चाहते हैं, पर जमीन पर लाना नहीं चाहते। वह अगर जमीन पर आयेगा, तो हमें लगता है, तकलीफ होगी, वह आकाश में रहे या बहुत हुआ तो वैकुंठ-कैलास में जाय। धर्म को मंदिरों में से बाजार तक आने न दें, तो भी दोनों के बीच का व्यवहार टल नहीं सकता। व्यवहार में धर्म को जाने नहीं दिया, तो व्यवहार की बदमाशी मंदिरों में पहुँच गयी। मंदिर का धर्म बाजार में आने नहीं दिया, तो बाजार का अधर्म मंदिरों में पहुँच ही गया। बाजार ही मंदिरों में पैठ गया। वास्तव में धर्म को ही बाजार में जाना था। लेकिन वह वहाँ नहीं जा सका, तो मंदिरों में से भी उठ गया; क्योंकि वह कैद नहीं रह सकता। फिर उसे ढोंग और अधर्म का रूप आ गया। बाजार में खुला अधर्म है, तो मंदिरों में ढँका हुआ है, आज यही हालत हो गई है।

प्रेम का रूपांतर विषयासक्ति में

प्रेम की भी यही हालत हुई। प्रेम को घर में सीमित कर रखा, तो उसका रूपांतर विषयासक्ति में हो गया। शुद्ध कावेरी जल एक घड़े में रख दें तो उसमें जंतु पैदा हो जायेंगे। इसी तरह बाहर प्रेम को फैलाने के बदले घर में सीमित कर दें, तो उसका रूपान्तर कामवासना, विषयोपभोग के बिलकुल हीन स्वरूप में हो ही जायगा। अगर वह बहता रहता, तो उसकी सुन्दर खुशबू और पुष्टि हमें मिलती।

विद्या भी अविद्या बन गयी

विद्या का भी यही हाल हुआ। हमने विद्या को कॉलेज और युनिवर्सिटी में कैद रखा, तो उसका रूपांतर अविद्या में हो गया। कहा जाने लगा कि 'मैं ऑक्सफर्ड का एम. ए. हूँ, इसलिये मुझे मद्रास एम. ए. से ज्यादा तनख्वाह मिलनी चाहिए।' इस तरह विद्या को अभिमान का भी स्वरूप आ गया। ज्ञान के साथ नम्रता होती है। ज्ञानी सबकी सेवा के लिए उत्सुक रहता है।

किंतु आज का ज्ञानी तो अभिमानी बन गया। ज्यादा पढ़े-लिखे लड़के की शादी के बाजार में ज्यादा कीमत होती है। वह ज्यादा दहेज माँगता है, जैसे ज्यादा खिलाये-पिलाये बैल की कीमत बाजार में ज्यादा होती है। यह आज की विद्या का नग्न रूप है!

रामकृष्ण परमहंस बहुत ज्यादा पढ़े-लिखे तो न थे। एक बार उनके मन में आया कि थोड़ी विद्या आ जाय, वे देवी के बड़े भक्त थे। रात में उन्हें स्वप्न आया, देवी ने दर्शन देकर उनकी इच्छा पूछी, तो उन्होंने विद्या की माँग की। देवी ने सामने पड़े कचरे के ढेर में से विद्या ले लेने को कहा। रामकृष्ण समझ गये और उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा : 'मुझे ऐसी विद्या नहीं चाहिए।'

आस्तिकों के ढोंग से नास्तिकता का विस्तार

इस तरह विद्या, प्रेम और धर्म को हमने कैद किया तो विद्या अविद्या बन गयी, प्रेम कामासक्ति और धर्म ढोंग बन गया। परिणामस्वरूप लोग कहने लगे कि 'ऐसे आस्तिक बनने से हम नास्तिक बनना ही ज्यादा पसंद करेंगे।' उनके खिलाफ आस्तिक कहते हैं : 'सारे नास्तिक बन गये!', पर नास्तिक कौन है, जरा देख तो लें! आइने में देखा कि नाक गंदी है, तो कहने लगे कि आइना ही गंदा है। नास्तिक वह नहीं है, तू है। तू भक्ति का और आस्तिकता का ढोंग करता है, इसीलिए नास्तिकता फैली है।

भूदान से प्रेम, ज्ञान और धर्म फैलेगा

भूदान में हम चाहते हैं कि विद्या सबको मिले। सबको जमीन मिलेगी, तो उन्हें विद्या की भी सहूलियत होगी। हम समझते हैं कि इस आंदोलन से ... भी फैलेगा। प्रेम से आप जमीन देंगे, तो भूमिहीन और आपके बीच प्रेम ... गाँठ बँध जायगी। हम अपेक्षा करते हैं कि भूदान-आंदोलन से धर्म भी व्यापक बनेगा। आप सभी अपने-अपने गाँव के दुःखी और भूखों की चिंता करना अपना कर्तव्य समझें, उन्हें मदद दें, धर्म सहज ही व्यापक हो जायगा।

तुक्कनायकन् पालेयम् (कोयम्बतूर)
१-१०-'५६

धर्म-साहित्य का समाज पर असर नहीं

हिन्दुस्तान की सभी भाषाओं में धर्म की पुस्तकें हैं। मेरा खयाल है कि संस्कृत को छोड़ तमिल में शायद हिन्दुस्तान की सब भाषाओं से ज्यादे धर्म-ग्रंथ होंगे दूसरी भाषाओं में भी धर्म-साहित्य की कमी नहीं, उनमें भी काफी धर्मग्रंथ हैं। किन्तु इनका सब लोगों के जीवन पर उतना असर नहीं दीखता। जगह-जगह मन्दिर, मस्जिद और चर्च हैं, सब जगह प्रार्थनाएँ भी चलती हैं, आरती-भजन आदि होते हैं और धर्म-ग्रन्थ भी पढ़े जाते हैं, लेकिन इन सबका जीवन पर बहुत ज्यादा असर नहीं है। धर्मग्रंथ सत्य बोलने पर बहुत जोर देते हैं, लेकिन कहना पड़ता है कि केवल सत्य ही बोलने वाला मनुष्य इस दुनिया में दुर्लभ हो गया है। कोर्ट में झूठ की तालीम दी जाती है। बाजार में झूठ के सिवा नहीं चलता। राजनीति की चर्चा में बात-बात में झूठ होता ही है। साहित्य में लोग 'अतिशयोक्ति' और 'वक्रोक्ति' को 'अलंकार' ही समझते हैं। इस तरह बाजार, व्यापार, व्यवहार, कोर्ट, साहित्य और राजनीति आदि सब क्षेत्रों में असत्य की प्रतिष्ठा जारी है। हमारे साहित्य में दान की बात भी खूब चलती है, करुणा पर भी जोर दिया जाता है, लेकिन सारी समाज-व्यवस्था निष्ठुर बनायी गयी है। हमें पड़ोसी के दुःख का स्पर्श ही नहीं होता, बल्कि उसे दुःखी देखकर भी हम सुखी बनना चाहते हैं।

अब इन धर्मग्रंथों का हमारे जीवन पर असर क्यों नहीं ? यह सोचिये। जो लोग झूठ बोलते हैं, धर्मग्रंथ भी पढ़ते हैं, क्या वे ढोंगी हैं ? कुछ लोग ढोंगी हो सकते हैं परंतु सभी ढोंगी नहीं। वे धर्मग्रंथ पढ़ते हैं, तो श्रद्धा से पढ़ते हैं। वे व्यवहार में निष्ठुर बनते हैं, असत्य का भी उपयोग करते हैं तो यह भी एक आवश्यकता समझकर करते हैं। फिर यह कैसे हो रहा है ? इसे हमने बहुत बारीकी से देखा है, इसका हमने बहुत चिंतन किया है।

किंतु आज का ज्ञानी तो अभिमानी बन गया। ज्यादा पढ़े-लिखे लड़के की शादी के बाजार में ज्यादा कीमत होती है। वह ज्यादा दहेज माँगता है, जैसे ज्यादा खिलाये-पिलाये बैल की कीमत बाजार में ज्यादा होती है। यह आज की विद्या का नग्न रूप है।

रामकृष्ण परमहंस बहुत ज्यादा पढ़े-लिखे हो न थे। एक बार उनके मन में आया कि थोड़ी विद्या आ जाय, वे देवी के बड़े भक्त थे। रात में उन्हें स्वप्न आया, देवी ने दर्शन देकर उनकी इच्छा पूछी, तो उन्होंने विद्या की माँग की। देवी ने सामने पड़े कचरे के ढेर में से विद्या ले लेने को कहा। रामकृष्ण समझ गये और उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा : 'मुझे ऐसी विद्या नहीं चाहिए।'

आस्तिकों के ढोंग से नास्तिकता का विस्तार

इस तरह विद्या, प्रेम और धर्म को हमने कैद किया तो विद्या अविद्या बन गयी, प्रेम कामासक्ति और धर्म ढोंग बन गया। परिणामस्वरूप लोग कहने लगे कि 'ऐसे आस्तिक बनने से हम नास्तिक बनना ही ज्यादा पसंद करेंगे।' उनके खिलाफ आस्तिक कहते हैं : 'सारे नास्तिक बन गये!', पर नास्तिक कौन है, जरा देख तो ले! आइने में देखा कि नाक गंदी है, तो कहने लगे कि आइना ही गंदा है। नास्तिक वह नहीं है, तू है। तू भक्ति का और आस्तिकता का ढोंग करता है, इसीलिए नास्तिकता फैली है।

भूदान से प्रेम, ज्ञान और धर्म फैलेगा

भूदान में हम चाहते हैं कि विद्या सबको मिले। सबको जमीन मिलेगी, तो उन्हें विद्या की भी सहूलियत होगी। हम समझते हैं कि इस आंदोलन से प्रेम भी फैलेगा। प्रेम से आप जमीन देंगे, तो भूमिहीन और आपके बीच प्रेम की गाँठ बँध जायगी। हम अपेक्षा करते हैं कि भूदान-आंदोलन से धर्म भी व्यापक बनेगा। आप सभी अपने-अपने गाँव के दुःखी और भूखों की चिंता करना अपना कर्तव्य समझें, उन्हें मदद दें, धर्म सहज ही व्यापक हो जायगा।

तुक्कनायकन् पालेयम् (कोयम्बतूर)
१-१-'५६

धर्म-साहित्य का समाज पर असर नहीं

हिन्दुस्तान की सभी भाषाओं में धर्म की पुस्तकें हैं। मेरा खयाल है कि संस्कृत को छोड़ तमिल में शायद हिन्दुस्तान की सब भाषाओं से ज्यादे धर्म-ग्रंथ होंगे दूसरी भाषाओं में भी धर्म-साहित्य की कमी नहीं, उनमें भी काफी धर्मग्रंथ हैं। किन्तु इनका सब लोगों के जीवन पर उतना असर नहीं दीखता। जगह-जगह मन्दिर, मस्जिद और चर्च हैं, सब जगह प्रार्थनाएँ भी चलती हैं, आरती-भजन आदि होते हैं और धर्म-ग्रन्थ भी पढ़े जाते हैं, लेकिन इन सबका जीवन पर बहुत ज्यादा असर नहीं है। धर्मग्रंथ सत्य बोलने पर बहुत जोर देते हैं, लेकिन कहना पड़ता है कि केवल सत्य ही बोलने वाला मनुष्य इस दुनिया में दुर्लभ हो गया है। कोर्ट में झूठ की तालीम दी जाती है। बाजार में झूठ के सिवा नहीं चलता। राजनीति की चर्चा में बात-बात में झूठ होता ही है। साहित्य में लोग 'अतिशयोक्ति' और 'वक्रोक्ति' को 'अलंकार' ही समझते हैं। इस तरह बाजार, व्यापार, व्यवहार, कोर्ट, साहित्य और राजनीति आदि सब क्षेत्रों में असत्य की प्रतिष्ठा जारी है। हमारे साहित्य में दान की बात भी खूब चलती है, करुणा पर भी जोर दिया जाता है, लेकिन सारी समाज-व्यवस्था निष्ठुर बनायी गयी है। हमें पड़ोसी के दुःख का स्पर्श ही नहीं होता, बल्कि उसे दुःखी देखकर भी हम सुखी बनना चाहते हैं।

अब इन धर्मग्रंथों का हमारे जीवन पर असर क्यों नहीं ? यह सोचिये। जो लोग झूठ बोलते हैं, धर्मग्रंथ भी पढ़ते हैं, क्या वे ढोंगी हैं ? कुछ लोग ढोंगी हो सकते हैं परंतु सभी ढोंगी नहीं। वे धर्मग्रंथ पढ़ते हैं, तो श्रद्धा से पढ़ते हैं। वे व्यवहार में निष्ठुर बनते हैं, असत्य का भी उपयोग करते हैं तो वह भी एक आवश्यकता समझकर करते हैं। फिर यह कैसे हो रहा है ? इसे हमने बहुत बारीकी से देखा है, इसका हमने बहुत चिंतन किया है।

धर्मग्रन्थ परलोक के लिए

कुछ लोगों ने अपने मन में यह मान लिया है कि इन धर्मग्रन्थों का उपयोग जरूर है, परन्तु वह परलोक प्राप्ति के लिए है, इस लोक में उनका विशेष उपयोग नहीं। कई पुस्तकों में इस तरह के वाक्य भी मिलते हैं। 'कुरल' में भी इस आशय का वाक्य मिलता है : 'जैसे परलोक के लिए भगवत्कृपा चाहिए। वैसे ही इहलोक के लिए अर्थ।' 'कुरल' में दूसरे प्रकार के वाक्य भी हैं, जिनमें यह बताया गया है कि 'इस लोक में भी प्रेम की जरूरत है और परलोक में भी।' अपने मन में लोगों ने इस तरह बँटवारा कर लिया है कि इस दुनिया के अर्थप्राप्ति के नियमों के मुताबिक काम कर अर्थ की प्राप्ति करेंगे। फिर कोई विशेष मौके पर थोड़ा दान और जप कर लेंगे, *तो परलोक की सिद्धि के लिए उतना काफी* होगा। वह रोज के काम की चीज नहीं, क्योंकि रोज के काम में तो इस दुनिया से सम्बन्ध आता है। फिर भी सत्य, प्रेम आदि गुणों की परलोक प्राप्ति के लिए जरूरत अवश्य है। सारांश इस तरह इहलोक और परलोक में विरोध और भेद मान लिया गया। उस हालत में लोग कोशिश करते हैं कि इहलोक भी सधे और थोड़ा परलोक भी सधे। ये लोग हमेशा निष्ठुर होते हैं, ऐसा भी नहीं। कभी-कभी थोड़ी दया भी कर लेते हैं, तो उनका परलोक सुरक्षित हो जाता है। और बाकी का व्यवहार चलता ही है। हम लोगों के बीच यह भी एक बड़ी भारी गलतफहमी है कि हमारे धर्मग्रंथ परलोक के काम के हैं, इहलोक के काम के नहीं हैं।

धर्म व्यक्ति के काम का है, समाज के नहीं

दूसरे कुछ लोग कहते हैं कि ये धर्मग्रंथ परलोक के ही काम के हैं, ऐसा नहीं; इहलोक के भी काम के हैं। किन्तु इहलोक में व्यक्ति के काम के हैं, समाज के काम के नहीं। अपनी व्यक्तिगत चित्तशुद्धि, व्यक्तिगत उन्नति के लिए उनका उपयोग है, परन्तु उनसे समाज-रक्षा नहीं हो सकती। आज सब धर्मों की यही अवस्था है। ईसाई धर्म में ईसा ने अहिंसा का अत्यधिक उपदेश दिया है। वे प्रेम और अहिंसा के लिए किसी प्रकार का अपवाद

कबूल नहीं करते। लेकिन उन्हींके अनुयायी आज शस्त्रास्त्र बढ़ा रहे हैं। गत दो महायुद्ध उन्हींके अनुयायियों के बीच आपस में हुए। वे चर्च में जाते और ईसा पर श्रद्धा भी रखते हैं। लेकिन साथ ही लड़ाइयों में हिंसा भी करते और समझते हैं कि समाज को यह करना ही पड़ता है, इसलिए ईसा प्रभु हमें क्षमा कर देंगे। वे समझते हैं कि समाज हमेशा ऐसा ही रहेगा। चाहे थोड़ा-बहुत फर्क होता रहे, परन्तु समाज में दुर्जन हमेशा रहेंगे और उन्हें दण्ड देना ही पड़ेगा। उनके लिए ईसा मसीह के धर्मग्रंथों का उपदेश काम आयेगा।

धर्मग्रंथ आदर्श समाज के काम के

तीसरा भी एक विचार है। वे कहते हैं कि अहिंसा, प्रेम, करुणा आदि की शिक्षा केवल व्यक्ति के काम की ही है और समाज के काम की नहीं, ऐसा नहीं। वह समाज के काम की भी है, परन्तु आज के समाज के लिए वह काम न देगी। जब हम दुनिया में ऐसी व्यवस्था कर लेंगे कि समाज से दुर्जनता सदा मिट या दबकर लोग शिक्षित हो जायँगे, तभी धार्मिक शिक्षा उसके काम आयेगी। आदर्श समाज में सत्य, प्रेम और करुणा टिक सकती है, परन्तु वह आदर्श समाज है नहीं। इसलिए आज की हालत में यह नियम काम देगा, इसमें अपवाद निकालने पड़ेंगे। आदर्श समाज होने के बाद ही वह पूरी तरह लागू हो सकेगा। वैसा आदर्श समाज बनाने के लिए दुर्जनों का दमन करना ही पड़ेगा।

तीनों भ्रमों का निरसन आवश्यक

इस तरह लोगों के तीन विचार हैं। यही कारण है कि करुणा की कीमत पहचानते हुए भी और सत्य पर श्रद्धा रखते हुए और उनकी कीमत पहचानते हुए भी लोगों को उनपर अमल करने में हिचक है। पहला पक्ष धर्म को परलोक-साधन मानता है, दूसरा उसे व्यक्ति तक सीमित रखता और तीसरा उसे समाज के लिए उपयोगी मानता हुआ भी भविष्य के समाज के लिए उपयोगी समझता है। हमें इन सभी भ्रमों का निरसन करना होगा। तभी जो मनुष्य के

हृदय में छुपे सत्यनिष्ठा, प्रेम आदि गुण, जिनका धर्म-ग्रंथों में बड़ा गौरव गान गाया गया है, काम में आयेंगे।

भूदान से दोनों लोकों में लाभ

तमिलनाड में भूदान का एक तमिल-गीत गाया जाता है, जिसे बहुत अच्छे कवि ने लिखा है। उसमें कहा गया है कि 'हमारे गरीब भाइयों को जमीन देना पुण्य में श्रेष्ठ पुण्य है।' लोग इसका अर्थ क्या समझते होंगे, मालूम नहीं। शायद यह समझते हों कि 'अगर हम भूदान करेंगे, तो स्वर्ग में हमारी जगह सुरक्षित होगी, इसलिए थोड़ा देना चाहिए। पर इहलोक में तकलीफ न हो, ऐसे हिसाब से दें। इससे बहुत बड़ा पुण्य होगा।' पर मैं ऐसा वादा नहीं करता कि भूदान करने से आपको मरने के बाद स्वर्ग मिलेगा। बल्कि मैं यही समझाऊँगा कि भूदान इसी जिन्दगी को सुधारने के लिए है। हम कबूल करते हैं कि जैसे अच्छे काम का फल इस दुनिया में मिलता है, वैसे परलोक में भी मिलता है। हमारा परलोक पर विश्वास है, परन्तु साथ ही इहलोक पर भी। हम दोनों को एक-दूसरे के विरुद्ध नहीं मानते। हम मानते हैं कि जिस सत्कार्य से इस जिन्दगी में सुधार होगा, आनंद मिलेगा, उसी से परलोक में भी लाभ होगा। भूमिमालिकों से हम भूमि माँगते हैं, तो वह केवल भूमिहीनों को सुख दिलाने के लिए नहीं, बल्कि भूमिमालिकों को भी सुख पहुँचाने के लिए माँगते हैं। उन्हें परलोक में ही नहीं, इस जिन्दगी में भी सुख मिलेगा। उसे श्रेय और प्रेम दोनो मिलेंगे, जो अपनी जमीन का एक हिस्सा भूमिहीनों को बाँट देंगे। माँ बच्चे के लिए त्याग करती है, तो वह समझकर नहीं कि पर-लोक में इसका फल मिलेगा। उससे इहलोक में ही उसके दिल को तसल्ली होती है, आनन्द होता है। अगर हम करुणा का आश्रय लें, तो हम और हमारा समाज दोनों सुखी होंगे। परलोक में तो सुखी होंगे ही, इस जिन्दगी में भी हमारा समाधान होगा। जिन गरीबों की मदद करेंगे, उनका समाधान तो होगा ही, साथ ही सारे समाज का भी समाधान होगा। इससे इहलोक, परलोक कुल-का-कुल सधता है।

परलोक इहलोक का विस्तार

ये सारे विभाग केवल कल्पना से अलग-अलग किये हुए हैं। वास्तव में वे अलग हैं ही नहीं। जब हम एक जिले से दूसरे जिले में प्रवेश करते हैं, तो वहाँ बड़ा तमाशा होता है। रास्ते पर वंदनवार लगाते हैं, चंद लोग खड़े रहते हैं और कहते हैं कि 'बाबा का एक जिले में से दूसरे जिले में प्रवेश हो रहा है।' अब वहाँ जमीन तो वही जारी रहती है। जहाँ जायँ, वहाँ वैसी ही जमीन है। लेकिन आपने एक जगह तय की, तो जिला वहाँ खतम न होगा। अगर आपने दस फुट आगे तय किया होता, तो जिला दस फुट और आगे बढ़ सकता। इस तरह व्यक्ति, समाज, इहलोक, परलोक ये सारे विभाग हम लोगों ने ही किये हैं। बच्चे हमारा ही विस्तार हैं, वे हम ही हैं। इसी तरह समाज भी हमारा अपना ही रूप है। जिसे हम परलोक कहते हैं, वह भी इहलोक का विस्तार मात्र है। वह हमारा आगे का, मरने के बाद का जीवन है। जैसे इस साल और अगले साल का हमारा जीवन एक ही जीवन है, हमारे बचपन का और बुढ़ापे का जीवन हमारा अपना ही जीवन है, वैसे ही मरने के बाद भी जो जीवन होगा, वह भी हमारा ही जीवन रहेगा। परलोक 'एक्स्टेन्शन सर्विस' है—वह इहलोक का विस्तारमात्र है।

भेद काल्पनिक

वहाँ जब हम मैट्रिक की परीक्षा पास कर लेंगे, तभी परलोक में कालेज में जा सकते हैं। वह इसके आगे की बात है। यह नहीं हो सकता कि मैट्रिक फेल कॉलेज के लायक माना जाय। मैट्रिक होने का कॉलेज के साथ विरोध नहीं। इस लोक में शांति प्राप्त करना और सुन्दर सामाजिक रचना करना ही परलोक-साधन है। इसलिए ये 'मैं', 'मेरा समाज', 'इहलोक', 'परलोक' ये सब भेद काल्पनिक समझ लें। सब मिलकर जीवन एक है, जो चीज व्यक्ति के काम में आती है, वह समाज के भी काम में। जो चीज इहलोक में काम आती है, वही परलोक में भी।

धर्म हमारा चतुर्विध सखा

जब हमें यह निश्चय हो जायगा कि धर्म हमारा व्यक्तिगत, सामाजिक, ऐहिक और पारलौकिक सखा है, तब आज की अवस्था न रहेगी। अभी तक समाज में अहिंसा, सत्य आदि सद्गुणों के विषय में इस प्रकार की निष्ठा नहीं बनी है। हमें यह श्रद्धा निर्माण करनी है। वह केवल व्याख्यान से न होगा। व्याख्यान देना होगा और आचरण से भी समझाना होगा।

भूदान से धर्म-स्थापना

भूदान इसी दिशा में छोटा सा प्रयत्न है। उसमें कितने ही लोगों ने बहुत त्याग किया है। आज ही अखबार में नवबाबू (उड़ीसा के मुख्यमंत्री) का एक व्याख्यान पढ़ा। उन्होंने कहा है कि '१६२१ और १६३० में जितने उत्साह से हमने त्याग किया था, वह आज भी हममें मौजूद है। जब टाल्स्टाय ने आखिर के दिनों में घर छोड़कर श्रम करने का निश्चय किया, तो हम भी इतनी बड़ी उम्र में त्याग कर सकते हैं।' आप सब देखते हैं कि बाबा रोज दो-दो पड़ाव घूमता है, बहुत मेहनत उठाता है। लेकिन बाबा से भी दस-बारह साल बड़े गुजरात के रविशंकर महाराज दो-दो दफा घूम रहे हैं। इस तरह भूदान में अनेक लोगों ने अपने जीवन का सर्वस्व अर्पण किया है। वे रोजमर्रा कुछ-न-कुछ तपस्या कर ही रहे हैं। सच्चे अर्थ में धर्म की स्थापना हो, इसके लिए यह छोटा-सा प्रयत्न चल रहा है। अभी तक धर्म की पूरी स्थापना नहीं हुई। वह तभी होगी, जब बतायी हुई उपर्युक्त श्रद्धा लोगों में निर्माण हो। 'धर्म मेरा व्यक्तिगत सखा है, सारे समाज का सखा है, इस दुनिया के जीवन का सखा है और परलोक के लिए भी सखा है।' इस प्रकार का चतुर्विध निश्चय होने पर ही हर कोई धर्म पर अमल करेगा।

माक्का नायकन् पालेयम्
३-९-'५६.

मंदिरों को जमीन देना अधम

: ४० :

मंदिरों के लिये हमारे मन में बहुत आदर है। मूर्ति में भी हमारी श्रद्धा है—और मूर्ति के बाहर भी। हम ईश्वर को सीमित नहीं समझते। वह मूर्तियों में और प्राणियों में भी है। प्राणियों में वह अधिक प्रकटरूप में है। चेतन में भगवान् का रूप अधिक प्रकट है और जड़ में कम। सत्पुरुष में भगवान् का रूप अत्यन्त प्रकट है। जिसमें भगवान् का रूप अधिक प्रकट हो, उसकी भक्ति होनी चाहिए। इसलिए सत्पुरुषों की सेवा सर्वोत्तम भक्ति है। नंबर दो की भक्ति है, प्राणियों की सेवा और नंबर तीन में जड़ वस्तुओं की आराधना आती है।

मंदिरों के जरिए शोषण

एक जमाना था, जब हिन्दुस्तान में जमीन काफी और जनसंख्या बहुत कम थी। लोगों के पास बहुत-से धंधे थे। शंकर, रामानुज जैसे धर्म-कार्य करने वालों ने मठ और मंदिर बनाये और उनके इर्द-गिर्द धर्मकार्य चलता था। लोगों को तालीम, दवा आदि का इन्तजाम मंदिरों के जरिये होता था। वहाँ धर्मशास्त्र पढ़े जाते थे। इसलिए लोगों ने मंदिरों को जमीन दी। लोगों के पास अच्छी जमीन थी, जिसकी फसल का एक हिस्सा वे मंदिरों को देते थे। किन्तु मंदिरों को जमीन देकर उन्होंने धर्म-कार्य चलाए रहने की योजना भी बना दी। उस जमाने में वह धर्म था। लेकिन आज हालत बदल गयी है। जमीन कम है और जनसंख्या बढ़ रही है, धंधे टूट गये हैं और मंदिरों के जरिए बहुत ज्यादा धर्म-प्रचार नहीं होता है। यह सब देखते हुए, मंदिरों के पास जमीन रहने का अर्थ क्या है? मंदिरवाला खुद तो उसकी काश्त नहीं करता, दूसरों से करवाता है, जिनके पास कोई धंधे नहीं और उनका सारा आधार जमीन हो। याने मंदिरवाले मुनाफा लेते हैं। हमने देखा है कि मंदिर के मालिक जितने निष्ठुर होते हैं, उतने शायद स्वतन्त्र मालिक नहीं। मंदिरवाले नफा बराबर चूस लेते और कहते हैं कि यह हमारा धर्म-कार्य है, इसलिए हमें इतना

देना ही पड़ेगा। इसकी उत्तम मिसाल जगन्नाथपुरी का जगन्नाथ का मंदिर है। मंदिर के आस-पास की हजारों एकड़ जमीन मंदिर की है। आस-पास कुल गरीब लोग रहते हैं, सब-के-सब मंदिर के नाम गालियाँ देते हैं। क्योंकि वे उस जमीन में मजदूर बनकर काश्त करते हैं, लेकिन पूरा खाना नहीं मिलता। इसलिए आजकी हालत में मंदिरों के हाथों में जमीन देने का अर्थ है, उन्हें शोषण का साधन देना।

धर्म-संस्थाओं के स्थायी आय-साधन न हों

हमारी राय में ऐसी पारमार्थिक संस्थाओं की स्थायी आय न होनी चाहिए, क्योंकि उससे लोग धर्मभ्रष्ट हो जाते हैं। एक राजा अच्छा निकला, तो उसका बेटा भी अच्छा निकलेगा, ऐसा नहीं। रामानुज ने मंदिर बनाया, तो उसका शिष्य भी अच्छा निकलेगा, इसका निश्चय नहीं। इसलिए वे जो धर्म-कार्य करते हैं, उसे अच्छा मानने पर ही लोग उन्हें मदद दें। अच्छा काम करते रहेंगे, तो लोगों की उनपर सदा श्रद्धा रहेगी। फिर भी उन्हें स्थायी आय का साधन देना उन्हें आलसी बनाना है। उससे लोगों का शोषण भी होता है। इसलिए आज की हालत में मंदिरों को इनाम के तौर पर जमीन देना गलत है। कुछ लोग स्कूल के लिए जमीन देते हैं। उसमें भी मकान बनाने के लिए जमीन देना ठीक है, पर जमीन की आमदनी पर स्कूल चले, यह गलत है। अगर शिक्षक और विद्यार्थी मिलकर उस जमीन की काश्त करें, तो स्कूल को जमीन देना भी उचित माना जायगा। तब तो खेती भी तालीम का एक हिस्सा बन जायगी। उससे विद्या बढ़ेगी और श्रमनिष्ठा भी। इसलिए हम उसे पसंद करते हैं। किंतु मजदूरों से काश्त करवाई जाय और उसके मुनाफे पर स्कूल चले, तो वह शोषण ही है।

मैं नास्तिक नहीं, पूरा आस्तिक

इसीलिए हमने कहा था कि इन दिनों मंदिरों के पास जमीन रहती है, तो उसमें आज हम धर्म नहीं, अधर्म देखते हैं। हमारा दावा है कि हमने बड़ी श्रद्धा से धर्मशास्त्रों का अध्ययन किया है। जैसे कोई नास्तिक बोलता है, वैसे

हम नहीं बोल रहे हैं। हम पढ़ते तो हैं ऋग्वेद और तिरुवाचकम् पर चिदंबरम् के मंदिर को जमीन देने के लिए राजी नहीं। हम शिव के उपासक हैं, पर शिवमंदिर को जमीन देने के लिए राजी नहीं। अगर मंदिर का पुजारी कहे कि 'पूजा में मेरे सिर्फ दो घंटे जाते हैं, इसलिए मैं काश्त करूँगा', तो जैसे हम भूमिहीनों को जमीन देते हैं, वैसे उसे भी पाँच एकड़ देंगे। किंतु मंदिर को जमीन देने का यह अर्थ नहीं है। उसका अर्थ यही है कि मंदिर के लिए स्थायी आय हो। फिर उससे वहाँ पूजा, ब्राह्मण-भोजन आदि कराया जाय। हम कहते हैं कि आपकी मंदिर में श्रद्धा है, तो उसे हमेशा कुछ दान देते रहें। वह अच्छा काम करेगा, तबतक देते रहेंगे और न करेगा, तो रोक देंगे। इससे मंदिरवाले जाग्रत रहेंगे। ईसाइयों के चर्च चलते हैं, उनके पास जमीन नहीं रहती। लोग उन्हें मदद देते हैं, पर तभी तक, जबतक कि वे अच्छा काम करते रहते हैं।

उत्पादन का साधन उत्पादक के हाथ में

जमीन उत्पादन का साधन है। देश की कुल ताकत जमीन पर निर्भर है। आज देश में जमीन थोड़ी है, इसलिए वह ऐसे लोगों को ही देनी चाहिए, जो खुद काश्त करें। मान लीजिये कि हम एक आश्रम खोलना चाहते हैं और आप उसे मदद देना। अगर आप कहें कि हम ५०० एकड़ जमीन देते हैं, तो हम कहेंगे : इतनी नहीं चाहिए। मकान बनाने के लिए आधा एकड़ काफी है। वहाँ हमें अध्ययन-अध्यापन करना है। आपकी उसमें श्रद्धा है, तो सतत मदद देते रहिए। आप हमें अनाज दे सकते हैं, आपके घर में गाय है, तो दूध दे सकते हैं। पर जमीन क्यों नहीं देते हैं? क्या हम आपकी ५०० एकड़ जमीन लेकर, मजदूरों को चूसकर आश्रम चलायें? फिर तो हमारा जमींदारों का-सा पापी जीवन बन जायगा। इसलिए आज की हालत में मंदिरों को जमीन देना मंदिरवालों को भ्रष्ट करना और भूमिहीनों का शोषण करना है।

गोबी चेट्टी पालेयम्
४-१-'५६

अभी आप लोगों ने यहाँ एक प्रतिज्ञापत्र सुना। उसमें ग्रामवालों ने गाँव की तरफ से एक संकल्प जाहिर किया है। उसमें यह था कि 'हमारे गाँव में बाहर से कोई कपड़ा न आयेगा। अपने गाँव में ही कते सूत का कपडा पहनेंगे। इसी तरह गाँव में दूसरे उद्योग भी खड़े किये जायेंगे। जमीन भी सबको मिलेगी। "जीवन की तालीम" भी गाँव में देंगे।' उसमें यह भी जाहिर किया गया है कि 'हम सभी गाँव में मिलजुलकर काम करेंगे, छूत-अछूत भेद न मानेंगे।' आखिर में यह भी कहा गया है कि 'हम सारे मिलजुलकर एक परिवार के जैसे रहेंगे।' याने इस काम में एक 'प्रेम-संकल्प' किया गया। इसी तरह एक 'संघर्ष-संकल्प' भी इसमें है। संकल्प के अंदर दोनों निहित हैं। जहाँ आप रामजी का नाम लेते हैं, वहाँ राक्षसों के खिलाफ खड़े होने का संकल्प उसीमें आ ही जाता है। जहाँ आप जाहिर करते हैं कि आप 'राजाराम' को मानते हैं, वहीं हम दूसरे राजा को न मानेंगे, यह स्पष्ट है।

इसमें 'संघर्ष' कैसे ?

आखिर इसमें संघर्ष क्या होगा ? हम चाहते हैं कि हमारे गाँव का इन्तजाम हम करेंगे, लेकिन दूसरे लोग कह रहे हैं कि तुम्हारे गाँव का इन्तजाम हम करेंगे। दुनिया में ऐसे भी लोग हैं, जो समझते हैं कि 'दुनिया का इन्तजाम करने की जिम्मेवारी हम ही पर है। आपके गाँव में तालीम कौन-सी भाषा में दी जायगी, कौन-सा कपड़ा आयेगा ? आपकी विरासत में किस प्रकार के हक होंगे ? यह सब हम तय करेंगे।' याने जीवन के जितने अंग हैं, सबमें हम आज्ञा देंगे और आपको उसी मुताबिक चलना होगा। जो पाठ्य ग्रन्थ हम निर्धारित करेंगे, वही यहाँ के कुल बच्चों को पढ़ना होगा। उसका अच्छी तरह अध्ययन करें, उसी की परीक्षा देनी होगी। इस पर यदि आप कहेंगे कि नहीं, हम तो अपनी मर्जी की किताब लेंगे और पढ़ेंगे, तो बस, संघर्ष आ गया। आप कहेंगे कि हम स्कूल चलायेंगे, तो वे कहेंगे : 'नहीं चला सकते।' फिर भी आप चलायेंगे,

तो वे कहेंगे : 'चलाओ भाई, लेकिन हम मदद न देंगे।' अगर आप चाहते हैं कि मदद मिले, तो उनकी बात मानिये। इसीलिए मैंने कहा कि इसमें संघर्ष आता है।

सारांश, तुम कहते हो, 'अपने गाँव का इन्तजाम हम करेंगे' और वे कहते हैं, 'तुम्हारे गाँव का इन्तजाम हम करेंगे', तो संघर्ष आ ही जाता है। किन्तु तुम अपने घर का इन्तजाम करते हो, तो दूसरा नहीं कहता कि 'मैं तुम्हारे घर का इन्तजाम करूँगा', इसलिए वहाँ संघर्ष नहीं आता। इसलिए घर में आपका 'प्रेम-संकल्प' होता है। किन्तु जहाँ गाँव की बात आती है, वहाँ प्रेम-संकल्प के साथ 'संघर्ष-संकल्प' भी आ जाता है। हम कहते हैं, 'तिरुवाचकम् पढ़ेंगे।' वे कहते हैं, 'नहीं दूसरा वाचकम् पढ़ो।' पर हम पढ़ न पा सकेंगे, इसलिए संघर्ष आ ही जाता है।

बारिश आ रही है और वह हमारी इस बात की सम्मति दे रही है। हम चाहते हैं कि आपका प्रेम और संघर्ष का संकल्प मजबूत बने। आपका गाँव एकरस बने और यहाँ 'ग्राम राज्य' निर्माण हो।

पुहुकट्टुर
११-१-'५६.

द्विविध कार्य : मन को सुधारना और मन से ऊपर उठना : ४२ :

अहिंसा का कछुवा और हिंसा का खरगोश

हम अपने देश की समस्याएँ हाथ में लें और यह सिद्ध कर दिखायें कि उनका हल शांति, अहिंसा और प्रेम से हो सकता है। अहिंसा वही कछुआ है, जो आहिस्ता-आहिस्ता चल रहा है और हिंसा वह खरगोश है, जो जोरों के साथ आगे बढ़ रहा है। लोग कहते हैं : 'स्वेज का प्रश्न उठा है; शायद लड़ाई हो, तो आपकी अहिंसा क्या करेगी ?' हम कहते हैं : 'अहिंसा हम सबकी है। परन्तु जब वह हमारे जीवन में प्रकट होगी, तभी उसका असर होगा। इसलिए

हमें इसका कोई डर नहीं कि दुनिया जोरों से हिंसा और महायुद्ध की ओर जा रही है। हमने बहुत बार कहा है कि महायुद्ध होनेवाला है, तो होने दो। जितने जोरों से हिंसा आयेगी, उतने ही जोर से दुनिया में अहिंसा की ताकत आयेगी। फिर वह खरगोश आँखें खोल कर देखेगा कि यह कछुआ मुकाम पर पहुँच गया। इसलिए अपना यह काम कितना भी धीरे-धीरे चलता दीखता हो, उसकी विशेष कीमत है। कोई पराक्रमी पुरुष सारे गाँव को आग लगा दे और ५ मिनट में गाँव खाक हो जाय तथा दूसरा २५ दिनों में गाँव बनाये, तो ५ मिनट में गाँव खतम करनेवाले के पराक्रम की कोई कीमत नहीं।

मनुष्य का मन बदलता है

इसलिए भूदान की तरफ देखने की आपकी दृष्टि ऐसी हो कि यह शांति और अहिंसा का कछुआ चल रहा है। जब लोगों का मन बदलेगा, तभी इसमें वेग आयेगा। लेकिन मन बदलने की बात आती है, तो लोगों की कमर ही टूटती है। कहते हैं कि 'मनुष्य का मन जैसा है, वैसा ही रहेगा, वह बदल नहीं सकता।' पर यह खयाल गलत है। मनुष्य का मन बदलता है और सतत् बदलता है। एक लाख साल पहले जो मनुष्य का मन था, वह आज नहीं रहा। विज्ञान के जमाने में मनुष्य-मन बड़ी तीव्र गति से बदल रहा है। हमने यह भी देखा कि बैलों या गदहों के मन में लाख साल में कोई बदल नहीं हुआ। क्या कभी बैलों और गधों का भी इतिहास लिखा गया? पुराने जमाने के और आज के बैलों की सभ्यता में कोई फर्क नहीं। मनुष्य की विशेषता इसी में है कि उसका मन बदलता आया है और आगे भी बदलेगा। हम एक और विशेष बात मानते हैं कि इसके आगे वही मनुष्य और वही समाज टिकेगा जो न केवल मन बदलेगा, वरन् मन से भी ऊपर उठेगा।

द्विविध कार्य

मन में फर्क किये बिना समाज ऊपर न ऊठेगा और मन से ऊपर उठे बगैर उसे दिशा मालूम न होगी। इसलिए हमें मन को सुधारना होगा और उससे ऊपर भी उठना होगा। अपना रही घर सुधारना होगा और घर के

बाहर सोने का अभ्यास करना होगा या घर सुधारना होगा और बाहर भी देखना होगा। आखिर ऐसा क्यों ? बाहर आना है, विचारशुद्धि के लिए और घर सुधारना है, विचार पर अमल करने के लिए। बाहर आये बिना नक्षत्रों का दर्शन न होगा। आज का मानव-मन बिगड़ा हुआ है। इसलिए मनुष्य को इन दो बातों की शिक्षा मिलनी चाहिए। उसके बिना मनुष्य के सामने की आध्यात्मिक और सामाजिक समस्याएँ हल न होंगी।

अविनाशी (कोयम्बतूर)
१६-६-'५६

भूदान 'सब पुण्यों में श्रेष्ठ पुण्य' क्यों ? : ४३ :

अभी बच्चों ने उद्घोष किया कि 'भूमिदान सब पुण्यों में श्रेष्ठ पुण्य है।' आखिर क्यों ? किसी भूखे को हमने भोजन दिया, तो उसे एक बड़ा पुण्य मानते हैं। किंतु उसे आज खिलाया, तो आज की भूख मिट गयी, पर कल क्या करेगा ? लेकिन भूमिदान ऐसा दान नहीं है। वह कायम रहने का दान है। भूमि देना कायम रहने के लिए आजीविका का साधन देना है। इससे उसे बार-बार माँगना न पड़ेगा। यह ठीक है कि जमीन के साथ बीज, बैल-जोड़ी भी देनी पड़ेगी। लेकिन एक बार इतना कर लिया, तो मनुष्य अपने पाँव पर खड़ा हो सकता है। उसे फिर माँगने का मौका नहीं आता। इसलिए वह बड़ा और श्रेष्ठ दान माना जाता है।

लेनेवाला आलसी न बनेगा

दूसरी बात यह है कि अगर हम लोगों को मुफ्त खिलायेंगे, तो वे आलसी बनेंगे। इसमें किसी का भला नहीं। यह ठीक है कि आज खूब भूख लगी है और साधन भी कुछ नहीं है, तो एक दिन खिला दिया। किंतु ऐसी कायम रहने की योजना बना दें, उसे मालिक बना दें, तो भूदान ने मालकियत के लिए गुंजाइश ही नहीं रखी है। हमने किसी को ५ एकड़ जमीन दी, तो वह

मिट्टी तो खायेगा नहीं। बारिश पड़ेगी, फिर भी अगर उसमें वह बीज न बोये तो घास ही उगेगी। घास वह खा नहीं सकता। खाने लायक फसल तभी उगेगी, जब अपनी मिट्टी में वह अपना पसीना डालेगा। इसलिए इस दान से लेनेवाला आलसी नहीं बन सकता। उसकी उन्नति ही होती है। इसीलिए यह दान सब पुण्यों में श्रेष्ठ पुण्य है।

जमीन का दुरुपयोग संभव नहीं

तीसरा बात यह है कि हम अगर किसी को दो पैसे दे देते हैं, तो वह उसका दुरुपयोग भी कर सकता है। पर वह जमीन का दुरुपयोग भी क्या करेगा? हाँ, जमीन में तम्बाकू बो सकता है। किंतु दान देते समय हम ही उसे कह देंगे कि इस जमीन में तम्बाकू न बोओ। इस तरह से जमीन का दुरुपयोग भी टलेगा। इसलिए भी यह सब पुण्यों में श्रेष्ठ पुण्य है।

देने और लेनेवाले दीन-घमंडी नहीं बनते

जब कोई दाता किसी को दान देता है, तो उसके चित्त में यह अहंकार आ सकता है कि 'मैंने दान दिया।' इसके विपरीत लेनेवाले में दीनता आ सकती है। पर भूदान में गरीब का हक समझकर उसे जमीन दी जाती है। बाप अपने बेटे को एक हिस्सा जमीन दे, तो क्या उसे उससे घमंड होगा? बाप समझता है कि बेटे का वह अधिकार है, इसलिए उसे दातृत्व का अहकार नहीं हो सकता। इसी तरह भूदान में गरीब का हक समझकर भूमि दी जाती है। जो खुद काश्त नहीं करते, उनका धर्म है कि वे भूमिहीनों को भूमि दें। जो पढ़ना नहीं जानता, उसे अपने पास पुस्तक रखने की कोई जरूरत नहीं। जो पुस्तक पढ़ना जानता है, उसे वह दे दी जाय। इस तरह भूदान में देनेवाला घमंडी नहीं बन सकता और न लेनेवाला दीन-हीन बनता है। इसलिए भी भूदान सब पुण्यों में श्रेष्ठ पुण्य है।

समविभाजन के लिए

महाभारत की कहानी है। पांडव कहते थे हमारा जमीन पर अधिकार है।

कौरव यह बात न मानते थे। उन्होंने अपने हाथ में राज्य रख लिया। पांडवों ने कहा : 'हमारा हक है, पर हम उसे छोड़ने को राजी हैं, इसलिए कम-से-कम आधा राज्य दे दो।' लेकिन वह भी कौरवों ने नहीं माना। फिर युधिष्ठिर ने कहा : 'जाने दो राज्य। हम पाँच भाई हैं, तो पाँच गाँव ही दे दो।' इस पर कौरवों ने क्या कहा ? यही कि 'अगर 'दान' माँगोगे तो देंगे, हक समझकर माँगोगे तो नहीं मिलेगा। सुई के अग्र पर जितनी जमीन आ सकती है, उतनी जमीन पर भी हम तुम्हारा हक मानने को तैयार नहीं। भीख माँगो तो पाँच गाँव मिलेंगे।' भूदान में इस तरह हम भीख नहीं, हक माँगते हैं। हम 'दान' शब्द एक विशेष अर्थ में इस्तेमाल करते हैं। 'दानं समविभाग :' यह शंकराचार्य ने कहा है। दान याने सम-विभाजन या अच्छी तरह बँटवारा करना। जो काश्त करना चाहते हों उनका हक समझकर उन्हें जमीन देनी चाहिए। इसलिए भी यह पुण्यों में सर्वश्रेष्ठ पुण्य है।

जमीन की मालकियत मिटाने का विचार

हिन्दुस्तान में गाँव-गाँव के धंधे टूट रहे हैं। लोगों को कुछ आधार जमीन का ही है, लेकिन जमीन की मालकियत हम रखते हैं, तो उत्पादन का साधन चंद लोगों के हाथ में आ जाता है। भूदान यज्ञ के द्वारा हम लोगों को बताना चाहते हैं कि जमीन की मालकियत मिटानी चाहिए। जमीन की मालकियत मिटाना पुण्यों में सर्वश्रेष्ठ पुण्य है।

भूदान से अशांति निवारण

एशिया भर जमीन की माँग है और जनसंख्या बढ़ रही है। चंद लोगों के हाथ में जमीन रहती है, तो बाकी लोग असंतुष्ट रहते हैं। असंतोष से हिंसा बढ़ती है। हिंसा से लड़ाई होती है और देश का कल्याण नहीं होता। भूदान से अशांति मिटती है। दुनिया एक खतरे से बचती है। इसलिए भी भी भूदान पुण्यों में सर्वश्रेष्ठ पुण्य है।

स्वराज्य गाँवों में

हिन्दुस्तान को स्वराज्य मिला, पर गाँवों को क्या लाभ हुआ ? लंदन

से दिल्ली में सत्ता आयी और कुछ मद्रास भी पहुँची, पर अभी एक गाँव में वह नहीं पहुँच पायी। दिल्ली में सूर्योदय होगा, तो क्या गाँवों में अंधेरा रहेगा ? यह कौन कबूल करेगा ? किन्तु आज तो गाँव-गाँव को बताना पड़ता है कि स्वराज्य आया है। सूर्य की किरणें ब्राह्मण, हरिजन, अमीर, गरीब, हिंदू, मुसलमान सबके घरों में प्रवेश करती हैं। शहरों में भी प्रवेश करती है और देहातों में भी। अगर भूमिहीनों में जमीन बँटेगी, तो स्वराज्य की किरणें सूर्य की किरणों के समान घर-घर में पहुँच जायँगी। हर मनुष्य महसूस करेगा कि स्वराज्य आया है, कोई बड़ा और महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। इसलिए भी भूदान का काम सब पुण्यों में श्रेष्ठ पुण्य है।

दुनिया को राह मिलेगी

आज दुनिया की हालत बिलकुल डाँवाडोल है। छोटे-छोटे मसलों पर राष्ट्रों के बीच बड़े-बड़े वाद-विवाद और लड़ाइयाँ हो सकती हैं। बड़े-बड़े शस्त्रास्त्र बनाये गये हैं, पर उनसे बड़े-बड़े सवाल हल होंगे, यह विश्वास नहीं रहा। उधर हाइड्रोजन बम है, इधर ऐटम बम है। फिर भी उससे कोई प्रश्न हल नहीं हो रहा है। ऐसी स्थिति में अगर हम यह सिद्ध कर दें कि बड़े-बड़े मसले शांति से सिद्ध हो सकते हैं, तो दुनिया बच जायगी, इसमें कोई शक नहीं। हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी समस्या जमीन की है। अगर वह सुन्दर तरीके से हल हो, तो उससे दुनिया को अच्छी राह मिले। इसलिए भी यह पुण्यों में श्रेष्ठ पुण्य है।

मेट्टू पालेयम
१९-९-'५६

हर देश की अपनी-अपनी विशेषता होती है। हमारे देश की विशेषता है कि वह महापुरुषों के पीछे जाना चाहता है। यहाँ बड़े-बड़े राजा-महाराजा, सेनापति और सेठ-साहूकार हुए। लोग कभी-कभी उनसे भय करते और उनसे डरते भी रहे हैं। यहाँ उनकी सत्ताएँ भी चलीं। लेकिन देश ने अपना आचरण कभी भी उनके मुताबिक नहीं रखा। लोग उनके नाम तक याद न रख सके। लोगों के हृदय पर उनकी सत्ता न चल पायी। भारतीय लोक-हृदय पर एकमात्र महापुरुषों का ही असर हुआ। यहाँ के लोग नम्मालवार, माणिकवाच्यकम्, शंकर, रामानुज, बुद्ध, महावीर, चैतन्य, नानक या कबीर को याद करेंगे, लेकिन अकबर को भूल जायँगे। बुद्ध को याद करेंगे, लेकिन अशोक को भूल जायँगे। यद्यपि अशोक और अकबर राजा के नाते बड़े अच्छे राजा थे, फिर भी वे आदर्श पुरुष नहीं थे। हम उनके पीछे चलें, उनका अनुकरण करें, ऐसी कोई भावना लोगों में नहीं थी। गीता ने भी लिख रखा है : "यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः"—जैसे महापुरुष बरतता है, वैसे ही लोग बरतते हैं।

हिन्दुस्तान की बुद्धिमान जनता

इसका यह मतलब नहीं कि यहाँ के लोग अपना दिमाग चलाना ही नहीं चाहते हैं, बल्कि लोग अपना दिमाग चलाते और मूल्य को पहचानते हैं। हमारे समाज में गलत मूल्य नहीं चलते। गांधीजी आये और लोगों ने उन्हें माना, क्योंकि उन्होंने देखा कि गांधीजी का चरित्र महापुरुषों के चरित्र के समान है। उनकी सत्यनिष्ठा, करुणा, गरीबों के लिए प्रेम, त्याग, सादगी, फकीरी आदि सारी चीजें महापुरुष की चीजें थीं। गांधीजी में अनेक शक्तियाँ थीं, परंतु उनकी दूसरी-तीसरी शक्तियों के लिए लोग उनके पीछे नहीं चले, बल्कि उनके भक्तिज्ञान-वैराग्य का अंश उसके ही पीछे लोग गये थे। यह हिन्दुस्तान

में हर जगह दीख पड़ता है। केवल तमिलनाड और कर्नाटक में ही नहीं, काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक यह भावना दीखती है।

अवश्य ही भारत के लोगों का जीवन-स्तर नीचा है, परन्तु चिंतन का स्तर बहुत ही ऊँचा है। कोई गुस्सा करता है, तो लोगों की परीक्षा में बिलकुल फेल हो जाता है। कार्यकर्ता में अहंकार हो, तो लोग उस पर आपत्ति करते हैं। याने वे नाडी ठीक से पहचान लेते हैं। उत्तम गाड़ीवान बैल को तुरत जान लेता है। हिन्दुस्तान के लोग भी फौरन पहचान लेते हैं कि मनुष्य में कितना पानी है। किसी में अहंकार दीखते ही वे यह समझ जाते हैं कि यह अनुकरणीय नहीं, चाहे कितना ही विद्वान क्यों न हो। यहाँ सत्पुरुषों की एक कसौटी बनी है। हमारे एक मित्र कह रहे थे कि यूरोप के लोगों की सेवा करना आसान है। किन्तु यहाँ हमारी सेवा करने की इच्छा होती है, परन्तु लोग एकदम उसे नहीं लेते। मेरे यह पूछने पर कि ऐसा क्यों होता है?, लोगों को सेवा लेने में क्या कष्ट है?, तो वे बोले : "ये लोग दीखने में तो मूर्ख दीखते हैं, परन्तु सेवक को कसौटी करते हैं। उसमें जरा-सा दोष दीखा, तो उसे फौरन फेल कर देते हैं।' मैंने उनसे कहा : 'हिन्दुस्तान के देहातियों की सेवा महापुरुषों ने की है। हिन्दुस्तान के महापुरुष युनिवर्सिटी बनाकर एक जगह नहीं बैठते थे, बल्कि गाँव-गाँव और घर-घर जाते और लोगों के पास जाकर ज्ञान देते-थे। वे बिलकुल नम्रता से जाते और सारा हिन्दुस्तान घूमते थे।

सतत घूमने वाले नम्र ज्ञानी

लोग कहते हैं कि रेल, हवाई जहाज के इस जमाने में भी बाबा हिन्दुस्तान भर पैदल घूम रहा है, इसलिए यह बड़ी बात दीखती है। किंतु घूमना कोई बड़ी बात नहीं। शंकर और रामानुज कितना घूमे थे? अभी हमने आप्परस्वामी का चरित्र पढ़ा। यह भला मनुष्य यहाँ से पटना गया और वहाँ एक जैन गुरु का शिष्य बनकर बरसों रहा। यह केवल ज्ञान की तलाश में घूमा। आखिर उनकी शैवधर्म में निष्ठा बढ़ी और फिर वे यहाँ वापिस लौटे। जिस जमाने में आमदरफ्त के कोई साधन न थे, उस समय वे कुल हिन्दुस्तान घूमे। आज यहाँ से

पटना जाने के लिए दो दिन लगते हैं और हवाई जहाज से तो चंद घंटों में ही जा सकते हैं। लेकिन उस जमाने में यहाँ से पटना जाने के लिए एक साल लगता था। फिर जहाँ जाना है, वहाँ के लोग हमारी भाषा भी नहीं जानते, बीच में बड़ा भारी जंगल था, इसलिए जाना और भी खतरनाक था। फिर भी ज्ञान की तलाश में, भक्ति के प्रचार में घूमे।

हमने उनका 'देवारम्' पढ़ा। उसमें उसके स्थान के अनुसार भजन दिये हैं याने जिस-जिस स्थान में उन्होंने जो-जो भजन बनाये, वे उस-उस स्थान के नाम के नीचे दिये गये हैं। उनमें १२५ स्थानों के नामों का जिक्र आता है। इन दिनों ऐसे कितने कवि होंगे, जिन्होंने १२५ स्थानों में भजन बनाये होंगे? मतलब यही कि वे सदासर्वदा घूमते ही रहते थे। वे लोगों के पास नम्रता से जाते और ज्ञान पहुँचाते थे। क्या इसके लिए उन्हें पैसा मिलता था?

सत्पुरुष ही समाज-सुधारक

चूँकि हिन्दुस्तान के लोगों के चिंतन का स्तर ऊँचा है, वे सच्चे पुरुष की पहचान करते और उसके पीछे चलते हैं, इसलिए यहाँ जितने भी सामाजिक सुधार हुए, सभी सत्पुरुषों के जरिये हुए हैं। प्राचीनकाल से लेकर आज तक आचार-विचारों में जितना परिवर्तन हुआ, कुल-का-कुछ सत्पुरुषों ने किया है। प्रायः हिन्दुस्तान के सभी लोग स्नान किये बिना दोपहर का भोजन नहीं करते, चाहे कितनी ही ठंड क्यों न हो। लोगों को यह किसने सिखाया? क्या कोई सरकारी कानून है कि स्नान न करोगे, तो सजा होगी? स्पष्ट है कि महा-पुरुषों ने ही उन्हें यह बात सिखायी। हम लोगों की सभी भावनाएँ श्रद्धा पर निर्भर हैं। महापुरुषों ने ही हमें जीवन और समाज की बातें सिखलायीं और हम उन्हीं पर अमल करते हैं। हममें जो सत्यनिष्ठा है, वह क्या किसी कानून के कारण है? 'सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात्' यह हमें महापुरुषों ने ही सिखाया। उनकी वाणी का असर हम पर हुआ है। इसीलिए हिन्दुस्तान के समाज में परिवर्तन करना आसान है। सिर्फ सज्जनों को जरा हम लोगों के साथ घुल-मिल जाना चाहिए।

सज्जन समाज से अलग न रहें

'सज्जन' समाज का मक्खन है। वह समाज को विलोकर निकाला हुआ है। अगर उस मक्खन को छाछ से अलग रखा जायगा, तो छाछ फीकी पड़ जायगी। अगर मक्खन छाछ के साथ मिला हुआ रहा तो छाछ गाढ़ी बनेगी, उसमें पुष्टि आयेगी, समाज में भी पुष्टि तभी रहती है, जब समाज के महापुरुष समाज के साथ मिले-जुले रहते हैं। किंतु बीच के जमाने में लोगों के मन पर निवृत्ति का गलत असर हुआ। समाज की तकलीफों को देख सज्जन उससे अलग गये। किन्तु जहाँ सज्जन समाज से अलग होते हैं, वहाँ दोनों का अकल्याण होता है।

थोड़ा-सा दही भी दूध में डालने पर हंडे भर दूध का दही बना देता है। लेकिन उसे दूध से अलग रखा जाय, तो न दूध 'दूध' रहेगा और न दही 'दही' ही। दूध बिगड़ जायगा और दही खट्टा होता जायगा। सज्जनों के अलग हो जाने से समाज तो बिगड़ ही जाता है। सिवा इसके समाज से अलग रहने की वृत्ति के कारण सज्जन भी उत्तरोत्तर विरक्त बनता है—खट्टा बनता है। विरक्ति तभी शोभादायक होती है, वैराग्य की तभी कीमत होती है, जब वह अनुराग के साथ हो। भक्ति और प्रेम के साथ वैराग्य रहे, तो उसमें मिठास आती है। लोगों की हम सेवा करते हों, उनपर प्रेम करें, पर अपने भोग के लिए वैराग्य रखें, तो वह अच्छा है। किन्तु 'इसकी संगति नहीं चाहिए, वह दुर्जन है, इसलिए उससे अलग रहें,' ऐसा वैराग्य हो तो वह किस काम का?

वैराग्य का मिथ्या अर्थ

आपने सुना होगा कि बड़े-बड़े पुरुष गुस्सा करते थे। हिन्दुस्तान में कई पुरुषों की कहानियाँ हैं कि वे किसी को शाप दे देते तो वह खतम हो जाता था। क्या शाप देना महापुरुष का लक्षण है? उनका लक्षण प्रेम और करुणा होगा या शाप देना? हम कितने ऋषियों के किस्से सुनते हैं कि बेचारे क्रोध से भरे थे, काम से पीड़ित थे। जहाँ समाज से बिलकुल अलग रहकर वैराग्य-भावना आती है, वहाँ क्रोध आ ही जाता है। बड़े-बड़े ऋषि भी अप्सराओं को

सज्जन समाज से अलग न रहें

'सज्जन' समाज का मक्खन है। वह समाज को बिलोकर निकाला हुआ है। अगर उस मक्खन को छाछ से अलग रखा जायगा, तो छाछ फीकी पड़ जायगी। अगर मक्खन छाछ के साथ मिला हुआ रहा तो छाछ गाढ़ी बनेगी, उसमें पुष्टि आयेगी, समाज में भी पुष्टि तभी रहती है, जब समाज के महापुरुष समाज के साथ मिले-जुले रहते हैं। किंतु बीच के जमाने में लोगों के मन पर निवृत्ति का गलत असर हुआ। समाज की तकलीफों को देख सज्जन उससे अलग गये। किन्तु जहाँ सज्जन समाज से अलग होते हैं, वहाँ दोनों का अकल्याण होता है।

थोड़ा-सा दही भी दूध में डालने पर हंडे भर दूध का दही बना देता है। लेकिन उसे दूध से अलग रखा जाय, तो न दूध 'दूध' रहेगा और न दही 'दही' ही। दूध बिगड़ जायगा और दही खट्टा होता जायगा। सज्जनों के अलग हो जाने से समाज तो बिगड़ ही जाता है। सिवा इसके समाज से अलग रहने की वृत्ति के कारण सज्जन भी उत्तरोत्तर विरक्त बनता है—खट्टा बनता है। विरक्ति तभी शोभादायक होती है, वैराग्य की तभी कीमत होती है, जब वह अनुराग के साथ हो। भक्ति और प्रेम के साथ वैराग्य रहे, तो उसमें मिठास आती है। लोगों की हम सेवा करते हों, उनपर प्रेम करें, पर अपने भोग के लिए वैराग्य रखें, तो वह अच्छा है। किन्तु 'इसकी संगति नहीं चाहिए, वह दुर्जन है, इसलिए उससे अलग रहें,' ऐसा वैराग्य हो तो वह किस काम का?

वैराग्य का मिथ्या अर्थ

आपने सुना होगा कि बड़े-बड़े पुरुष गुस्सा करते थे। हिन्दुस्तान में कई पुरुषों की कहानियाँ हैं कि वे किसी को शाप दे देते तो वह खतम हो जाता था। क्या शाप देना महापुरुष का लक्षण है? उनका लक्षण प्रेम और करुणा होगा या शाप देना? हम कितने ऋषियों के किस्से सुनते हैं कि बेचारे क्रोध से भरे थे, काम से पीड़ित थे। जहाँ समाज से बिल्कुल अलग रहकर वैराग्य-भावना आती है, वहाँ क्रोध आ ही जाता है। बड़े-बड़े ऋषि भी अप्सराओं को

('फेलोशिफ ऑफ रीकन्सिलिएशन' के सदस्यों के साथ शंकासमाधान') 'फेलोशिप आफ रीकन्सिलिएशन' के सदस्यों ने कहा कि 'प्रभु ईसा के बताये हुए प्रेम के मार्ग के अनुसार 'रीकन्सीलिएशन' (समन्वय या समाधान) की कोशिश करना ही हमारा मकसद है।'

रसूलों में कोई फर्क नहीं

इस पर बाबा ने कहा : यह ठीक है कि ईसा की राह केवल ईसाइयों के लिए नहीं, बल्कि कुल दुनिया के लिये लागू है। बाबा का भी दावा है कि वह ईसा की राह पर चल रहा है। यद्यपि वह प्रार्थना करता है, गीता पढ़ता है, फिर भी उसका यही दावा है। बाबा ईसाइयों के बीच प्रार्थना करता है और जब दिल्ली के पास मुसलमानों के बीच काम करता था, तब उनकी प्रार्थना में भी शामिल हो जाता था। इसलिए जो सच्ची राह है, चाहे वह हिन्दुस्तान के ऋषियों द्वारा, ईसा द्वारा या मुहम्मद पैगम्बर द्वारा बतायी हो, वह एक ही है। कुरान में एक सुन्दर आयत आती है—'हम किसी भी रसूल में फर्क नहीं करते।' दुनिया में सिर्फ मुहम्मद ही रसूल नहीं हैं, दूसरे भी कई रसूल हो गये हैं। ईसा भी एक रसूल है और मूसा भी, और भी दूसरे रसूल है, जिनका नाम भी हम नहीं जानते। 'हम रसूलों में कोई फर्क नहीं करते,' यह इस्लाम का 'फेथ' है। हम समझते हैं कि हम हिन्दुओं का भी यही 'फेथ' है। वे कहते हैं कि दुनिया के सत्पुरुषों ने जो राह दिखाई है, वह एक ही है। जो भेद पैदा होते हैं, वे हमारी संकुचित वृत्ति के कारण ही। अगर आप हमसे पूछेंगे कि क्या आपका 'सरमन ऑन दी माउंट' पर विश्वास है ? तो हम कहेंगे कि जी हाँ, है। मुझे उस किताब में ऐसी कोई चीज नहीं मिली, जो हिंदू-धर्म के खिलाफ हो। इसलिए हिंदू होने के नाते मैं उस पर श्रद्धा रखता हूँ। आप ईसा का नाम लेते हैं, क्योंकि वे आपके गुरु हैं। कोई मुहम्मद का नाम लेते

दोष दीखेंगे। फिर हम क्या करेंगे? इसलिए समाज के साथ एकरूप होने में ही समाज का भी भला है और सज्जनों का भी भला है।

हमारे काम का मध्यबिन्दु सत्पुरुष

हम बहुत बार कहते हैं कि भूमिदान में हम भूमि इकट्ठा करने के लिए नहीं निकले हैं। हम तो 'सज्जन-संघ' बनाना चाहते हैं, सज्जनों को खींचना चाहते हैं। जो केवल करुणा से भरे, लोकसेवा में जीवन व्यतीत करने में ही खुशी माननेवाले तथा व्यक्तिगत अहंकार से रहित जितने सज्जन हम इकट्ठा करेंगे, उतना ही यह काम जल्दी होगा। कोई कहते हैं कि कांग्रेस या सरकार की मदद मिलेगी, तो काम जल्दी होगा। हम कहते हैं: 'जो हमें मदद दे सकें, सबकी मदद लेने के लिए हम राजी हैं। किंतु हमारा न सरकार पर विश्वास है, न कांग्रेस पर और न किसी दूसरी संस्था पर। हमारा विश्वास तो सत्पुरुषों के हृदय पर है। ऐसे सत्पुरुष कांग्रेस में है, सरकार में हैं और दूसरी संस्थाओं में भी। हमारा संबंध उन सत्पुरुषों से है, उन संस्थाओं से नहीं। हमारा ध्यान हमेशा व्यक्तियों की तरफ रहता है। हमें ऐसे जितने सज्जनों का सहवास मिलेगा, उतना ही यह काम बढ़ेगा।'

भूदानयज्ञ से हिन्दुस्तान की सज्जनता जाग उठी है। कितने ही लोगों ने इसमें अपना सर्वस्व दे दिया है। अभी आप बाबा को घूमते देखते हैं। परन्तु दूसरे प्रान्तों में ऐसे कई लोग सब प्रकार की व्यक्तिगत कामनाओं को छोड़कर घूम रहे हैं। फिर उनके पीछे दूसरे भी आते हैं। बड़ा काम सबकी मदद से होता है, किंतु इसका मध्यबिंदु है सत्पुरुष। हम ग्रामदान की बात करते हैं, परन्तु ग्रामदान तभी टिकेगा, जब उसके पीछे कोई सत्पुरुष हो। फिर गाँव की भी समस्याएँ उसके जरिये हल हो सकती हैं।

मेक पालेयम्
२०-१-५६

('फेलोशिप ऑफ रीकन्सिलिएशन' के सदस्यों के साथ शंकासमाधान') 'फेलोशिप आफ रीकन्सिलिएशन' के सदस्यों ने कहा कि 'प्रभु ईसा के बताये हुए प्रेम के मार्ग के अनुसार 'रीकन्सीलिएशन' (समन्वय या समाधान) की कोशिश करना ही हमारा मकसद है।'

रसूलों में कोई फर्क नहीं

इस पर बाबा ने कहा : यह ठीक है कि ईसा की राह केवल ईसाइयों के लिए नहीं, बल्कि कुल दुनिया के लिये लागू है। बाबा का भी दावा है कि वह ईसा की राह पर चल रहा है। यद्यपि वह प्रार्थना करता है, गीता पढ़ता है, फिर भी उसका यही दावा है। बाबा ईसाइयों के बीच प्रार्थना करता है और जब दिल्ली के पास मुसलमानों के बीच काम करता था, तब उनकी प्रार्थना में भी शामिल हो जाता था। इसलिए जो सच्ची राह है, चाहे वह हिन्दुस्तान के ऋषियों द्वारा, ईसा द्वारा या मुहम्मद पैगम्बर द्वारा बतायी हो, वह एक ही है। कुरान में एक सुन्दर आयत आती है—'हम किसी भी रसूल में फर्क नहीं करते।' दुनिया में सिर्फ मुहम्मद ही रसूल नहीं हैं, दूसरे भी कई रसूल हो गये हैं। ईसा भी एक रसूल है और मूसा भी, और भी दूसरे रसूल हैं, जिनका नाम भी हम नहीं जानते। 'हम रसूलों में कोई फर्क नहीं करते,' यह इस्लाम का 'फेथ' है। हम समझते हैं कि हम हिन्दुओं का भी यही 'फेथ' है। वे कहते हैं कि दुनिया के सत्पुरुषों ने जो राह दिखाई है, वह एक ही है। जो भेद पैदा होते हैं, वे हमारी संकुचित वृत्ति के कारण ही। अगर आप हमसे पूछेंगे कि क्या आपका 'सरमन ऑन दी माउंट' पर विश्वास है? तो हम कहेंगे कि जी हाँ, है। मुझे उस किताब में ऐसी कोई चीज नहीं मिली, जो हिंदू-धर्म के खिलाफ हो। इसलिए हिंदू होने के नाते मैं उस पर श्रद्धा रखता हूँ। आप ईसा का नाम लेते हैं, क्योंकि वे आपके गुरु हैं। कोई मुहम्मद का नाम लेते

हैं। मैं अपनी माँ का नाम लेता हूँ, आप अपनी माँ का नाम लेते हो, दोनों में फर्क नहीं है, दोनों का रास्ता एक ही है।

छोटी चीजों पर मतभेद

सभी सत्पुरुषों ने, जिन्होंने धर्म-संस्थापना की, दुनिया को एक ही रास्ता बताया है। फिर भी कहीं अगर भेद हों, तो वे परिस्थिति के कारण ही होते हैं। सवाल उठाया जाता है कि पश्चिम की तरफ मुँह किया जाय या पूरब की तरफ? हिंदू सूर्य की ओर देखते हैं, इसलिए वे सुबह प्रार्थना करने के लिए बैठेंगे, तो पूरब की तरफ मुँह करेंगे और शाम को पश्चिम की तरफ। मुसलमान कहते हैं, जिधर काबा हो, उधर मुँह कर के बैठना चाहिए। चाहे सूर्य पीछे हो या सामने, पर 'काबा' सामने होना चाहिए। काबा उनका एक धर्मस्थान है, उसके स्मरण से उन्हें अच्छा लगता है, तो उससे मेरा क्या बिगड़ता है? ये सब साधारण बातें हैं, ऊपरी फर्क हैं, उनसे धर्म का कोई संबंध नहीं। परमेश्वर में सत्य, प्रेम, करुणा, दया आदि गुण हैं, जितना प्रेम अपने पर करते हो, उतना ही दूसरों पर करो, आदि सब बातें ऐसी हैं, जो सभी सत्पुरुष बताते हैं। लेकिन हमारा इतने से संतोष नहीं होता। कोई कहते हैं कि घुटने टेक कर ही प्रार्थना करनी चाहिए, तो दूसरे कहते हैं, पद्मासन लगाकर ही प्रार्थना करें। हम कहते हैं कि आप जो चाहे सो करो, मुझे दोनों चीजें एक-सी मालूम होती हैं। अपनी यात्रा में हम पहले सुबह १२-१४ मील चलते थे, लेकिन आजकल दिन में दो बार चलते हैं। पहले हम सुबह की प्रार्थना भी चलते-चलते करते थे, जिससे समय बच जाय। सुबह कूच मार्च हो, तो प्रार्थना शुरू होती थी। कुछ लोग कहते हैं कि खड़े-खड़े या चलते-चलते प्रार्थना करना ठीक नहीं, प्रार्थना के लिए बैठना ही चाहिए। हम कबूल करते हैं कि बैठने से प्रार्थना अधिक शांति से हो सकती है, पर चलते-चलते प्रार्थना करें, तो भी उसमें कोई गलती है, ऐसा हम नहीं मानते। बीच में हमने चर्खा कातते-कातते प्रार्थना चलायी थी। कुछ लोगों को वह ठीक नहीं लगा। हमने उनसे पूछा : 'प्रार्थना के साथ वीणा चलेगी या नहीं?'

उन्होंने कहा : 'हाँ चलेगी।' वे हिंदू थे, इसलिए प्रार्थना के साथ वीणा को स्वीकार कर सकते थे। फिर मैंने पूछा : 'वीणा चलेगी, तो सूतकताई क्यों नहीं ?', इस तरह छोटी-छोटी चीजों में मतभेद होता है। उसे हम धर्म नहीं, रिवाजों का मतभेद मानते हैं। इसलिए धर्म की असली राह एक ही है। इसलिए हमें उसमें कोई फर्क नहीं मालूम होता। क्या यह बात आपको जँचती है ?

एफ० ओ० आर० के भाइयों ने जवाब दिया कि 'जी हाँ, जँचती है।'

फिर एक भाई ने सवाल पूछा : 'आप कहते हैं कि सत्य, प्रेम, करुणा आदि परमेश्वर के गुण हैं। इस तरह गुणवाले सगुण भगवान् का अद्वैत के साथ कैसे मेल बैठ सकता है ? अद्वैत ही हिंदूधर्म का प्रमुख विचार है न ?'

हिंदू-धर्म और अद्वैत

विनोबाजी ने कहा : यह बहुत ही सूक्ष्म विषय है। परमेश्वर के गुणों और स्वरूपों का विश्लेषण करने में बड़े-बड़े तत्त्वज्ञानियों में पंथ हो गये। वह इतना व्यापक है कि हर एक मनुष्य को उसके एक ही बाजू का दर्शन होता है। इसलिए कोई द्वैत मानते हैं, तो कोई अद्वैत मानते हैं। हिंदू धर्म का अद्वैत के साथ कोई संबंध नहीं। उनमें से कुछ लोग 'अद्वैत' को मानते हैं, वे भी हिंदू हैं और कुछ 'विशिष्ट द्वैत', वे भी हिंदू हैं। कुछ लोग 'द्वैताद्वैत' को मानते हैं, वे भी हिंदू हैं और कुछ लोग 'द्वैत' को, वे भी हिंदू हैं। कुछ लोग 'निर्गुण परमेश्वर' को मानते हैं और वे भी हिंदू हैं। हिंदू धर्म ऐसा है कि वह इन सब को निगल जाता है। किंतु जहाँ हम प्रार्थना के लिए परमेश्वर के सामने बैठते हैं, वहाँ वह सत्य, प्रेम, करुणा आदि गुणों से भरा है, ऐसा कहने में किसी भी अद्वैती के साथ कोई झगड़ा नहीं हो सकता। जहाँ तक प्रार्थना और विचार का ताल्लुक है, वह कहेगा कि परमेश्वर से हम बिलकुल अलग हैं, ऐसी बात नहीं।

मैं आपको एक मिसाल देता हूँ। अद्वैत के महान् आचार्य शंकराचार्य थे। उन्होंने एक जगह कहा है, 'प्रभो, यद्यपि अभेद है, भेद नहीं, तो भी तू मेरा स्वामी है, मैं तेरा स्वामी नहीं।' फिर उन्होंने मिसाल दी कि समुद्र की

तरंगें होती हैं, तरंगों का समुद्र नहीं। बल्कि तरंगें तो उसमें आती-जाती हैं, पर समुद्र कायम रहता है। तू समुद्रतुल्य है, मैं तो उसकी एक तरंग :

'सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः॥'

यह शंकराचार्य का अद्वैत। लेकिन यह मानना, न मानना 'फिलासफिकल' (दार्शनिक) बात हो जाती है। हम नहीं समझते कि इससे कोई फर्क पड़ता है। हमें तो ऐसी आदत पड़ी है कि हम एक ही भोजन में दाल, भात, रोटी, दूध सब एक साथ खा लेते हैं। हम एक साथ द्वैत भी खाते हैं, अद्वैत भी। हमारी पचनेन्द्रिय इतनी मजबूत है कि दोनों हजम कर सकते हैं। जिसकी पचनेन्द्रिय मजबूत नहीं, वह एक ही चीज खाये। इसमें कोई विरोध नहीं हो सकता।

अद्वैती का किसी के साथ झगड़ा नहीं

आप हमें समझाना चाहते हों तो समझाइये, आपको समझाने का हक है। रामानुज शंकर को समझाता है और शंकर रामानुज को। इस तरह की चर्चाएँ तो चलेंगी ही। उसमें विचारभेद भी रहेगा, क्योंकि वहाँ अनुभव का सवाल आता है। अगर किसी को अनुभव हुआ कि मैं ईश्वर के साथ एकरूप हूँ, तो कौन उसे क्या कहेगा? और किसीको अनुभव आये कि 'ईश्वर में और मुझमें जरा अंतर है', तो उसे भी कौन क्या कह सकता है? मैं आपको एक मिसाल देता हूँ। इस्लाम में परमेश्वर को स्वामी और अपने को भक्त माना जाता है। किंतु उनमें भी 'सूफी' ऐसे निकले, जो कहते थे कि 'अनलहक'—'मैं ही वह हूँ'। परिणाम यह हुआ कि 'मन्सूर' नाम के एक महापुरुष पर मुसलमानों ने पत्थर फेंके, सिर्फ इसीलिए कि वह कहता था कि 'मैं और वह एक हैं।' वे उसे पत्थर मारते गये और वह यही बोलता गया। आखिर बोलते-बोलते वह मर गया।'

अब आप क्या कहना चाहते हैं? यह तो अंदर के अनुभव की बात है। इसे हम खुला रखना चाहते हैं, इसे बंद करना गलत है। हम अपने लिए एक

बात माने और आपके लिए दूसरी। हम यह न कहें कि यही सही है और वह गलत। बल्कि यही कहें कि यह भी सही है और वह भी सही। मैं 'भी' माननेवाला हूँ, जहाँ तक ईश्वर के स्वरूप और अपने जीवन का संबंध है, वहाँ 'ही' मानता हूँ। सत्य-प्रेम आदि के बारे में शंकर और रामानुज में कोई भेद नहीं। जान का 'गास्पेल' और मैथिव का 'गास्पेल', दोनों बिलकुल एकरूप हैं, यह कहना मुश्किल है। मैंने कई ईसाइयों के साथ इस बारे में चर्चा की है। उनसे मैंने पूछा कि क्या जो 'पोजीशन' 'जान' की है, वही 'मैथिव' की है या दोनों में कुछ भेद है? वे कहते हैं कि हाँ, कुछ भेद है। फिर भी वह ऐसा भेद नहीं कि विरोध आ जाय! इसी तरह द्वैत और अद्वैत में विरोध नहीं है। एक महान् अद्वैती ने कहा है: 'स्वसिद्धान्त व्यवस्थासु द्वैतिनो निश्चिता दृढम्। परस्परं विरुद्ध्यन्ते तैरयम् न विरुद्ध्यते।'

अर्थात् 'एक द्वैती का दूसरे द्वैती के साथ विरोध हो सकता है, पर मैं अद्वैती हूँ, इसलिए मेरा आपके साथ कोई विरोध नहीं।' इसी का नाम है अद्वैत। जहाँ द्वैत आता है, वहाँ झगड़ा आ सकता है, पर अद्वैत में कोई झगड़ा नहीं रहता। आपको झगड़ा करने का हक है, क्योंकि आप द्वैती है। पर मुझे झगड़ा करने का हक नहीं, क्योंकि मैं अद्वैती हूँ। आप काबा की तरफ मुँह कर प्रार्थना करना चाहें, तो करें, अरबी में प्रार्थना करना चाहें, तो अरबी में करें, 'हिब्रू' में करना चाहें, तो हिब्रू में करें, इतवार के दिन प्रार्थना करना चाहें, तो इतवार के दिन करें और प्रार्थना न करना चाहें, तो न भी करें—इसी का नाम है अद्वैत। इसलिए इसका किसी के साथ झगड़ा ही नहीं हो सकता। आप कह सकते हैं कि ऐसा अद्वैती बेकाम है। वह बेकाम हो सकता है, पर उसका आपके साथ झगड़ा नहीं हो सकता।

इस पर एक भाई ने कहा: 'देअर इज ए डिफरन्स बिट्वीन् नो क्वारल्स बीइंग रिकन्साइल्ड। व्हेन यू आर रिकन्साइल्ड, यू आर वन्।' (झगड़े का समाधान न कराने और स्वयं समाहित हो जाने में अन्तर तो है ही। कारण, समाहित स्वयं आप ही होते हैं।)

समन्वय का तरीका

विनोबाजी ने कहा : इसके लिए उपाय हो सकता है। आपको काशी जाना है और हमें काश्मीर, तो इसमें कोई झगड़ा नहीं हो सकता। काशी तक हम दोनों साथ जायँगे। आगे मैं काश्मीर जाऊँगा और आपको इन्दौर जाना हो, तो आप उधर जायँगे। आगे की बात अनुभव की है। मैं आपको समझा सकता हूँ कि इंदौर जाना अच्छा नहीं है, हमारे साथ काश्मीर ही चलिये। आप भी मुझे समझा सकते हैं कि काश्मीर में बहुत ठंड होती है, इसलिए इंदौर ही चलिये। अगर मुझे आपकी बात जँची, तो वहाँ से मैं इंदौर चलूँगा। यह तो अनुभव की लेन-देन है। विस्तृत क्षेत्र (वायर स्फियर) में फर्क पड़ सकता है, परंतु प्रेम, भक्ति आदि में कोई फर्क नहीं। मैंने आपके सामने एक 'कान्क्रीट' चीज रखी है। 'मैथिव' और 'जान' में फर्क है न ?, इसका उत्तर कोई ईसाई नहीं दे सकता। उनमें से एक का 'स्टैण्ड' बिलकुल नैतिक (मॉरल) है और दूसरे का भिन्न है। तो आप मानेंगे न, कि दोनों में इतना फर्क है ? मैं कहता हूँ कि अगर फर्क न हो, तो लिखा ही किसलिए ? लेकिन आप 'जान' और 'मैथिव' में रिकन्साइल (समन्वय) कर सकते हैं।

एक भाई ने कहा : 'वी वाण्ट टु नो दी मेथड आफ रिकंसिलिएशन' (हम समाधान कराने की पद्धति जानना चाहते हैं)।

विनोबाजी ने कहा : जहाँ तक नैतिक सवाल और जन-सेवा, प्रेम, करुणा आदि बातें हैं, वहाँ तक हम एक हैं। आखिर 'हिन्दुइज्म' क्या है ? एक ओर यह अद्वैत को ग्रहण करता है तो दूसरी ओर नास्तिकों को। कपिल महामुनि हिंदू थे, पर वे ईश्वर को नहीं मानते। शंकराचार्य अद्वैती थे, वे ईश्वर और जीव को एक मानते थे। रामानुज की पोजीशन शंकराचार्य की पोजीशन से कुछ भिन्न थी, परंतु दोनों हिंदू थे। लेकिन कपिल महामुनि की पोजीशन तो बिलकुल ही भिन्न थी। वे कहते थे, 'ईश्वर है ही नहीं। जो कुछ है, मैं ही हूँ।' इस तरह तीन 'पोजीन्स' थीं, फिर भी तीनों का हिंदूधर्म में समन्वय हुआ। तब क्या हिंदू और ईसाई समन्वित नहीं हो सकते ?

इसपर एक भाई ने कहा : हम दोनों कम्युनिटीज् (समुदायों) की सेवा करना चाहते हैं, उनकी मदद करना चाहते हैं।

पाप से नफरत, पापी से नहीं

विनोबाजी ने कहा : बापू ने यह बहुत अच्छी तरह समझाया है कि हमें *मनुष्यों का नहीं, उनके गलत कामों का विरोध करना है। मनुष्यों से तो प्रेम ही करना है।* कोई कितना ही दुर्जन या पापी हो, फिर भी उस से प्रेम ही करना है। क्योंकि हम भी अंदर से पाजी हैं। इसलिए हम किसी से नफरत नहीं, सबसे प्रेम करेंगे। लेकिन जो पापी काम है, उसका विरोध करेंगे।

सर्वोदय के लिए अहिंसा

आपने 'रिकंसाइल' शब्द गलत इस्तेमाल किया है। आप कहना चाहते हैं कि समाज में स्वार्थ के लिए संघर्ष होते हैं, तो उस हालत में हम सबका भला कैसे करें ? याने सर्वोदय कैसे हो ? आज समाज में स्पर्धा, परस्पर-विरोध चलता है, हरएक एक दूसरे को तोड़ना चाहता है, हम एक को आनंद पहुँचाते हैं, तो दूसरे को तकलीफ होती है। *ऐसे परस्पर विरोधी स्वार्थों की हालत में हम कैसे काम करें, ताकि सर्वोदय बन सके, यही आपका सवाल है न ?* तो फिर इसके लिए *अहिंसा को लाना होगा, प्रेम से काम करना होगा।* यह ऐसा सवाल है, जिसका उत्तर कठिन नहीं। वह उत्तर आप भी जानते हैं और हम भी। वह है, जो हमारा विरोध करता है, हम उससे प्रेम करें।

एक भाई ने कहा : 'पीपल् डू नाट फील दैट इट इज प्रैक्टिकेबल' (लोग इसे व्यावहारिक नहीं मानते)।

दुर्जनों के सामने अहिंसा अधिक कारगर

विनोबाजी ने कहा : प्रेम को द्वेष के क्षेत्र में ही काम करने में आनंद आता है। *सामने घना अँधेरा हो, तो दीपक को खुशी होती है, क्योंकि घने अँधेरे में वह अधिक चमकता है।* एक जापानी भाई ने हमसे सवाल पूछा था कि 'गांधीजी की अहिंसा अंग्रेजों के सामने चली, क्योंकि अंग्रेज कुछ भलाई भी

जानते थे। किंतु क्या हिटलर के खिलाफ अहिंसा चलेगी ?' मैंने जवाब दिया : 'अगर हममें सचमुच अहिंसा है, तो हिटलर के सामने वह ज्यादा चलेगी। क्योंकि वह घना अंधकार है, इसलिए वहाँ दीपक ज्यादा चमकेगा क्योंकि पूर्ण विरोध हो जाता है। इसलिए सामने अगर हिटलर हो, तो अहिंसा और प्रेम के लिए वहाँ कार्य आसान है। परंतु सामने अगर सज्जन है और उसमें कुछ दोष है, तो वह कठिन मामला हो जाता है।

इस पर एक भाई ने कहा : 'हरएक में कुछ-न-कुछ भलाई होती ही है। फिर आप किसी को 'सिविल' कैसे कहते हैं ?

विनोबाजी ने कहा : आपने अब दार्शनिक पोजीशन ली। लेकिन मैं तुलनात्मक बात कर रहा हूँ कि एक मनुष्य में जितने गुण होते हैं, उतने दूसरे में नहीं। एक में ज्यादा द्वेष होता है, तो दूसरे में कम। जो ज्यादा द्वेषी, ज्यादा पापी, ज्यादा जुल्म करनेवाला है, उसके खिलाफ काम करने में अहिंसा को ज्यादा आनंद आयेगा। अंग्रेजों का मुकाबला करने में अहिंसा को ज्यादा समय याने पचीस साल लगे, लेकिन हिटलर का मुकाबला करने के लिए तो पाँच ही साल लगेंगे। उस जापानी भाई को लगा कि यहाँ अहिंसा इसीलिए सफल हुई कि अंग्रेजों में कुछ भलाई थी। मैंने कहा कि उनमें भलाई थी, इसीलिए पचीस साल लगे। उनमें भी कुछ भलाई थी और हममें भी थी, इसलिए ज्यादा समय लगा। किंतु सामने ऐसा दुश्मन हो, जिसमें दोष ज्यादा हो और गुण कम, तब तो हम उसे बहुत जल्दी जीत लेंगे।

पेरियनायकम् पालैयम
२१-९-'५६.

इसी पर है। इसीलिए यज्ञ, अध्ययन और दान तीनों चीजों की उसमें जरूरत है। याने गृहस्थाश्रम में यज्ञ और दान तो है ही। और तीनों के बीच अध्ययन का काफी महत्व है, और वह अत्यावश्यक है। उपनिषद ने इस पर और जोर दिया। कहा है 'शुचौ देशे स्वाध्यायम् अधीयान: ।' अर्थात् अपने घर में एक पवित्र जगह बनाये और वहाँ बैठकर स्वाध्याय करे। सारांश, अध्ययन गृहस्थाश्रम में रखा गया है।

मनुष्य को जीवन के लिए अनेक साधन बनाये गये हैं : तप, दान, अतिथि-सेवा आदि। किंतु हर साधन के साथ अध्ययन-अध्यापन जोड़ा गया है। बार-बार कहा है, ऋतम् होना चाहिए और साथ में स्वाध्याय भी। सत्य होना चाहिए और साथ में स्वाध्याय भी। और इन्द्रियों का दमन होना चाहिए और साथ में स्वाध्याय भी। बार-बार एक-एक साधन का नाम लेकर उसके साथ स्वाध्याय जोड़ दिया गया है। 'ऋतञ्च स्वाध्याय प्रवचनेच, सत्यंच स्वाध्याय प्रवचनेच'। इस तरह अध्ययन-अध्यापन को इतना महत्व दिया गया है। ब्रह्मचर्य में भी इसका महत्व है। ज्ञानप्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्य की आवश्यकता मानी गयी है : 'सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा, सम्यक् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।' अर्थात् सम्यक् ज्ञान के लिए ब्रह्मचर्य चाहिए, इस तरह ब्रह्मचर्य में अध्ययन को महत्व दिया गया है।

इसके बाद इंद्रिय, बुद्धि और मन का विकास करने की बात है। किसी विशिष्ट इंद्रिय का निग्रह करना, इतना ही स्थूल अर्थ नहा है। वाणी और बुद्धि का उत्तम उपयोग होना, कान से अच्छी चीजें सुनना, खूब ज्ञान-श्रवण करना, यह सब चीजें ब्रह्मचर्य में आ जाती हैं। तुलसीदासजी ने बड़ा सुन्दर वर्णन किया है :

> जिनके श्रवण समुद्र समाना, कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ॥
> भरहिं निरन्तर होहि न पूरे ।,

समुद्र में असंख्य नदियाँ जाती हैं, फिर भी वह भरता नहीं, इसी तरह अनन्त हरिकथा, हरिचर्चा सुनते-सुनते भी हमारे कान भर जायँ। इसके सिवा सतत ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। इस तरह ब्रह्मचर्य की बड़ी व्यापक और भावात्मक कल्पना है।

त्याग याने बीज बोना

यही बात त्याग पर लागू होती है। त्याग करना याने 'फेंक देना', इतना ही अर्थ नहीं। त्याग करने का अर्थ है बोना, बीज अगर ऐसे ही फेंक देंगे तो फसल न उगेगी या कम उगेगी। किंतु ठीक से बोया जाय, तो फसल अच्छी तरह उगेगी। इसलिए त्याग का मतलब है बीज बोना। उसमें से खूब पैदावार होगी। जन-समाज के लिए जो त्याग किया जाता है, वह बोना ही है। इसललिए त्याग की व्याख्या भी भावरूप है।

त्याग के साथ क्रोध नहीं हो सकता

हम लोगों से कहते हैं कि अपनी जमीन, संपत्ति और बुद्धि का छठा हिस्सा समाज को दीजिये। यह त्याग की बात है। हम यही चाहते हैं कि हिन्दुस्तान में खूब प्रेम बढ़े, फसल बढ़े, लक्ष्मी बढ़े, शांति बढ़े। अगर हम प्रेम से गरीबों को एक हिस्सा देते हैं, तो समाज एकरस बनता है, ताकत बढ़ती है, काम करनेवालों को प्रेम मिलता है, प्रेम के साथ मसला हल होता है, शान्ति की स्थापना होती है। यह सारा त्याग से होता है। इसलिए गीता ने त्याग की कसौटी बतायी है। त्याग में से शान्ति होगी। किसी ने बहुत त्याग किया, कोई-कोई अत्यन्त त्यागी होने के साथ ही बहुत क्रोधी भी दीखते हैं। वह बात-बात में चिढ़ता है और दूसरों की सीधी-सी बात भी सुनना नहीं चाहता। अधिक त्यागी होने के कारण उसके क्रुद्ध होने पर डर लगता है कि कहीं किसी को शाप न दे दे। इस तरह त्याग के साथ क्रोध आने का कारण यही है कि वह त्याग 'निगेटिव' होता है। ऐसे लोग 'यह छोड़ो, वह छोड़ो' कह कर चीजें त्यागते हैं, जिससे उन्हें त्याग का अहंकार हो जाता है और गुस्सा भी आता है। इस तरह जहाँ त्याग के साथ क्रोध आता है, वह त्याग ही नहीं है। त्याग से तो शांति उत्पन्न होनी चाहिए। त्याग जबरदस्ती से नहीं हो सकता।

क्रान्ति का भावात्मक कार्य

इन दिनों क्रांन्ति की बात चलती है। कहते हैं, लोगों के दिमागों में

इसी पर है। इसीलिए यज्ञ, अध्ययन और दान तीनों चीजों को उसमें जरूरत है। याने गृहस्थाश्रम में यज्ञ और दान तो है ही। और तीनों के बीच अध्ययन का काफी महत्व है, और वह अत्यावश्यक है। उपनिषद ने इस पर और जोर दिया। कहा है 'शुचौ देशे स्वाध्यायम् अधीयानः।' अर्थात् अपने घर में एक पवित्र जगह बनाये और वहाँ बैठकर स्वाध्याय करे। सारांश, अध्ययन गृहस्थाश्रम में रखा गया है।

मनुष्य को जीवन के लिए अनेक साधन बनाये गये हैं : तप, दान, अतिथि-सेवा आदि। किंतु हर साधन के साथ अध्ययन-अध्यापन जोड़ा गया है। बार-बार कहा है, ऋतम् होना चाहिए और साथ में स्वाध्याय भी। सत्य होना चाहिए और साथ में स्वाध्याय भी। और इन्द्रियों का दमन होना चाहिए और साथ में स्वाध्याय भी। बार-बार एक-एक साधन का नाम लेकर उसके साथ स्वाध्याय जोड़ दिया गया है। 'ऋतञ्च स्वाध्याय प्रवचनेच, सत्यंच स्वाध्याय प्रवचनेच'। इस तरह अध्ययन-अध्यापन को इतना महत्व दिया गया है। ब्रह्मचर्य में भी इसका महत्व है। ज्ञानप्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्य की आवश्यकता मानी गयी है : 'सत्येन लभ्यस् तपसा ह्येष आत्मा, सम्यक् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।' अर्थात् सम्यक् ज्ञान के लिए ब्रह्मचर्य चाहिए, इस तरह ब्रह्मचर्य में अध्ययन को महत्व दिया गया है।

इसके बाद इंद्रिय, बुद्धि और मन का विकास करने की बात है। किसी विशिष्ट इंद्रिय का निग्रह करना, इतना ही स्थूल अर्थ नहीं है। वाणी और बुद्धि का उत्तम उपयोग होना, कान से अच्छी चीजें सुनना, खूब ज्ञान-श्रवण करना, यह सब चीजें ब्रह्मचर्य में आ जाती हैं। तुलसीदासजी ने बड़ा सुन्दर वर्णन किया है :

> जिनके श्रवण समुद्र समाना, कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ॥
> भरहिं निरन्तर होहि न पूरे।,

समुद्र में असंख्य नदियाँ जाती है, फिर भी वह भरता नहीं, इसी तरह अनन्त हरिकथा, हरिचर्चा सुनते-सुनते भी हमारे कान भर जायँ। इसके सिवा सतत ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। इस तरह ब्रह्मचर्य की बड़ी व्यापक और भावात्मक कल्पना है।

त्याग याने बीज बोना

यही बात त्याग पर लागू होती है। त्याग करना याने 'फेंक देना', इतना ही अर्थ नहीं। त्याग करने का अर्थ है बोना, बीज अगर ऐसे ही फेंक देंगे तो फसल न उगेगी या कम उगेगी। किंतु ठीक से बोया जाय, तो फसल अच्छी तरह उगेगी। इसलिए त्याग का मतलब है बीज बोना। उसमें से खूब पैदावार होगी। जन-समाज के लिए जो त्याग किया जाता है, वह बोना ही है। इसललिए त्याग की व्याख्या भी भावरूप है।

त्याग के साथ क्रोध नहीं हो सकता

हम लोगों से कहते हैं कि अपनी जमीन, संपत्ति और बुद्धि का छठा हिस्सा समाज को दीजिये। यह त्याग की बात है। हम यही चाहते हैं कि हिन्दुस्तान में खूब प्रेम बढ़े, फसल बढ़े, लक्ष्मी बढ़े, शांति बढ़े। अगर हम प्रेम से गरीबों को एक हिस्सा देते हैं, तो समाज एकरस बनता है, ताकत बढ़ती है, काम करनेवालों को प्रेम मिलता है, प्रेम के साथ मसला हल होता है, शान्ति की स्थापना होती है। यह सारा त्याग से होता है। इसलिए गीता ने त्याग की कसौटी बतायी है। त्याग में से शान्ति होगी। किसी ने बहुत त्याग किया, कोई-कोई अत्यन्त त्यागी होने के साथ ही बहुत क्रोधी भी दीखते हैं। वह बात-बात में चिढ़ता है और दूसरों की सीधी-सी बात भी सुनना नहीं चाहता। अधिक त्यागी होने के कारण उसके क्रुद्ध होने पर डर लगता है कि कहीं किसी को शाप न दे दे। इस तरह त्याग के साथ क्रोध आने का कारण यही है कि वह त्याग 'निगेटिव' होता है। ऐसे लोग 'यह छोड़ो, वह छोड़ो' कह कर चीजें त्यागते हैं, जिससे उन्हें त्याग का अहंकार हो जाता है और गुस्सा भी आता है। इस तरह जहाँ त्याग के साथ क्रोध आता है, वह त्याग ही नहीं है। त्याग से तो शांति उत्पन्न होनी चाहिए। त्याग जबरदस्ती से नहीं हो सकता।

क्रान्ति का भावात्मक कार्य

इन दिनों क्रांन्ति की बात चलती है। कहते हैं, लोगों के दिमागों में

एक बार किसी ने रामकृष्ण परमहंस को पूछा: 'गीता का सार क्या है?' उन्होंने बड़े मजे से समझाया और कहा: 'गीता-गीता-गीता इस तरह जप किया करो।' 'गीता-गीता' जोर से बोलना शुरू करोगे, तो वह 'तागी-तागी होगा' (बंगाली में तागी का अर्थ त्यागी होता है।) फिर आपको गीता का सार मिल गया" उनका समझाने का एक तरीका था। जैसे बच्चों को समझाते हैं, वैसे समझाते थे। वेदान्त समझाते थे, तो वह सहज विनोद से, सादे शब्दों में।

त्याग ही गीता का तात्पर्य

त्याग ही गीता का तात्पर्य है। उसे कोई 'अनासक्ति' का नाम देते हैं, तो कोई 'फलत्याग' का। गीता में 'मोक्ष-संन्यास योग' बतलाया है, याने ऐसी मनःस्थिति, जिसमें मोक्ष की भी जरूरत नहीं। मोक्ष का भी त्याग गीता समझाती है। यहाँ त्याग की हद हो गयी। यहाँ मुक्ति की कैंची मुक्ति पर ही चलायी गयी है और इसके लिए 'मोक्ष-संन्यास' 'यह शब्द लिया। शब्द कुछ भी लें, तात्पर्य यही है कि गीता त्याग सिखाती है और कहने में संकोच होता है, परंतु भारतीय संस्कृति का यही मूल है। संकोच इसलिए कि इस तरह का दावा करने लायक हमारा आचरण नहीं है।

भारत का वैभव त्यागप्रधान संस्कृति

फिर भी वस्तु-स्थिति यह है कि यहाँ के लोगों को त्याग का संदेश सुनने में जितना प्रिय लगता है, उतना और कोई संदेश नहीं, जब कि त्याग करना बहुत लोगों को मुश्किल जाता है। बाबा रोज गाँव-गाँव घूमता और हजारों श्रोता अत्यंत शान्ति से उसका संदेश सुनते हैं। उसकी ऐसी कोई भी सभा नहीं होती जिसमें बच्चे, बूढ़े, बहनें सब शान्ति से न सुनते हों और सबके दिल को समाधान न हो। यह समाधान भी उन लोगों को होता है, जिनके जीवन में भोग ही प्रधान है, उन्हें बाबा का त्याग का ही संदेश अच्छा लगता है,

भोग का नहीं। यह हिन्दुस्तान के हृदय की स्थिति है। हम समझते हैं कि हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी ताकत और दौलत यही है। इस भूमि में बड़े-बड़े पहाड़-उत्तम नदियाँ, सब प्रकार का सृष्टिवैभव मौजूद है। इस दृष्टि से कह सकते हैं कि भारतभूमि बड़ी भाग्यवान है। किंतु हिन्दुस्तान का मुख्य वैभव यह नहीं है, बल्कि भारतीय संस्कृति है, जो त्याग सिखाती है।

यहाँ के शिक्षकों ने आज हमसे कहा कि ब्रह्मचर्य के बारे में समझाइये। ऐसी बात जानने की इच्छा रखनेवाले भी बड़े भाग्यशाली होते हैं। भगवान् शंकर ने लिखा है कि मनुष्य के लिए अत्यन्त भाग्य की वस्तुएँ तीन हैं : मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः'। याने मानवजन्म, सज्जनों की संगति और मुक्ति की इच्छा। इस तरह ब्रह्मचर्य का संदेश सुनने की इच्छा रखनेवाले भी बड़े भाग्यशाली हैं।

ब्रह्मचर्य अभावरूप नहीं

ब्रह्मचर्य अभावरूप नहीं, भावरूप वस्तु है, फिर भी लोगों ने उसे अभावात्मक ही समझ लिया है। वास्तव में ब्रह्मचर्य में बहुत कुछ करने की बात आती है, छोड़ने की नहीं। ब्रह्मचर्य में सामने जो चीज है, वही एक चीज है; बाकी तो सब नाचीज है। उसके लिए जो 'चर्या' है, वही ब्रह्मचर्या है। उसमें सब बातों में मनुष्य जीवन का विकास ही होता है।

ब्रह्मचर्य के लिए अध्ययन आवश्यक

ब्रह्मचर्य के लिए सबसे बड़ी बात यह है कि हम वेदादि आध्यात्मिक साहित्य का अध्ययन करें। ब्रह्मचर्य एक परिपूर्ण साधना है। इसलिए उसकी बुनियाद में *आध्यात्मिक साहित्य का अध्ययन अत्यावश्यक है।*

आजकल यह खयाल हो गया है कि बी० ए०, एम० ए० पास करने के बाद अध्ययन समाप्त हो जाता है। गृहस्थाश्रम में अध्ययन की बिलकुल जरूरत नहीं। किन्तु उपनिषद् में गृहस्थाश्रम का वर्णन आता है। उसमें कहा गया है कि गृहस्थाश्रम एक बिलकुल बुनियादी चीज है। कुल जनता का आधार

परिवर्तन लाने में देर लगेगी। इसलिए दिमाग बदलने के बजाय हिंसा से सिर काट कर जल्दी काम करा लेना चाहिए। किंतु श्रीमानों के सिर काटना, इसका नाम क्रान्ति नहीं है। सिर काटने से क्रान्ति नहीं होती, क्योंकि उसके दिमाग में बिलकुल फर्क नहीं पड़ता। एक सुखी को दुःखी और दुःखी को सुखी बनाने पर कौन-सा फर्क हुआ? समाज में कोई दुःखी और कोई सुखी तो तब भी रहा ही। क्या यह क्रान्ति है? क्रान्ति होती है विचार-परिवर्तन से। इसलिए प्रेम से समझाना पड़ेगा। वह भावात्मक काम होगा। उसमें से धर्म होगा।

लोग कहते हैं, यह काम कानून से जल्दी होगा। पर वे एक सीधी-सी बात नहीं समझते कि सरकार जमीन छीन लेगी तो गाँव-गाँव में लिटिगेशन (मुकदमा) चलेगा, झगड़े चलेंगे, गाँव-गाँव में असंतोष रहेगा। उससे क्या होगा? भूदान के तरीके से देरी लगेगी, यह कहनेवालों से मैं पूछता हूँ कि घर बनाने में देरी लगती है और जलाने में पाँच मिनट। यदि जल्दी करना है, तो क्या घर में आग लगाओगे? इसलिए स्पष्ट है कि जो काम अभावात्मक है, उससे काम न बनेगा।

ब्रह्मचर्य और त्याग जैसे अभावात्मक नहीं, वैसे ही अहिंसा भी अभावात्मक नहीं। मन के अन्दर खूब हिंसा चले और हाथ बाँध रखें, तो क्या वह अहिंसा है? यू० एन० ओ० में क्या होता है? क्या वहाँ अहिंसा है? टेबुल पर आमने-सामने बैठते हैं, तलवार के बदले में परस्पर अविश्वास लेकर बैठते हैं। अविश्वास तलवार का काम करता है। अहिंसा में तलवार हाथ में न लेना, इतना ही नहीं। हृदय में प्रेम भी भरा होना चाहिए। हरएक के हृदय में ज्योति होती है, यह ध्यान में रखना होगा। यह भावात्मक विचार है।

भौतिक के साथ आध्यात्मिक उन्नति भी जरूरी

भूदान-यज्ञ बड़ा ही विधायक कार्य है। लोग कहेंगे कि यह पंचवर्षीय योजना—जैसा ही कार्य है। दोनों में कोई फर्क नहीं, दोनों निर्माण-कार्य हैं, फिर भी फर्क है। यह योजना भौतिक विकास के बारे में सोचती है, परन्तु भौतिक

के साथ आध्यात्मिक विकास भी होना चाहिए। केवल फसल बढ़े, इतना ही उद्देश्य नहीं, प्रेम भी बढ़ना चाहिए। प्रेम के साथ-साथ फसल बढ़नी चाहिए। विष्णु के साथ-साथ लक्ष्मी बढ़े, तभी लाभ होता है। शिव के साथ ही शक्ति बढ़ने पर वह तारक होती है। शिव से अलग होने पर तो वह मारक होगी। केवल पंचवर्षीय योजना से भौतिक लाभ खूब होगा, वह तारक नहीं होगा। इसलिए भौतिक और नैतिक उन्नति दोनों साथ-साथ होनी चाहिए। अकेली चीज मारक साबित होगी, तारक नहीं। हम भूदान-यज्ञ में आध्यात्मिक उन्नति के साथ-साथ उसके अनुकूल भौतिक विकास भी चाहते हैं।

पेरियनायकम् पालेयम्
२१-९-'५६

पूर्णनीति की स्थापना लक्ष्य

: ४७ :

जिस कार्य को हम फैलाना चाहते हैं, वह धर्मकार्य है। हमें नये मूल्य स्थापित करने हैं और पुराने गलत मूल्यों को बदलना है। पुराने मूल्य सारे-के-सारे गलत हैं, ऐसा हम नहीं कहते। उनमें कुछ अच्छे भी हैं और कुछ गलत भी। लेकिन अभी तक पूर्णनीति की कल्पना प्रस्थापित नहीं हुई। आज-तक लोगों ने अधूरी नीति चलायी है। हम चाहते हैं कि सब लोग सत्य की महिमा समझें, पुराने लोग भी ऐसा ही कहते आये हैं। लेकिन सत्य की महिमा अभी तक इसलिए स्थापित न हो पायी कि उसके साथ निर्भयता भी चाहिए, और उसका अभी तक हमने निर्माण नहीं किया।

दंड के भय से असत्य

अगर आप सत्य की महिमा स्थापित करना चाहते हैं, तो अपराधों के लिए दंड का भय न होना चाहिए। मान लीजिये कि किसी लड़के ने कोई गलत काम किया और वह समझ गया है कि उसने गलत काम किया। फिर

भी उसे वह छिपाता है। कभी प्रकट भी करता है, तो उन मूर्ख साथियों के ही सामने, जिनसे कोई लाभ नहीं। फिर भी माता-पिता से वह उसे छिपाता ही है, जिनके दिल में बच्चों के लिए सिवा करुणा के और कुछ नहीं होता। वह उनसे इसलिए छिपाता है कि उसे दंड का भय रहता है। शायद माता जरा कम दंड दे, इसलिए संभव है वह कभी माता के सामने अपना दिल खोल दे।

सत्य के लिए निर्भयता जरूरी

आप सत्य की महिमा स्थापित करना चाहते और सब सद्गुणों में श्रेष्ठ गुण सत्य को मानते हैं। सब दुर्गुणों में बदतर दुर्गुण असत्य को बतलाते हैं और छोटे-छोटे दुर्गुणों के लिए दंड देते हैं। परिणाम यह होता है कि मनुष्य असत्य करता है और छोटे-छोटे दोष छिपाता है। इससे अपराध बढ़े हैं। जो लोग सत्य की महिमा मानते और उसके साथ दंड भी देते हैं, वे सत्य का ही खंडन करते हैं। सत्य की महिमा तभी स्थापित होगी, जब किसी को अपराधों के लिए दंड का भय न रहेगा। तब तक सत्य पर जोर दें, तो वह अर्ध-नीति ही रहती है, पूर्ण-नीति नहीं। इसलिए सत्य के साथ निर्भयता को महत्व देना होगा। सब प्रकार के अपराधों को दंड का भय न रहे। आप कहेंगे कि इससे अपराध बढ़ेंगे, तो हम कहते हैं कि फिर सत्य को इतना महत्व ही क्यों देते हैं?

अपराध रोग ही है

दंड न हो, तो मनुष्य अपने अपराधों को प्रकट करेगा, जैसे कि आज वह अपने रोगों को प्रकट करता है। अगर उसे विश्वास हो जाय कि अपराधों को प्रकट करने से लोगों की सहानुभूति और अपराधों के मार्जन के लिए मदद मिलती है, तब तो वह प्रकट करेगा। जिसे हम अपराध कहते हैं, वे भी रोग ही हैं। रोगों को हम छिपाते नहीं। बाबा के पेट में 'अल्सर' है, लेकिन बाबा उसे छिपाता नहीं, प्रकट करता है। किन्तु अगर लोग कल यह मानने लगें कि बाबा के पेट में अल्सर है, यह कितना अनीतिमान् मनुष्य है, तो फिर

बाबा की उसे छिपाने की इच्छा हो जायगी। हमने ऐसे कई कुष्ठरोगी देखे, जो अपने रोग को छिपाते हैं। यह एक भयानक रोग है। थोड़ा-सा होते ही प्रकट करने पर उपचार हो सकता है। लेकिन कुष्ठरोगी के लिए बाकी लोगों के मन में घृणा पैदा होती है। परिणाम यह होता है कि रोगी उसे छिपाता है। आखिर जब रोग बहुत ज्यादा बढ़ जाता है, तब प्रकट होता है, तो उस वक्त डॉक्टर कहते हैं कि अब यह मिट नहीं सकता। यद्यपि कुष्ठरोगी को काफी तकलीफ होती रहती है, फिर भी वह प्रकट नहीं करता। अगर वह जल्द प्रकट करे, तो उसे लाभ हो। लेकिन जहाँ आपने किसी खास रोग के लिए घृणा करना शुरू किया, वहाँ रोगी में छिपाने की प्रवृत्ति पैदा हो जाती है।

एकांगी नीति की मिसालें

सत्य को हम मानते हैं, तो उसके साथ अपराधों के लिए दंड न होना चाहिए, उनकी दुरुस्ती ही होनी चाहिए। फिर समाज में कोई व्यक्ति अपराध करेगा, तो सज्जनों के सामने प्रकट करेगा। फिर सत्य की प्रतिष्ठा बढ़ेगी। निर्भयता और अदंड को महत्त्व दिये बिना, सत्य को महत्त्व देते हैं, तो वह एकांगी नीति होती है। वैसे ही हमने चोरी को गुनाह माना है; परन्तु उसके बाप को, जिसने चोरों को पैदा किया है, गुनाह नहीं मानते। चोरी तब होती है, जब मनुष्य 'संग्रह' करता है। अगर चोरी गुनाह है, तो संग्रह भी गुनाह है। लेकिन हम संग्रह करनेवाले को प्रतिष्ठित मानते हैं, उसे गद्दी और तकिये पर बिठाते हैं और चोर को जेल भेजते हैं। याने चोर का स्थान जेल में और सेठ-साहूकार का गद्दी पर। यह बात शास्त्रों के विरुद्ध है। शास्त्रों ने कहा है कि अगर आप 'अस्तेय' चाहते हैं, तो उसके साथ 'अपरिग्रह' भी चाहिए। दोनों साथ-साथ चाहिए। लेकिन आज के समाज में सिर्फ चोरी को ही गुनाह माना है, 'संग्रह' और 'परिग्रह' को नहीं, बल्कि उसे इज्जत दी है। यह बिलकुल एकांगी नीति है।

पत्नी को पति के लिए खूब निष्ठा होनी चाहिए, यह निर्विकार बात है।

लेकिन पति को भी पत्नी के लिए उतनी ही निष्ठा होनी चाहिए, यह क्यों नहीं कहते ? पत्नी को अगर पतिव्रता होना चाहिए तो पति को भी पत्नीव्रत होना चाहिए। आज पत्नी एक साथ दो शादियाँ नहीं कर सकती, परन्तु पति कर सकता है। किसी पुरुष से व्यभिचार हुआ तो उतना गुनाह नहीं माना जाता, पर वही किसी स्त्री से हुआ, तो गुनाह मानते हैं, यह क्यों ? उपनिषदों में तो उल्टा लिखा है। उसमें एक अपने राज्य में क्या-क्या अच्छाई है, उसका वर्णन करते हुए कहता है कि : "न स्वैरी, स्वैरिणी कुतः" मेरे राज्य में व्यभिचारी पुरुष ही नहीं, तो फिर व्यभिचारी स्त्री कहाँ से होगी ? उसका तात्पर्य यही है कि जहां पुरुष दुराचारी होते हैं, वहाँ भी स्त्रियाँ सदाचारिणी होती हैं, क्योंकि अक्सर वे ज्यादा धर्मनिष्ठ होती हैं। इसलिए जहाँ दुराचारी पुरुष ही नहीं, वहाँ दुराचारी स्त्री कहाँ से होगी ? याने यह दुराचार की ज्यादा-से-ज्यादा जिम्मेवारी पुरुषों पर डालती है। किन्तु आज के समाज ने यह जिम्मेवारी स्त्रियों पर डाली है। जिम्मेवारी समान होनी चाहिए न !

स्त्रियों के गले में 'ताली' (मंगलसूत्र) डाली जाती है, इसलिए कि उनके पति है। लेकिन पति की कोई स्त्री है, तो उसके गले में कोई 'ताली' की जरूरत नहीं, याने वह 'बेताल' है। इस तरह की एकांगी नीति कभी प्रतिष्ठित नहीं हो सकती, पूर्णनीति ही होनी चाहिए। अगर आप चाहते हैं कि स्त्रियाँ 'सतीत्व' रखें, तो पुरुषों को 'सत्व' रखना चाहिए। दोनों पर समान जोर होना चाहिए। किसी का पति मर जाय और वह विधवा हो जाय, तो उसे व्रतनिष्ठ रहना चाहिए, यह बहुत अच्छी बात है। लेकिन किसी की स्त्री मर जाय, तो उसे भी व्रतनिष्ठ रहना चाहिए। वह क्यों दूसरी स्त्री कर पाये ? यहाँ मैं कोई विनोद नहीं कर रहा हूँ, बल्कि यही बता रहा हूँ कि अपने समाज की इन न्यूनताओं को दुरुस्त किये बिना समाज आगे न बढ़ेगा।

समझ-बूझकर त्याग करने से ही क्रांति

अभी तक समाज में जो मूल्य थे, वे सब-के-सब खराब थे, ऐसी बात नहीं। लेकिन वे एकांगी थे और हमें पूर्ण मूल्य स्थापित करने हैं। इसके लिए विचारवान् कार्यकर्ताओं की जरूरत है, जो इस कार्यक्रम को अपना कार्यक्रम

समझकर हाथ में लेंगे। अभी तक तमिलनाड में लोग बाबा पर कृपा करके थोड़ा दान देते हैं, सभा आदि का इन्तजाम कर देते हैं। किंतु मैं कहता हूँ कि कृपा करके बाबा पर 'कृपा' मत कीजियेगा, आप अपने पर ही कृपा कीजिये। अगर इस धर्मविचार में आपको अन्दर से स्फूर्ति मिलती हो, तो भी काम कीजिये। तमिलनाड में एक-एक मनुष्य की शक्ल देख रहा हूँ। चेहरे पर क्या तेज है, पानी है या चेहरा फीका है, यह देखता हूँ। अभी तक बहुत थोड़े चेहरे दीख रहे हैं, जिनमें क्रांति है। बहुत से वे ही पुराने जमाने के दीख रहे हैं। वही पुराना जीवन और वही संग्रह कायम है। बाबा आया है, तो उसे पाँच एकड़ देकर उस पर उपकार मत करो। बाबा को जमीन लेकर क्या करना है ? वह आपके हाथ में क्रांति का झंडा देना चाहता है।

एक श्रीमान् ईसामसीह के पास जाकर कहने लगा कि 'मुझे उपदेश दीजिये।' ईसा बोले : 'सब पर प्रेम किया करो, चोरी मत करो, पड़ोसियों को मदद दिया करो।' वह कहने लगा : 'ये सब बातें मैं करता ही हूँ। मुझे कुछ विशेष उपदेश दीजिये।' फिर ईसा ने कहा : 'अपनी संपत्ति गरीबों में बाँटकर मेरे पीछे आ जाइये।'…बस, उस पर वह कुछ न कर सका। सारांश, क्रांति तभी होती है, जब जिनके पास जो चीज है, उसे वे समझ-बूझकर परित्याग करें। कानून से त्याग कराने पर क्रांति नहीं होती। कितने ही चोरों को जेल में १५-२० साल की सजा भुगतनी पड़ती है और ब्रह्मचर्य लेना पड़ता है, तो क्या उनमें शुकदेव की योग्यता आयेगी ? जबर्दस्ती जो काम होता है, उससे क्रांति नहीं होती।

अंतर्निरीक्षण कीजिये

इसलिए हम चाहते हैं कि श्रीमान्, विद्वान् लोग यह समझकर कि अपनी संपत्ति, जमीन और बुद्धि का गरीबों और समाज के लिए उपयोग करना अपना धर्म है, आगे आयें और इस काम को उठायें। बिहार में कुछ काम हुआ है। यहाँ के लोग कहते हैं कि 'हमारे यहाँ की जमीन बहुत कीमती है।' मानो बिहार में जमीन मुफ्त ही मिलती थी। ये लोग कहते हैं कि 'हमारे यहाँ कावेरी का पानी

है', तो क्या बिहार में पानी नहीं है ? यहाँ कावेरी है, तो वहाँ गंगा है, गंडक है । बिहार में तो पाँच हजार रुपये एकड़वाली जमीन है । लेकिन हरएक को लगता है *कि हमारे यहाँ मामला मुश्किल है, बिहार में जमीन का कोई खास* मूल्य न होगा । आपको अपने लड़के-लड़कियाँ प्यारी हैं, तो क्या बिहार के लोगों को उनके अपने लड़के प्यारे नहीं ? दोनों में क्या फर्क हो सकता है ? जो आसक्ति यहाँ है, वही आसक्ति वहाँ है । लेकिन वहाँ कुछ समझदार, मालदार, संपत्तिवान् लोग आगे आये, उन्होंने अपना लाखों का दान दिया और इस काम का झंडा उठा लिया ।

हमने सोचा कि बिहार में यह काम कैसे हुआ ? तो उसका एक ही उत्तर मिला कि *'वहाँ भगवान् बुद्ध और महावीर की प्रतिभाएँ काम कर रही हैं ।* फिर हम सोचते रहे कि क्या तमिलनाड में कोई सत्पुरुष नहीं हुए ? तो हमने यहाँ का साहित्य देखा । यहाँ का साहित्य दो हजार साल से चला आ रहा है । 'कुरल' से लेकर आधुनिक कवियों तक कितने ही आलवार (संत) यहाँ हुए हैं । यहीं शैव-सिद्धांत की खोज हुई, रामानुज जैसे आचार्य हुए । तो, यहाँ क्या कुछ कम पुण्य है ? *क्या गंगा ही पुण्य कर सकती है, कावेरी नहीं ?* हम देख रहे हैं, यहाँ हमारी तपस्या कुछ कम पड़ रही है । यह हमारे और आपके लिए भी सोचने की बात है । इसलिए कि एक शख्स, जो अपनी भाषा भी नहीं जानता, यहाँ आये और आपके गाँव के गरीबों के लिए घूमे और आप ऐसे ही बैठे रहें, तो क्या शोभा देगा ? आज तक कई लोग फंड वगैरह लेने आये और लेकर चले गये । लेकिन हम यहाँ की जमीन गुजरात में नहीं बाँटनेवाले हैं । इसलिए आपको जरा अंतर्निरीक्षण करना चाहिए ।

वेलाकिनारु (कोयम्बतूर)
२३-१-'५६

आनंद-शुद्धि कैसे हो ?

: ४८ :

'भारतीयार' के एक गीत में कवि परमेश्वर का उपकार मानते हुए कहता है कि 'तूने हमारे लिए कोटि-कोटि सुख पैदा किये हैं।' इस प्रकार ईश्वर के उपकार का वर्णन धर्मग्रंथों में बहुत आता है। ईश्वर ने क्या-क्या सुख पैदा किये, उनकी सूची भी धर्मग्रंथों में मिलती है। वस्तुस्थिति ऐसी है कि ईश्वर ने सिर्फ मनुष्यों के लिए ही सुख पैदा नहीं किये, बल्कि प्राणीमात्र के लिए किये हैं।

हम आनंद से परिवेष्टित हैं

वास्तव में देखा जाय, तो जिसे हम 'आनंद' कहते हैं, वह हमारा निजरूप है। हमारा स्वरूप ही आनंद है। इसलिए कोई प्राणी ऐसा नहीं हो सकता कि बिना आनंद के एक क्षण भी जीवित रह सके। आनंद का भान हमेशा नहीं होता, परंतु उसका अनुभव तो प्रतिक्षण होता है। अभी हम सब लोग यहाँ खुली हवा में बैठे हैं, तो हमें कितना आनंद हो रहा है। लेकिन जरा नाक बंद करके देखिये, तो एकदम घबड़ा जायँगे। यह हवा हमें सतत मिल रही है, उसके आनंद का हमें अनुभव हो रहा है, पर यह भान नहीं होता कि हमें इस वक्त बहुत आनंद हो रहा है। लेकिन अगर हमें बिना हवा की कोठरी में बंद किया जाय, तो मालूम हो जायगा कि बाहर हवा का कितना आनंद था। जिसके फेफड़े कमजोर हुए हों, जिसे क्षयरोग हुआ हो और साँस लेना मुश्किल हो गया हो, उसे मालूम होगा कि जब बीमारी नहीं हुई, तब मुझे साँस लेने का कितना आनंद था। बीमार आदमी सुबह उठकर अपने आनंद का वर्णन करता है कि कल रात को उसे अच्छी नींद आयी। दूसरे लोगों को तो उसका कोई आनंद महसूस नहीं होता, क्योंकि उनके लिए वह हमेशा की चीज है। लेकिन बीमार को कई दिनों से अच्छी नींद नहीं आ रही थी और फिर आयी, तब उसे भान हुआ कि कितनी अच्छी नींद आयी।

इस तरह हम आनन्द से बिल्कुल परिवेष्टित हैं, हमारे आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, अन्दर-बाहर, सर्वत्र आनन्द-ही-आनन्द है, लेकिन हमें आनन्द का प्रतिक्षण भान नहीं होता। यही समझिये कि जिन क्षणों में दुःख नहीं, उन सभी क्षणों में आनन्द-ही-आनन्द है, पर्हां दुःख का अनुभव हुआ, तो कभी उतना ही याद रह जाता है। किन्तु आनन्द चौबीसों घण्टे चलता है, लेकिन हम उसे याद नहीं करते और उसका हमें भान ही नहीं होता।

आनन्द की प्राप्ति नहीं, शुद्धि करनी है

आनन्द हमारा स्वरूप ही है, मनुष्य का ही नहीं, बल्कि गोबर में पड़े जंतु को भी आनन्द प्राप्त है, क्योंकि उसका स्वरूप ही वह है। इसलिए आनन्द की प्राप्ति में कोई विशेषता नहीं, उसकी शुद्धि में ही विशेषता है। किसीको बीड़ी पीने में आनन्द आता है, किसीको दूध पीने में, किसीको फलाहार करने में, किसीको भूखे को खिलाने में, तो किसीको एकादशी के दिन फाका करने में आनन्द आता है। इस तरह बीड़ी पीने से लेकर फाका करने और दूसरे को खिलाने तक आनन्द के कई प्रकार हैं। फिर भी उसका स्वरूप एक ही है। उससे एकाग्रता होती है। आपने देखा होगा कि बीड़ी पीनेवाले कितने एकाग्र घूमते हैं। एक शख्स बाबा के स्वागत में आया और बीड़ी पीते हुए आया। अक्सर लोग ऐसा नहीं करते, क्योंकि कुछ शर्म आती है, पर उस दिन जब हमने उस भाई को देखा, तो बड़ी खुशी हुई। इसलिए कि यह शख्स अपने आनन्द में शर्म को भी भूल गया, वह आनन्द में इतना एकाग्र हो गया कि सब कुछ भूल गया। सारांश, आनन्द चाहे बीड़ी पीने से पैदा हुआ हो या सद्ग्रन्थ पढ़ने से, उसका स्वरूप एक ही है। मनुष्य के जीवन में जितनी शुद्धि होगी, उतना ही आनन्द शुद्ध होगा। इसलिए मनुष्य का ध्येय आनन्द की शुद्धि, न कि आनन्द की प्राप्ति है।

आनन्द-प्राप्ति के प्रयत्न में दुःख

कुछ बड़े-बड़े वेदान्ती भी कहते हैं कि आनन्द हरएक को चाहिए, इसलिए आनन्द की प्राप्ति एक बड़ा ध्येय है। लेकिन वे विचार को समझे नहीं। वास्तव

में आनन्द की प्राप्ति के लिए किसीको कुछ भी श्रम नहीं करना पड़ता है। बल्कि अगर कोई आनन्द के लिए कोशिश करता रहेगा, तो दुःख ही पायेगा। एक भाई कहते थे कि 'हमें नींद नहीं आती'। मैंने पूछा कि 'फिर क्या करते हो', तो वे बोले : 'नींद के लिए खूब प्रयत्न करता हूँ, तो भी नहीं आती।' मैंने कहा : 'प्रयत्न करते हो, इसीलिए नींद नहीं आती। प्रयत्न ही नींद के खिलाफ है। इसलिए प्रयत्न छोड़ दोगे, तो नींद आयेगी।' इसी तरह मनुष्य आनंद के लिए जितनी कोशिश करता है, उतना दुःख ही पाता है। हम देख रहे हैं कि सभी लोग इसी कोशिश में लगे हैं कि आनंद प्राप्त करें। लेकिन परिणाम यह होता है कि बहुतों को हम रोते हुए पाते हैं। 'मेरे जीवन में केवल आनंद ही आनंद है, परिशुद्ध आनंद है', ऐसा कहनेवाला मनुष्य दुर्लभ ही है। इस तरह आनंद की प्राप्ति के लिए प्रयत्न कर दुःख प्राप्त करने के बजाय लोग यह समझें कि आनंद तो अपने बाप का हक है, वह अपने पास है ही, उसे शुद्ध करना चाहिए। हमारा स्वच्छ श्वासोच्छ्वास चल रहा है, यह पहला आनंद है। इसलिए आनंद चौबीसों घंटा चल रहा है, किंतु हमें उसे शुद्ध करना है। कुल समाजशास्त्र, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र इसीकी चिंता में हैं कि आनंद को शुद्ध किया जाय, लोगों को स्वच्छ रीति से आनंद मिले।

शुद्ध आनन्द खुद को काटता नहीं

शुद्ध आनन्द का यह लक्षण है कि वह स्वयं को नहीं काटेगा। जो आनंद खुद को ही काटेगा, वह शुद्ध आनंद नहीं है। बीड़ी पीनेवाला बड़े आनंद से उसे पीता है, पर थोड़े ही दिनों में फेफड़े खराब हो जाते हैं। आजकल तो डॉक्टर यहाँ तक कहते हैं कि उससे 'कैन्सर' होता है। याने वह बीड़ी पीने का आनंद आनंद को ही काटता है। इसीलिए मैं यह सीधी-सादी व्याख्या करता हूँ कि 'जो आनंद आनंद को ही काटता है, वह शुद्ध आनंद नहीं।' हम ऐसा बहुत-सा आनन्द प्राप्त करते हैं, जो आनन्द को ही काटता है। रात को जागने, सिनेमा देखने या उपन्यास पढ़ने से आँखें बिगड़ जाती हैं, तो पढ़ने-देखने का आनंद नष्ट हो जाता है। इस तरह यही कहना होगा कि मूल आनंद के

लिए घातक आनंद हमने भोगा। शराब पीने से दिमाग खराब हो जाता है, पैसा खतम होता है, आसपास के लोगों के साथ झगड़ा होता है, पत्नी से बनती नहीं, बच्चे प्यार नहीं करते। इस तरह शराब पीने के आनंद ने आनंद पर ही प्रहार कर दिया। इसलिए फिर 'संयम' का सवाल आता है। तरकारी में भी नमक डालने की एक मात्रा होती है। उतना ही डालने पर स्वाद आता है। यह नहीं कि जितना ज्यादा नमक डालेंगे, उतनी ही वह अच्छी लगेगी। उसकी एक निश्चित मात्रा रहने पर ही आनन्द टिकता है। एक भाई को मीठा खाने का शौक था। उन्होंने पत्नी से कहा कि मूँगफली के लड्डू बना दो। पत्नी ने अच्छी तरह लड्डू बनाये, पर वे बोले: 'यह फीका मालूम होता है, गुड़ कम है।' दूसरे दिन उनकी पत्नी ने ऐसा सुंदर लड्डू बनाया कि वे खुश ही हो जायँ। किन्तु उन्होंने कहा: 'आज कुछ थोड़ा-सा ठीक है।' पत्नी ने कहा,: 'थोड़ा-सा ही ठीक है? आज तो मैंने इसमें मूँगफली डाली ही नहीं है, सिर्फ गुड़ का ही लड्डू बनाया है। अब इससे ज्यादा मीठा मैं नहीं बना सकती।' याने वह ऐसा मूर्ख था कि पहचान न सकता था कि लड्डू में गुड़-ही-गुड़ है। मीठा खाते-खाते उसकी रुचि इतनी बिगड़ गयी थी कि मीठे ने ही मीठे को मारा। इसलिए जब हम आनन्द की मात्रा रखते हैं, तब वह आनन्द अपने को काटता नहीं है।

संयम आनन्द का प्राण

एक गरीब भाई ने लॉटरी में एक रुपया भेजा। उसे जब मालूम हुआ कि हजार रुपये का इनाम मिला है, तो इतना आनन्द हुआ कि शॉक (धक्के) से वह मर गया। उस आनन्द ने आनन्द को ही काट दिया। अतएव आनन्द की शुद्धि के लिए आनन्द को एक मात्रा में रखना पड़ता है। कुछ लोग समझते हैं कि जितना उत्पादन बढ़ेगा, उतना ही आनन्द भी बढ़ेगा, लेकिन आज अमेरिका में तो उत्पादन खूब होता है, फिर भी वहाँ आनन्द बढ़ा नहीं। वहाँ आत्महत्याएँ खूब होती हैं, लोग डरे हुए हैं और सदासर्वदा लड़ाई की तैयारी करते रहते हैं याने केवल आनन्द बढ़ाते चले जाने से टिक नहीं सकता। आनन्द की सीमा

से ज्यादा आनन्द भोगने की कोशिश करना आनन्द को ही काटना है। यही कारण है कि आनन्दशुद्धि के लिए शास्त्रकार हमेशा संयम सिखाते हैं। चीज मीठी लगे, तो भी ज्यादा न खानी चाहिए, क्योंकि उससे पेट बिगड़ेगा, हम बीमार पड़ेंगे और आनन्द कटेगा। लोग समझते है कि संयम करने के लिए कहा, तो दुःख की बात हो गयी। किन्तु संयम में आनन्द न समझना निरी मूर्खता है। संयम आनन्द का प्राण है। इसलिए समाज में ऐसी रचना करनी चाहिए कि संयम की मात्रा और युक्ति समाज को सिखायी जाय। जो समाज संयम सीखेगा, वह आनंद पायेगा। वह समाज अपने आनंद को स्वयं न काटेगा। इस तरह जब संयम के साथ आनंद होता है, तभी आनंद की शुद्धि होती है। आनंद को प्राप्ति के लिए कुछ करना नहीं है, जो कुछ करना है, आनंद की शुद्धि के लिए ही करना है।

आनंद में दूसरों को सहयोगी बनायें

आनंद की शुद्धि के लिए दूसरी बात, आनंद में सबको सहभागी बनाना है। मुझे यहाँ सुंदर हवा मिल रही है, तो आनंद होता है। किंतु आपको हवा न मिले और मैं आपको छटपटाते हुए देखता हूँ, तो मुझे सुंदर हवा प्राप्त होने का आनंद नहीं मिल सकता। मैं खाने के लिए बैठा हूँ, थाली में सुंदर खाना परोसा है; पर सामने कोई भूखा रोता हुआ आये, जिसे तीन दिनों से खाना न मिला हो, तो वह सुंदर मिष्टान्न मीठा नहीं लग सकता। इसलिए शुद्ध आनंद तभी मिलता है, जब हम अपने आनंद में दूसरों को शरीक करें। हम दूसरों को शरीक किये बिना अकेले ही भोगेंगे, तो वह आनंद अपने को ही काटता है।

त्याग के कारण माँ के जीवन में आनंद

हमें आनंद-शुद्धि करनी होगी और उसके लिए दो काम करने होंगे : (१) आनंद में, भोग में संयम रखना और (२) आनंद सबको बाँटकर भोगना। माँ पहले बच्चों को खिलाती है और फिर खुद खाती है, इसलिए उसे जो आनंद मिलता है, वह शुद्ध आनन्द है। अगर कहा कोई ऐसी आत्मा निकले, जो

अपने बच्चों से कहे कि 'पहले मैं खाऊँगी और बाद में तुम्हें खिलाऊँगी; क्योंकि मैं ही कमजोर हो जाऊँगी, तो तुम्हारी सेवा कौन करेगा ?' तो उसे क्या कहा जायगा ? लेकिन यही बात हम लोग करते हैं, जो 'देशसेवक' कहलाते हैं। लोगों से हम कहते हैं कि हम सेवकों को अच्छा खाना न मिलेगा, तो आपकी सेवा कौन करेगा ? देशसेवकों की यह युक्ति आज माँ सीखेगी, तो कौन कवि उस पर काव्य लिखेगा ? आज माँ के जीवन में इसीलिए शुद्ध आनंद है कि वह बच्चों के लिए त्याग करती है।

सारांश, आनंद-शुद्धि के दो बड़े सिद्धांत हैं कि (१) दूसरों को बाँटकर भोगो और (२) जो भोगना है, संयम से भोगो। दूसरों को बाँटने के बाद भी अगर हम हद से ज्यादा भोगते हैं, तो वह भी न चलेगा। उसका भी परिणाम दुःख में होगा। इसलिए बाँटकर भोगना है, तो वह भी संयम से भोगना चाहिए। इन दोनों बातों के बिना आनंद-शुद्धि न होगी। अगर लोग आनन्द-प्राप्ति में ही लगेंगे, जो करना चाहिए, उसे न करेंगे और जो करने की जरूरत नहीं, वह करेंगे, तो आनंद नहीं, दुःख की ही प्राप्ति होगी।

मधुकरै (कोयम्बतूर)
२९-९-'५६

दुनिया की सेवा के लिए भगवान् महापुरुषों को भेजता है। यह उसका धंधा ही है। 'जब कभी जरूरत होगी, महापुरुषों को भेजा करूँगा', यह उसने गीता में कहा है। उसने तय किया है कि 'दुनिया में धर्मग्लानि होने पर महापुरुष आकर लोगों के चित्त को रास्ते पर ले आयेंगे।' यह हम देखते भी हैं। आखिर इस तरह का धंधा परमेश्वर को क्यों करना पड़ता है? इसका उत्तर अभी किसीको नहीं मिला। वह ऐसा इन्तजाम क्यों नहीं करता कि बार-बार महापुरुषों को भेजना न पड़े और यह तकलीफ न हो? इसलिए वह ऐसी कायम रखने की व्यवस्था कर दे, जिससे लोग हमेशा रास्ते पर रहें। वह ऐसा नहीं करता और क्यों नहीं करता? यह उसकी मर्जी की बात है। इसलिए यह कोशिश वैज्ञानिकों ने की है। वैज्ञानिक कोशिश करते हैं कि कोई एक यंत्र ऐसा मिले या तैयार कर सकें, जो एक बार शुरू करें, तो सदा के लिए चले। किंतु वह प्रयत्न अभी सधा नहीं। छोटी-छोटी घड़ियाँ चौबीसों घंटे चलती हैं, उन्हें बीच में चाबी देने की जरूरत नहीं पड़ती है, चौबीस घंटे के बाद फिर से चाबी देनी पड़ती है। कुछ घड़ियाँ ऐसी भी हैं, जिन्हें हफ्ते में एक दिन चाबी देनी पड़ती है। लेकिन ऐसी घड़ी, जो कि एक बार चाबी देने पर रोजेकयामत तक चले, अभी तक नहीं बनी। जैसे वैज्ञानिकों को यह नहीं सधा, वैसे ही ईश्वर को भी वह नहीं सधा, यही दीखता है। अथवा उसे ऐसा करने में मजा आता होगा। जैसे समुद्र में एक लहर उठती है, फिर नीचे जाती है, दूसरी उठती है, फिर नीचे जाती है, इसी तरह चैतन्य का भी खेल चलता है। 'ऊपर उठना, फिर नीचे जाना, फिर ऊपर उठना और नीचे जाना', चैतन्य का स्वभाव ही है। लेकिन ऊपर जाते और नीचे आते हुए भी आखिर वह ऊपर ही जा रहा है। जिन्हें इतिहास का अनुभव है, वे कहते हैं कि इस तरह दुनिया का विकास होता जा रहा है।

संतपुरुष और युगपुरुष

महापुरुषों के दो प्रकार होते हैं : एक, ऐसे महापुरुष, जो हमेशा के लिए कुछ-न-कुछ हिदायतें देते और लोगों को अच्छे मार्ग पर रखने की कोशिश करते हैं। ऐसे महापुरुष 'संतपुरुषों' के नाम से पहचाने जाते हैं। वे लोगों को कुछ उपदेश देते हैं। कुछ लोग उनका उपदेश पूरी तरह से अमल में लाते हैं, तो कुछ लोग उनकी चंद बातें ही मानते हैं। जो मानते हैं, वे उनका लाभ उठाते हैं और जो नहीं मानते, वे लाभ नहीं उठा पाते। *किन्तु संतपुरुषों का किसी पर बोझ नहीं है। वे यही सोचते हैं कि हमारी* आज्ञा न चलनी चाहिए। उन्हें यह अच्छा नहीं लगता कि उनकी सत्ता किसी पर चले। ऐसे संतों को परमेश्वर भेजा करता है। तभी दुनिया का यंत्र चलता है। *इन साधु पुरुषों के जरिये उस यंत्र में कुछ-न-कुछ 'लुब्रीकैन्ट'* (स्नेहन) डाला जाता है और बिना घर्षण के वह चलता है। इनके सिवा वह कुछ ऐसे भी महापुरुष भेजता है, जो दूसरे प्रकार के होते हैं। वे एक *सामान्य नीति का उपदेश देते हैं,* पर उससे जिस जमाने की जो आवश्यकता होती है, उसकी पूर्ति होती है। जब लोगों की आवश्यकता और साधु का उपदेश, दोनों का मेल होता है, याने जब आवश्यकता की पूर्ति होती है, *तब वह पुरुष 'युगपुरुष' हो जाता है। महात्मा गांधीजी ऐसे ही युगपुरुष थे।*

अंग्रेजों का भयानक प्रयोग

अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान को अपने हाथ में लेने के बाद एक बड़ा भारी पराक्रम किया। इसके पहले किसीने भी ऐसा प्रयोग करने की हिम्मत न की थी। जिन पर सत्ता चलायी गयी, और जिन्होंने सत्ता चलायी, दोनों के लिए वह भयानक प्रयोग रहा। उन्होंने सारे-के-सारे देश को निःशस्त्र बना दिया। किसी भी बादशाह ने ऐसा प्रयोग नहीं किया, जो दोनों के लिए खतरनाक हो। जो सत्ता चलाना चाहते हैं, उन पर रक्षा की जिम्मेवारी आती है। अगर बाहर से हमला हुआ, तो लोग प्रतिकार करने के लिए तैयार नहीं, भयभीत थे। अतः उनके लिए वह प्रयोग खतरनाक था। *जिन पर वह प्रयोग किया गया, उनके लिए भी*

तो वह खतरनाक था ही, क्योंकि वे निःशस्त्र होने से खुद का बचाव भी नहीं कर सकते थे। लेकिन ऐसा खतरनाक प्रयोग उन्होंने किया। परिणाम यह हुआ कि हिन्दुस्तान के लोगों में सिर उठाने की ताकत न रही, वे निरंतर भयभीत रहे। प्रजा को अभयदान देना राजा का कर्तव्य है। हमारी राज्य-व्यवस्था में अभयदान को बड़ा महत्त्व दिया गया है। किंतु अंग्रेजों के इस भयंकर प्रयोग से हिन्दुस्तान की कमर ही टूट गयी।

गांधीजी का असहयोग का मार्ग

अब सिर उठाने की आवश्यकता निर्माण हुई। उसके लिए कोई निःशस्त्र शक्ति चाहिए थी। हिन्दुस्तान में ऐसी आवश्यकता निर्माण न होती, तो उसे सदा के लिए सिर नीचे रखना पड़ता, गुलाम रहना पड़ता। ऐसे मौके पर महात्मा गांधी आये। वे कहने लगे : 'आत्मा में ताकत है, शस्त्र की जरूरत नहीं। सरकार को हमने ही सिर पर उठाया है; अगर चाहेंगे, तो फिर नीचे पटक सकते हैं। प्रजा के सहयोग के बिना कोई भी सरकार सत्ता नहीं चला सकती। इसलिए हम सब एक हो जायँ, तो एक माँग करेंगे और अगर वह पूरी न हुई, तो सत्ता के साथ सहयोग न करेंगे।' यह संतपुरुष की शक्ति थी। वे कहते थे : 'हमें असहयोग के लिए जितना सहना पड़ेगा, उतना हम सहेंगे। यह शक्ति संतपुरुष में ही हो सकती है।

गांधीजी ने जीवन बदल दिया

जहाँ लोगों की आवश्यकता महापुरुष के सदुपदेश से पूरी होती है, वहाँ वे संतपुरुष 'युगपुरुष' होते हैं। यह घटना महात्मा गांधी के बारे में अक्षरशः घटी। हिंदुस्तान को परम ऐतिहासिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए किसी एक शक्ति का निर्माण आवश्यक था। मैं बहुत कहता हूँ कि महात्मा गांधी न होते, तो दूसरा कोई महापुरुष खड़ा होता, क्योंकि ईश्वर की योजना में यह नहीं हो सकता कि इतना बड़ा देश सदा के लिए गुलाम रहे। इसलिए इस शक्ति का आविष्कार होना लाजिमी था। इसीलिए भगवान् ने गीता में कहा है : 'तू निमित्तमात्र हो।' वैसे ही भगवान् ने महात्मा गांधी

को निर्माण किया, उसका परिणाम यह हुआ कि मिट्टी में से मनुष्य निर्माण हुए और मनुष्य से देवता-निर्माण। वह पुरुष अकेला नहीं था, उसने सबको प्रकाश दिया और छोटे-छोटे बच्चे भी हिम्मत के साथ स्वराज्य का मंत्र बोलने लगे। ऐसा युगपुरुष जब आता है, तो हमारे जीवन के लिए बहुत लाभदायक होता है। उससे जीवन का विकास होता है।

बहुतों को आश्चर्य होता है कि गांधीजी ने जीवन की कितनी शाखाओं में विविध हिदायतें दी हैं। समाजशास्त्र के बारे में उन्होंने काफी कहा है। राजनीति के बारे में उन्हें कुछ कहना है ही। तालीम के बारे में वे कुछ कहते ही हैं। ग्राम उद्योग टूटने नहीं चाहिए, यह भी उनका कहना है। राष्ट्रीय एकता और भाषा की एकता के बारे में भी वे बोलते थे। छूत-अछूत भेद मिटने की बात उन्हें कहनी थी। इस तरह अनेकविध हिदायतें, जीवन की विविध शाखाओं में उन्होंने दी हैं। दुनिया के तरह-तरह के ग्रंथ वे पढ़ते होंगे और उसमें से यह विचार निकले होंगे, ऐसी बात नहीं है। यह विद्या पुस्तकों में नहीं होती। यह शक्ति उसके पास होती है, जो आत्मा का स्वरूप पहचानता है। उसे यह विचार सहज ही सूझता है।

मार्गदर्शक और सेवक

शंकराचार्य महान् पुरुष हो गये। रामकृष्ण परमहंस भी महान् थे। उन्होंने जीवन की सब तरह की बातें लोगों को सिखायीं और उनके जीवन में परिवर्तन ला दिया। वे सूर्यनारायण के समान दूर रहकर प्रकाश देते थे। शंकराचार्य ऐसे ही ऊँचे आकाश में दीखते हैं। रामकृष्ण भी एक तेजस्वी तारे के समान आकाश में रहकर प्रकाश देते हैं। हमें सूर्य की किरणों से आरोग्य मिलता है, लेकिन शरीर के किसी हिस्से में सूजन आने पर उसे सेकना हो, तो उनसे लाभ न होगा, उसके लिए अग्नि ही चाहिए, जो पास आकर, दास बनकर, आपकी सेवा करे। सूर्यनारायण तो आपका गुरु बनता है, दास नहीं। वह प्रकाश देगा और उसमें आपको अपनी बुद्धि से काम करना होगा। वह आपका मार्गदर्शक बनता है, सेवक नहीं। किन्तु अग्नि आपकी सेवक बनती है, आपके

पास आती है, यहाँ तक कि मनुष्य अग्नि को पैदा भी कर सकता है, पहले काष्ठ घिसकर अग्नि पैदा की जाती थी, अब दियासलाई रखी जाती है और तेल डालकर आग लगाते हैं, जब आप चाहें, तब आपके पास वह आ सकती है, आप उसे अपनी छाती पर, जेब में हमेशा रख सकते हैं। अग्नि आपकी मित्र है, फिर भी मार्गदर्शक होती है और मार्गदर्शक होते हुए भी आपकी सेवक है, यह एक बोलने की भाषा है। वैसे सूर्य भी सेवा करता है, पर दूर रहकर।

फिर भी अग्नि में जो शक्ति है, वह नहीं होती, अगर सूर्यनारायण न होता। इसी तरह गांधीजी जैसे युगपुरुष नहीं हो सकते, अगर शंकराचार्य जैसे महापुरुष न होते। वे दूर और उदास रहकर दुनिया की जो सेवा करते हैं, उसकी कीमत कम नहीं, बहुत ज्यादा है। मैं सत्पुरुषों की तुलना नहीं कर रहा हूँ। कौन ऊँचा है और कौन नीचा, यह नहीं कहता, सत्पुरुषों के प्रकार बता रहा हूँ। दोनों के अपने-अपने ढंग होते हैं।

श्रीकृष्ण अनोखे महापुरुष

लेकिन महात्मा गांधी से किसीको कोई डर मालूम नहीं होता था। बच्चों को वे अपने जैसे ही बच्चे लगते थे, इसलिए वे उनके साथ खेलते थे। बहनें भी समझती थीं कि ये अपनी एक बहन हैं। इसलिए जैसे बहनें बहनों के साथ बातें करती हैं, वैसे ही खुलकर उनके साथ बातें करतीं। राजनीतिज्ञों को लगता था कि वे भी एक राजनीतिज्ञ हैं, इसलिए उनके साथ चर्चा करते समय वादविवाद करते थे, ये ये मूर्ख और वह था ज्ञानी। फिर भी वे उनके साथ झगड़ा करते थे। गांधीजी उनकी बात कभी-कभी कबूल भी करते थे। शास्त्र में कहा है कि मूर्ख के साथ ऐसा बर्ताव करना चाहिए कि वह उसकी मर्जी के खिलाफ न हो। वे इन मूर्खों के काम करते थे। इसलिए लोगों को ऐसा भी भास होता था कि वे हमारे बीच के ही एक हैं। उनकी अक्ल और उनका अनुभव दूसरे लोगों में नहीं था, फिर भी लोग उनके साथ बातें, चर्चाएँ और वाद भी कर सकते थे। उनकी बात माननी ही है, ऐसा नहीं था। उन पर गुस्सा भी करते और रूठ भी जाते थे। इस तरह यह एक बिलकुल अपना ही कुटुम्बी मनुष्य है, ऐसा भास लोगों को होता।

ऐसा ही एक पुरुष पाँच हजार साल पहले यहाँ हो गया। उसका नाम था 'श्रीकृष्ण'। उसमें सूर्यनारायण की भी योग्यता थी और अग्निनारायण की भी। अर्जुन उससे कह रहा है : 'अरे, लड़ाई का मौका है, सारथी की जरूरत है।' कृष्ण ने कहा : 'हाँ, मैं तैयार हूँ, तुम्हारा सारथी बनूँगा।' घोड़ों की सेवा के लिए भी वे तैयार थे। याने अर्जुन को यह मालूम भी नहीं होता था कि यह अलग मनुष्य है। यह शक्ति शायद महात्मा गांधी में भी नहीं थी। महात्मा गांधी से हमारी यह कहने की हिम्मत न होती थी कि 'बापू यहाँ गदा हो गया है, जरा झाड़ू लगाइये।' इतना अंतर तो रह ही जाता था। यद्यपि गांधीजी ने भंगी का काम किया और झाड़ू भी लगाया है। लेकिन यह भान रहता ही था कि झाड़ू हमें लगाना है, उसके लिए उन्हें न कहना चाहिए। पर श्रीकृष्ण के लिए यह भी भान भूल गया। इसीलिए श्रीकृष्ण के समान श्रीकृष्ण ही हो गये। सारे हिन्दुस्तान में उसे 'गोपाल-गोपाल' ही कहते हैं। याने आप-आप नहीं, तू-तू कहते हैं। लगता है, मानो अपना दोस्त ही हो। इसलिए उसके साथ झगड़े भी करते थे, आपस में लड़ाइयाँ भी चलती थीं और उसे ऐसे काम देते थे, जो मामूली नौकर को दिया जाता था। यह नम्रता की परिसीमा हो गयी, जहाँ महापुरुष के महापुरुषत्व का खयाल किसीको नहीं रहता। आखिर में जब अर्जुन ने भगवान् का विश्वरूप देखा, तो घबड़ा गया। तभी उसे यह भान हुआ कि जिसके साथ वह बोल रहा है, कितना महान् है। जिसे अग्नि समझा था, वह अग्नि नहीं, सूर्यनारायण रहा। हमने इसका अपराध किया, अपना सखा कहा। फिर भी वह कहता है : 'तू इतना महान् है, तो भी मैं तुझे सखा मानता हूँ।' वह 'तू ही' कहता है, 'आप-आप' नहीं। गीता में हम उसे यह कहते पाते हैं कि 'मैं गुनहगार हूँ, मुझे माफ कर' 'एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्।' सिर्फ एक ही बार वह "को भवान्" आप कौन हैं, कहता है और एक बार क्षमा माँग लेने के बाद वह 'तू-तू' ही कहता है। यह महत्ता भगवान् कृष्ण में थी।

'आलीवार' ने 'कंहन्' पर एक काव्य लिखा है। वह कभी माँ बनकर सेवा

करता है। वह कभी बेटा, कभी भाई, कभी बाप, कभी सखा, कभी सखी, तो कभी गुरु, तो कभी शिष्य बनता और कभी दुश्मन भी हो जाता है।

कृष्ण के जैसे गांधीजी

भारत का यह बड़ा भाग्य है कि इस देश में ऐसे महापुरुष हो गये। उसी भगवान् श्रीकृष्ण की कोटि के महात्मा गांधी थे। याने उनके लिए कभी किसीको संकोच न मालूम होता था। परिणाम यह हुआ कि जीवन के हरएक विषय में लोग उनसे पूछते थे। जब कभी आश्रमवासी का पेट दुखता, तो वह बापू से जाकर कहता। मैं मित्रों से कहता : 'अरे, तुम कैसे लोग हो, मामूली पेट दुखता है, तो उसके लिए भी बापू से पूछते हो।' लेकिन वे सुनते न थे, छोटी-छोटी बातों के लिए उनके पास पहुँचते थे और वे भी सारा काम छोड़कर एक-दो मिनट उनके लिए देते। अभी उनके लंबे-लंबे पत्र छप रहे हैं, उनमें भी आप देखेंगे कि ये ही बातें लिखी हैं : 'फलाना औषध लिया या नहीं, बीमारी कौन-सी है!' इस तरह वे दूसरों के जीवन के लिए सोचते थे। यह उनका गुण नहीं, लोगों का गुण था, क्योंकि लोग भी तरह-तरह के सवाल उनसे पूछते थे। इसलिए बापू को झख मारकर विचार करना पड़ता था। क्या हम शंकराचार्य से यह पूछते कि हमारा पेट दुख रहा है, हम क्या करें? लेकिन बापू की यह विशेषता थी।

गांधीजी की हिदायतों का चिंतन करें

ऐसा एक महापुरुष भारत में हो गया, यह हमारा भाग्य है। उन्हें गये अब आठ साल हो रहे हैं। उनको हम सब कभी भूल नहीं सकते। उन्होंने हमें सब कुछ दिया। किसी एक बड़ी बात का वे आग्रह रखते थे और वह यह है कि 'हरएक को अपनी बुद्धि से काम करना चाहिए, दूसरे की बात प्रमाण मानकर नहीं।' आज बापू हमारे बीच नहीं, उनके उपदेश ही हमारे पास हैं। हमारा कर्तव्य है कि जो प्रकाश हमें उन्होंने दिया, 'उसमें, लेकिन अपने पाँवों, हम चलें। आज हिन्दुस्तान के सामने यह समस्या है कि

उस 'राष्ट्र-पिता' ने हमें जो सब प्रकार के जीवनविषयक विचार और हिदायतें दी हैं, क्या उनका हम वैसा उपयोग करते हैं ? यह प्रश्न हमेशा हमारे सामने उपस्थित रहेगा। इसका उत्तर हमें देना होगा। हम उनका स्मरण करते हैं, तो अपने पर ही उपकार करते हैं। उनके स्मरण से हमारा काम बनेगा, यही हमें सोचना चाहिए। हम कहना चाहते हैं कि हिन्दुस्तान के सामने आज ऐसे मसले नहीं, जिनका उत्तर महात्मा गांधी ने कहीं न दिया हो। आगे ऐसे प्रश्न आ सकते हैं, लेकिन अभी तक नहीं आये। इसलिए हमें उनसे मिली हिदायतों का चिंतन करना चाहिए।

गांधीजी का कालदर्शन : नयी तालीम

स्वराज्य-प्राप्ति के बाद क्या-क्या मुश्किलें आयेंगी, इसका चिंतन वे दस साल पहले करते थे। स्वराज्य के दस साल पहले उन्होंने 'नयी तालीम' देश को दी और कहा कि 'हिन्दुस्तान को यह मेरी सबसे आखिरी और सबसे श्रेष्ठ देन है।' स्वराज्य प्राप्त हुए सात-आठ साल हुए, तब ध्यान में आ रहा है कि देश को शायद नयी तालीम का उपयोग हो। अब यह इसलिए सूझा कि कॉलेज और हाईस्कूल के लड़के अविनयी बन गये हैं। जब हमें यह दर्शन हुआ कि वे बात नहीं मानते, अनुशासित नहीं, उच्छृङ्खल बन गये और देश के काम के लायक नहीं रहे, तब नयी तालीम सूझ रही है।

अंधे को तब दर्शन होता है, जब सामने खंभा हो और वह उससे टकराये। आँखवालों को तब दर्शन होता है, जब वह दूर से ही खंभा देखे। हम ऐसे अंधे हैं कि एक आँखवाले ने हमें बताया कि भाई, यहाँ खंभा है, तो भी हम भूल गये और टकराये। १५ अगस्त का दिन था, पहला ही स्वातन्त्र्य दिवस था। एक संस्था में हमारा व्याख्यान हो रहा था, हमने कहा था कि नंगे राज्य में पुराना झण्डा एक क्षण के लिए भी न चलेगा। अगर नये राज्य में पुराना झंडा रहे, तो मतलब यही होगा कि पुराना ही राज्य चल रहा है। जैसे नये राज्य में पुराना झंडा नहीं चल सकता, वैसे ही नये राज्य में पुरानी तालीम भी नहीं चल सकती है। लेकिन हम लोगों ने वह चलायी। हमें अब भान हो रहा है कि उससे कोई लाभ नहीं।

युगानुकूल सूत्रयज्ञ

दूसरी मिसाल मैं देता हूँ। गांधीजी ने कई बार कहा था कि 'देश की उन्नति के लिए खादी और ग्रामोद्योग अत्यन्त जरूरी हैं, इसलिए हरएक को कातना चाहिए।' जैसे इंगलैंड के हरएक बच्चे को तैरना आना चाहिए, क्योंकि वह देश समुद्र-परिवेष्टित देश है। इसी तरह जिस देश में जमीन का रकबा कम और जनसंख्या ज्यादा है, वहाँ हर बच्चे को कातना सिखाना चाहिए। वह देश का 'डिफेन्स' (संरक्षण) है। भगवान् करे, विश्वयुद्ध न हो और हिन्दुस्तान उससे बचे। लेकिन अगर विश्वयुद्ध हो जाय और मान लीजिये, एक बम बम्बई की मिल पर, दूसरा अहमदाबाद की मिल पर और तीसरा इस नगरी पर गिरे, तो सारे-के-सारे मजदूर गाँवों में भाग जायँगे। वे गाँव-गाँव से वहाँ पेट भरने के लिए ही आये हैं, मरने के लिये नहीं। तब पता चलेगा कि हिन्दुस्तान की हालत क्या होगी? लोगों को नंगे रहने की नौबत आयेगी। इसलिए पहला काम और सबसे बड़ा काम सरकार को यही करना होगा कि बड़े-बड़े शहरों के रक्षण के लिए शस्त्रशक्ति (आर्मामेण्ट) खड़ी करनी होगी। और उसके लिए इतना खर्च करना पड़ेगा कि गरीबों की कोई सेवा ही न हो सकेगी। इसलिए इसमें हम कोई लाभ नहीं देखते। इसके बदले अगर हर बच्चे को आप कातना सिखायें, तो देश बच जायगा।

इसे एक यज्ञ समझकर करना चाहिए। प्राचीन काल में जंगल जलाना यज्ञ माना जाता था। पर आज जंगल बढ़ाना है, इसलिए पेड़ लगाना यज्ञ होगा। इसी दृष्टि से हम कहते हैं कि आपको टोकन के तौर पर कुछ समिधा काटनी चाहिए। पहले विद्यार्थी गुरु के घर समिधा काटकर ले जाता और कहता कि मैं आपकी सेवा में आया हूँ। यानी जंगल काटना भी एक सेवा मानी जाती थी। इस तरह जमाने-जमाने की माँग के अनुसार यज्ञ बदलता है। महात्मा-गांधी ने कहा था कि हमारे देश की रक्षा के लिए हरएक को कातना आना चाहिए। और देश के सामने मिसाल रखने के लिए रोज बिना भूले वे कातते थे। और भगवान् की कृपा से आखिरी दिन भी काता। अगर भगवान् चाहता,

तो उनका यह मत तोड़ सकता था और शाम को पाँच-साढ़े-पाँच के बदले, दो-तीन बजे ही उठा लेता, लेकिन ईश्वर भक्त का धागा नहीं टूटने देता। इसलिए उस दिन भी उनका कातना हुआ। यह उनकी मिसाल हमें बलवान् बना सकती है।

भूदान-यज्ञ गांधीजी की राह पर!

मैंने कहा कि ऐसी समस्या खड़ी हो सकती है जहाँ उनका उपदेश काम न भी दे, पर आज तक ऐसा नहीं हुआ। इतना ही नहीं, जमीन के बारे में अपने खयाल उन्होंने अत्यंत स्पष्ट शब्दों में 'फिशर' के साथ हुई चर्चा में बताये हैं। 'स्वराज्य के बाद जमीन का क्या होगा?' यह सवाल उनसे पूछा गया तो उन्होंने कहा था: 'जमीन बाँटी जायगी, नहीं तो लोग कब्जा कर लेंगे।' उन्होंने जो हिदायतें दीं, उनका बहुत सौम्य उपयोग कर हमने काम शुरू किया है। इसलिए बाबा को इसका अत्यंत समाधान है कि वह अपना कर्तव्य कर रहा है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि जमीन पर सबका समान अधिकार होना चाहिए। इसमें कोई शंका नहीं कि हर देहात में कर्म और ज्ञान का संगम करनेवाली तालीम देनी चाहिए। नहीं तो कुछ लोग केवल हाथ से काम करनेवाले और कुछ लोग केवल दिमाग से काम करनेवाले, ऐसे दो विभाग हो जायँगे। अगर परमेश्वर की यही इच्छा होती, तो उसने कुछ लोगों को हाथ ही हाथ दिये होते, और कुछ लोगों को सिर ही सिर—कुछ 'राहु' और कुछ 'केतु' ही निर्मित होते। लेकिन हर शख्स को उसने दिमाग दिया और हाथ भी। इसलिए ज्ञान और कर्म का योग होना ही चाहिए। इसके बिना जीवन न जमेगा। ज्ञान और कर्म की तालीम के बिना देश का उद्धार नहीं हो सकता। अशांतिमय साधनों के प्रति देश में प्रीति रही, तो नुकसान होगा। हमें अपने देश की कोई भी समस्या हल करनी हो, तो शांति और प्रेम के सिवा कभी दूसरा रास्ता न लेना चाहिए। तभी देश की प्रगति और उत्थान होगा। इसमें कोई शक नहीं कि सिर्फ पुरुषों का विकास हो और स्त्रियों का न होगा तो देश लंगड़ा रहेगा। हिन्दुस्थान में छूत-अछूत भेद रहे, तो हिन्दुस्तान के टुकड़े-टुकड़े हो जायँगे। हर मनुष्य

को भारतीयता के नाते काम करना सीखना होगा। हम सबको अपने जीवन की योजना सत्य और अहिंसा पर ही बनानी होगी। यही सब महात्मा गांधी ने हमें उपदेश दिया था।

कोयम्बतूर
२-१०-'५६

औजार किसानों के हाथ रहें

: ५० :

हम कबूल करते हैं कि औजारों में सुधार होना चाहिए, अच्छे औजार घर में आयें, तो अच्छा ही है। आज हम चक्की पीसते हैं, तो घंटे भर में दो पौंड आटा पीसा जाता है, जिससे ज्यादा मेहनत होती है। कल अगर ऐसी चक्की बनायी जाय, जिससे एक घंटे में चार पौंड आटा पीसा जा सके तो मेहनत कम होगी। हम उसे पसंद करेंगे। औजार दुरुस्त होते जायँ और मनुष्य को श्रम कम पड़े, यह हम भी चाहते हैं। लेकिन हमारे हाथ का औजार ही छीन लिया जाय, वह दूसरे के हाथ में दिया जाय और फिर हमें चीजें खरीदनी पड़ें, तो उसे क्या कहा जाय ?

साधनविहीनता खतरनाक !

अगर कोई कहे कि 'तेरे हाथ में तलवार है, वह ठीक नहीं है। इन दिनों तलवार काम नहीं करती, अब तो पिस्तौल होनी चाहिए', तो मैं कबूल करूँगा कि तलवार से पिस्तौल बेहतर है। किंतु वह हमारे हाथ से तलवार ले ले और हमें पिस्तौल न दे, उसे अपने ही हाथ में रखे, तो क्या वह ठीक होगा ? हम मानते हैं कि तलवार से पिस्तौल बेहतर है, पर क्या हमारे हाथ की तलवार के बदले तुम्हारे हाथ का पिस्तौल बेहतर है ? इसी तरह हमारे हाथ में आज जो चरखा है, उसके बदले दूसरा अच्छा चरखा हमारे हाथ में आता हो, तो ठीक है। परंतु हमारे हाथ का चरखा छीना जाय और दूसरे के हाथ में दूसरा अच्छा औजार आये, तो उससे क्या फायदा होगा ?

इस पर कहा जाता है कि 'तुम लोगों को हम बेकार न बनायेंगे, तुम्हें दूसरे कितने ही काम देंगे। नाहक कपड़ा क्यों बनाते हो, चावल क्यों कूटते हो, आटा क्यों पीसते हो, तेल क्यों निकालते हो? रास्ते बनाओ। हिन्दुस्तान में रास्ते बनाने का कितना काम पड़ा है। तुम्हारे हाथ से रास्ते बनेंगे, तो व्यापारियों को आज जैसी एक गाँव से दूसरे गाँव जाने में तकलीफ न होगी। अच्छे रास्ते बनेंगे, तो शहर का डॉक्टर देहात में आयेगा और दवा देगा। उसके बदले में थोड़ा-सा पैसा ले जायगा। आपके देहात के घर भी निकम्मे हैं, उन्हें अच्छा बनाना है। यह भी एक काम है। जैसे कितने ही काम पड़े हैं। आपके घरों की दीवालें चाहे आप बना लें, पर आप के ऊपर की खपरैल अच्छी नहीं होती। इसलिए हम कारखाने में बनी हुई खपरैल ला देंगे। आप नाहक घर की छत पर घास बिछाते हैं। घास क्या छत पर बिछाने की चीज है? वह तो गाय-बैलों के खाने की चीज है। हम आपको अच्छे नये मकान बना देंगे, जिसकी दीवालें भी ऊँची रहेंगी।' इस तरह देहातवालों को समझाया जाता है, पर आपको इस पर सोचना चाहिए कि क्या वास्तव में यह हमारे हित में होगा?

कच्चे माल का पक्का माल गाँव में ही बने

किसी के मन में यह भ्रम न होना चाहिए कि 'सर्वोदय' में मनुष्यों को ज्यादा काम करना पड़ेगा। औजारों में जितने सुधार हो सकते हैं, उतने करने के लिए सर्वोदय राजी है। उसे इतना ही कहना है कि वे साधन किसान के हाथ में हों। अच्छे साधन देने के निमित्त से किसान के हाथ से साधन छीनना और दूसरों के हाथ में देना गलत है। आपको रास्ते बनाने हैं, परन्तु एक बार रास्ते बना लिए, तो ५-७ साल में कुल हिन्दुस्तान में रास्ते बन जायँगे। क्या यह कोई उत्पादक काम है? जो उत्पादक काम होता है, वह कायम रहने के लिए मनुष्य के पास रहता है। इसीलिए लोगों के हाथ में धन्धे होने चाहिए। गाँव में जो कच्चा माल होता है, उसका पक्का माल गाँव में ही बनाना लोगों के लिये सबसे बड़ा उद्योग (एम्प्लायमेंट) है। इसके बदले गाँव के कच्चे माल का

पक्का माल शहर में कारखाने में बनायेंगे, तो गाँववालों को धन्धे ही न रहेंगे। गाँव के बच्चों को मक्खन नहीं मिलेगा। परिणाम यह होगा कि बच्चे कमजोर बनेंगे, तो आगे आपकी खेती कमजोर हो जायेगी, जिससे सारा देश कमजोर होगा। इसलिए हम इसमें सजग रहें।

सारांश, सर्वोदय यह विचार मानता है कि गाँव के औजारों में सुधार हो, पुराने औजार सतत चलते रहें, यह ठीक नहीं, उनमें सुधार होना जरूरी है, पर वह गाँव में ही हो। गाँव के कच्चे माल का पक्का माल गाँव में ही बने और गाँववाले जो चीजें इस्तेमाल करते हैं, उतनी छोड़कर बाकी बची चीजें ही बेची जायँ। गाँव में दूध, मक्खन, फल, तरकारी आदि खूब हों। गाँव में दो साल के लिए पर्याप्त अनाज हो। गाँव के सब उद्योग गाँव में हों। यह सर्वोदय का प्रथम विचार है।

सर्वोदय का दूसरा विचार यह है कि गाँव के लोगों को भूमि मिलनी चाहिए। नहीं तो गाँव में ही दो वर्ग हो जायँगे, तो फिर ग्रामों में शहरों के खिलाफ खड़े होने की शक्ति न रहेगी, आपस में लड़ने में ही सारी शक्ति खत्म हो जायगी। शहरों का गाँवों पर हमला होगा, तो उसका प्रतिकार करना गाँवों के लिए असंभव हो जायगा। गाँव में प्रेम न रहेगा, झगड़े रहेंगे, तो गाँववालों का भला न होगा। इसलिए जमीन पर सबका अधिकार मानकर सबको जमीन देनी चाहिए।

सर्वोदय का तीसरा सिद्धांत यह है कि गाँव में हर बच्चे को तालीम दी जाय। वह तालीम ऐसी न होगी, जिसमें ज्ञान और कर्म अलग-अलग हों। आज तो बच्चे को पढ़ना-लिखना आ गया, तो काम से नफरत पैदा होती है। इसमें ग्राम के लिए खतरा है और देश के लिए भी। इसलिए गाँव में पराक्रमी तालीम मिलनी चाहिए। ऐसी तालीम, जिसमें विद्या के साथ-साथ हम उत्पादन बढ़ा सकें। फिर देश के लोग पराक्रमी और ज्ञान संपन्न होंगे।

सर्वोदय का चौथा सिद्धान्त यह है कि गाँव में किसी प्रकार का जातिभेद का खयाल न हो। ये जातियाँ इसलिए बनीं कि काम बँटे हुए थे। उनमें किसी

प्रकार का ऊँच-नीच भेद न होना चाहिए, प्रेम में कमी न होनी चाहिए, किसी भी सार्वजनिक काम में जाति का खयाल न होना चाहिए, सब लोग परमेश्वर की संतान हैं, इसका सतत भान रहना चाहिए।

पोल्लमेडु (कोयम्बतूर)
१-१०-'५६

मजदूरों की ताकत कैसे बने ? : ५२ :

हमने मजदूरों का सवाल हाथ में लिया है। आपमें से बहुत-से लोग मजदूर हैं। हम चाहते हैं कि आप लोग सुखी हों, आपका जीवन सुधरे। मालिकों और आपके बीच प्रेम-संबंध बने, कोई किसी को न चूसे और न दबाये। आज खेतों में काम करनेवाले मजदूर सबसे अधिक दुःखी और गिरे हुए हैं। इसीलिए हमने उनका मसला अपने हाथ में लिया। किन्तु हम चाहते हैं कि शहर के मजदूरों का भी मसला हल हो। जो सबसे दुःखी हों, उनका दुःख मिटा, तो दूसरों का भी दुःख मिटेगा। इसीलिए हमने कहा कि 'हमारा आन्दोलन मजदूर-आन्दोलन है।'

त्याग और प्रेम से ताकत बनेगी

हम चाहते हैं कि मजदूरों की ताकत बने। प्रश्न होगा कि वह कैसे बने ? इसके लिए आपमें हिम्मत होनी चाहिए, आपको अपना दिल अंदर से देखना चाहिए। आप में ताकत है, परन्तु उसका आपको भान नहीं। वह तब होगा जब आप एक-दूसरे की मदद करना शुरू करेंगे। गरीब ही गरीबों की चिंता करना शुरू कर देंगे, तो उसमें से नैतिक ताकत बनेगी। उस ताकत से हम श्रीमानों पर भी असर डाल सकेंगे, उन्हें समझा सकेंगे, उनकी उदारता को जगायेंगे। यही हमारा रास्ता है। हम उम्मीद करते हैं कि आप इस रास्ते से चलने की हिम्मत करेंगे।

हमें इसी बात की चिंता है कि मजदूरों की ताकत बने। वह तब तक न

बनेगी जब तक वे स्वयं त्याग करना न सीखेंगे। वे समझते हैं कि गरीब क्या त्याग कर सकेंगे ? लेकिन गरीबों के भी बालबच्चे होते हैं और वे उनके लिए त्याग कर सकते हैं, तो अपनी जमात के लिए भी कर सकते हैं। गरीबों को सिर्फ माँगना ही न सीखना चाहिए, उनमें देने की ताकत भी आनी चाहिए। गरीब श्रम कर सकते हैं, देश के लिए श्रमदान दे सकते हैं। वे गरीबों के लिए अपने-अपने श्रम का हिस्सा देंगे, तो एक बड़ी पुण्यशक्ति का निर्माण होगा। उसके सामने कंजूस श्रीमान् न टिकेंगे। सारे-के-सारे श्रीमान् कंजूस नहीं होते। उनमें जो उदार होते हैं, वे फौरन हम लोगों में दाखिल हो जायँगे। कंजूसों पर उनका भी असर पड़ेगा। जब गरीब जाग जायँगे और एक दूसरे के लिए त्याग करेंगे तो त्याग की हवा फैलेगी। आज गरीबों की इज्जत नहीं है। उनका त्याग प्रकट नहीं हो रहा है। उनमें त्याग की शक्ति है, परन्तु उसका उन्हें भी भान नहीं। गरीब आपस में लड़ते-झगड़ते हैं, व्यसनों में पड़े हैं, एक-दूसरे की चिंता नहीं करते, इसीलिए उनकी नैतिक शक्ति नहीं बनती। वे पाँच-पांडवों की तरह एक हो जायँगे, तो उनकी शक्ति बनेगी।

मजदूर अपने लिए इज्जत महसूस करें

आप गरीब हैं, परन्तु कोई आपसे भी गरीब है। आप उनके लिए त्याग करना सीखें। मुझे यह सुनकर खुशी हुई कि यहाँ के 'मजदूर-संघ' ने संपत्तिदान देना तय किया है। पाँच हजार मजदूरों ने तय किया है कि वे प्रतिमास संपत्तिदान देते रहेंगे। हम पैसे की ज्यादा कीमत नहीं करते, त्यागवृत्ति की और प्रेम की ही अधिक कीमत करते है। उसीसे आपकी ताकत बनेगी और गरीबों को अपने लिए इज्जत महसूस होगी। फिर श्रीमानों को भी उनके लिए इज्जत महसूस होगी। आज गरीब दीन बन गये हैं, अपने को लाचार समझते हैं, अपनी ताकत महसूस नहीं करते, आपस में लड़ने में शक्ति खर्च करते हैं। परिणाम यह होता है कि दूसरों को भी उनके लिए इज्जत नहीं मालूम होती। लेकिन अब गरीब जाग रहे हैं, उनके लिए इज्जत पैदा हो रही है। उसका सुंदर उपयोग करना होगा। उसमें

से ठंडी अग्नि प्रकट करनी होगी, जो किसी को भी न जलायेगी, सबको पावन करेगी। सबके दोषों को जलायेगी। ऐसी नैतिक-धार्मिक अग्नि निर्माण करनी है। उसमें गरीबों के दोष भस्म हो जायँगे। फिर श्रीमानों के भी दोष भस्म होंगे।

गरीब समझते हैं कि जो कुछ दोष है, सारे श्रीमानों में ही है। वे चूसनेवाले हैं, पीसनेवाले हैं, सतानेवाले हैं, निर्दय हैं, स्वार्थी हैं। श्रीमान् समझते हैं कि सारे दोष गरीबों में है। वे पूरा काम नहीं करते, अप्रामाणिक हैं, व्यसनों में पड़े हैं, आपस में लड़ते-झगड़ते हैं, बुद्धिहीन हैं। इस तरह ये उन्हें हीन समझते हैं और वे इन्हें। दोनों में एक-दूसरे के लिए हीनभाव रखने में स्पर्धा चल रही है। जहाँ समाज में आदर ही खतम हुआ, वहाँ ताकत कैसे पैदा होगी? सबसे पहली बात यह है कि मनुष्य को अपने लिए आदर होना चाहिए। अपनी शक्ति का भान होना चाहिए।

श्रीमानों के पास हृदय और बुद्धि में एक जरूर है

भूदान-यज्ञ में पाँच लाख लोगों ने दान दिया है, जिनमें साढ़े-चार लाख गरीब हैं। जब साढ़े-चार लाख गरीबों ने दान दिया, तब पचास हजार श्रीमानों को देना ही पड़ा, क्योंकि एक ताकत पैदा हुई। श्रीमान् दो प्रकार के होते हैं। एक होते हैं हृदयवाले, उनके हृदय पर फौरन असर होता है। दूसरे वे जो हृदयवाले नहीं होते, पर बुद्धिवाले होते हैं। जब वे देखेंगे कि गरीबों में इतनी नैतिक ताकत पैदा हुई है कि उसके सामने हम टिक नहीं सकते हैं, तो वे, भी इसमें शामिल हो जाते हैं। श्रीमानों में कुछ लोग हृदयहीन दीख पड़ेंगे, परन्तु यह न कहें कि वे हृदयहीन हैं, बल्कि यही समझें कि वे बुद्धिमान् हैं। जिनके हृदय है, वे फौरन आपके साथ हो जायँगे। आप यहाँ भी देख रहे हैं कि दस-बीस श्रीमान् भूदान में लगे हैं, क्योंकि उन्हें हृदय है। जिनके पास हृदय नहीं, उनके पास बुद्धि होगी। हमारा काम ऐसा होना चाहिए कि जिन्हें हृदय है, उनके हृदय पर और जिन्हें बुद्धि है, उनकी बुद्धि पर असर हो। अंग्रेज एकदम भारत छोड़कर चले गये, तो क्या आप समझते हैं कि वे एकदम हृदयवान् बन गये? ऐसी बात नहीं। किंतु वे बुद्धिमान् थे। उन्होंने

समझ लिया कि हम यहाँ टिक नहीं सकते, टिकने की कोशिश करेंगे, तो मार खायेंगे, हार खायेंगे, वे बुद्धिमानी से चले गये, तो उनके लिए यहाँ आदर भी रहा। हिन्दुस्तान में राजा-महाराजा खतम हुए। उन्होंने कोई झगड़ा नहीं किया और राज्य छोड़ दिया। उसके लिए उन्हें संपत्ति भी मिली और जरा 'राजप्रमुख' भी बनाया गया। अब वह 'राजप्रमुख' पद भी खतम हो रहा है। पर उन्होंने झगड़ा नहीं किया, क्योंकि उनमें से कुछ-थोड़े हृदयवाले थे, वे हृदय से समझ गये और बुद्धिवाले बुद्धि से समझ गये कि इसके आगे हम टिक नहीं सकते। सारा प्रवाह राज्य के विरुद्ध है, इतना वे समझ गये। जिनके हाथ में सत्ता और सम्पत्ति होती है, वे या तो हृदयवान् होते हैं या बुद्धिमान्। जिसे हृदय और बुद्धि भी न हो, ऐसा कोई उनमें होता ही नहीं। क्योंकि दोनों में से एक भी न हो, तो उनके पास सत्ता या संपत्ति आयेगी ही नहीं। इसीलिए मैं किसी भी श्रीमान् को हृदयहीन नहीं कहता। मैं कहता हूँ कि वह हृदयहीन दीख पड़ेगा, पर होगा वह बुद्धिमान।

गरीब हृदय-शुद्धि का कार्य उठायें

भूदान और सम्पत्तिदान में से नैतिक ताकत पैदा होगी, तो हृदयवाले श्रीमान् साथ हो जायँगे और बाकी श्रीमान् भी आहिस्ता-आहिस्ता पीछे आयेंगे। कुछ लोग पूछते हैं कि 'आप सब श्रीमानों का हृदय-परिवर्तन कैसे करेंगे?' कुछ लोग ऐसे होते हैं कि उन्हें हृदय ही नहीं होता, तो फिर आप उनका हृदय परिवर्तन कैसे करेंगे? मैं उन्हें जवाब देता हूँ कि जिन्हें हृदय नहीं, परन्तु उन्हें बुद्धि तो है ही, इसलिए हम उनकी बुद्धि का परिवर्तन करेंगे। बाबा का भूदान-कार्य हृदयवान् और बुद्धिमान् कार्य है। यह प्रेम का कार्य है, इसलिए इसमें हृदयवाले आयेंगे। यह ऐसा कार्य है कि इसके बिना श्रीमान् बच ही नहीं सकते। वे समझ गये हैं कि 'जमाना बाबा के साथ है, अगर हम बाबा के साथ अनुकूल होंगे, तो बचेंगे, नहीं तो हरगिज नहीं बच सकते।' इसलिए बाबा को पूरा विश्वास है कि श्रीमानों की चिंता करने का कोई कारण नहीं। चिंता करनी है, तो गरीबों की करनी है। उनमें त्याग और प्रेम

पैदा हो, उनकी हृदय-शुद्धि हो, वे एक-दूसरे की मदद कर बलवान् बनें, श्रीमानों के सामने दीन न बनें, बल्कि छाती खोलकर खड़े रहें और उनके दुर्गुणों को खतम करें। अगर यह शुद्धि-कार्य गरीबों में हो, तो उनकी ताकत बनेगी।

मजदूरों का दान वटबीज

यहाँ के मजदूर हमें संपत्तिदान देंगे, तो वे करोड़ों का ढेर न लगायेंगे, थोड़ा-थोड़ा ही देंगे। लेकिन यह जो थोड़ा है, यह वटबीज है। वट का बीज बोया जाता है, तो उसमें से प्रचंड वृक्ष पैदा होता है। आप मजदूर लोग जो थोड़ा-सा धन देंगे उसे बाबा बोयेगा। उसका उपयोग भूमिहीनों और गरीबों के लिए किया जायगा। फिर बाबा आपकी ताकत लेकर श्रीमानों के पास पहुँचेगा और उनसे पूछेगा : 'देखो, गरीबों ने इतना दिया है, तो आप भी दीजिये। उसने रुपये में दो पैसा दिया है, तो क्या आप भी उतना ही देंगे?' फिर श्रीमान् समझ जायँगे और प्रेम से दान देने के लिए सामने आयेंगे। प्रेम से न आयेंगे तो लज्जा से आयेंगे।

एक अमेरिकन भाई ने हमसे पूछा : 'बाबा क्या आपको सभी लोग प्रेम से दान देते हैं? कोई लज्जा से नहीं देता?' हमने जवाब दिया कि 'लज्जा से देते हैं तो ज्ञानपूर्वक देते हैं। छोटा बच्चा नंगा रहता है, उसे लज्जा नहीं मालूम होती। क्योंकि उसे ज्ञान नहीं रहता है। अगर ज्ञान होता, तो लज्जा मालूम होती। इसलिए कहना पड़ता है कि जो लज्जा से दान देता है, उसे ज्ञान हुआ है कि देना धर्म है। इसलिए जो लोग मुझे प्रेम से देते हैं, उनका दान मुझे अत्यंत मंजूर है और जो लज्जा से देते हैं, उनका भी दान मुझे अत्यंत मंजूर है, क्योंकि एक ने हृदय से दिया है, तो दूसरे ने बुद्धि से। शास्त्रों में भी लिखा है कि "*श्रद्धया देयम्, अश्रद्धया अदेयम्, ह्रिया देयम्, भिया देयम्।*" श्रद्धा से दो, अश्रद्धा से मत दो, लज्जा से दो, भय से दो। यह शास्त्र की आज्ञा है। 'हम अगर नहीं देते, तो हमारा भला न होगा', इसे भय कहते हैं। यह भी ज्ञान है। हम नहीं देते, तो लोग हमसे घृणा करेंगे, इसे 'लज्जा' कहते हैं और

यह भी एक ज्ञान है। जो लज्जा, भय या प्रेम से देते हैं, वे ज्ञान से ही देते हैं। इसलिए मुझे प्रथम चिन्ता आप गरीबों की ही करनी है।

यहाँ एक भी मजदूर, एक भी गरीब बिना दान दिये न रहे। आपको अगर आधा पेट खाना मिले, तो एक ही कौर दें, तो यह तपस्या हो जायगी। तपस्या से ही ताकत पैदा होती है।

सिंगनल्लुर
३-१०-'५६.

आत्मज्ञान की गहराई और विज्ञान का विस्तार : ५२ :

हमारे सामने विविध प्रकार के जीवन का दर्शन होता है। एक दर्शन है, प्राणी-पशु-पक्षी के जीवन का। दूसरा है, पामर मनुष्य के जीवन का। तीसरा है, ज्ञानियों के जीवन का। ये तीन प्रकार के जीवन स्पष्ट है। इनमें भी और अनेक प्रकार हो जाते हैं।

ऊपर के काँच के कारण विविध दर्शन

इतने सारे विविध प्रकारों में चैतन्य का प्रकाश हो रहा है। काँच स्वच्छ हो, तो प्रकाश स्वच्छ है और अस्वच्छ हो तो प्रकाश भी धुंधला-सा होता है। काँच टूटा-फूटा हो तो तीसरे प्रकार का प्रकाश होगा। जब मैं काँच कहता हूँ तो मेरा मतलब है दीपक का काँच। आइना भी हो, तो स्वच्छ आइने का दर्शन अलग होगा और अस्वच्छ आइने का दर्शन अलग, टूटा-फूटा आइना हो तो और विचित्र दर्शन होगा। ऐसे ही दीपक का काँच स्वच्छ हो, तो अंदर का प्रकाश स्वच्छ दीखेगा। अगर वह अस्वच्छ हो, तो अंदर का प्रकाश स्वच्छ होते हुए भी अस्वच्छ दीखेगा। वैसे ही टूटा-फूटा आइना हो, तो विकृत दर्शन होगा। ऐसे भी काँच होते हैं जिनमें चेहरा बिलकुल विचित्र दीखता है, जिसे अंग्रेजी में 'लाफिंग ग्लास' कहते हैं। उसमें लंबा चेहरा हो, तो चौड़ा दीखेगा और चौड़ा हो, तो लंबा। फिर ऐसे भी काँच होते हैं, जिनमें से देखते हैं, तो सृष्टि लाल, नीली, पीली दीखती है।

देह बुद्धि की दो गाँठें

यह जो सारा विविध दर्शन होता है वह ऊपर के काँच का नमूना है, पर अन्दर का रूप एक ही है। यह बात सीखने लायक है। हमें जितने मानव दीखते हैं, सबमें विविध प्रकार के रूप पाये जाते हैं। कोई किसी को ठगता, लूटता है, तो कोई दूसरे को तकलीफ देकर जीवन बिताता है। कुछ ऐसे भी होते हैं, जो दूसरे लोगों का भला करने में ही जीवन बिताते हैं। ऐसे तीन प्रकार के लोग स्पष्ट दीखते हैं। जानवरों में तो हम देखते हैं, कि वे अपने शरीर तक ही सीमित रहते हैं। वे शरीर की तकलीफ से भयभीत होते हैं। पत्थर उठाते ही भाग जाते और हरा घास आदि दिखाते ही आपके पास आ जाते हैं। यह केवल देह का ही आकर्षण है। वे अपनी देह को ही अपना रूप समझते और दूसरों को अपने से भिन्न मानते हैं। यह जानवर का जीवन है। देह ही सब कुछ है, ऐसा वे समझते हैं और उसमें भी अपनी ही सब कुछ है, ऐसा समझते हैं। ये दो बातें हैं: पहली यह कि देह के अंदर की चीज नहीं पहचानते, देह को पहचानते हैं और दूसरी अपनी ही देह को मानते हैं। गाँठ पक्की कब होती है? जब दुहरी होती है। सारांश, पशु के जीवन में देहबुद्धि की दुहरी गाँठ बनी है, पहली गाँठ 'मैं देह हूँ' और दूसरी 'मैं यह देह हूँ।'

पशु की एक गाँठ थोड़ी खुलती है

ये दोनों गाँठें जब खुलती हैं, तभी हृदयग्रंथि खुलती है। लेकिन पशुजीवन में इनमें से एक गाँठ ज़रा सी खुलती है, 'मैं देहरूप हूँ' यह गाँठ नहीं खुलती, कारण वे देह को ही पहचानते हैं। किंतु 'यही मैं देह हूँ' यह गाँठ ज़रा खुलती है। गाय अपने बछड़े को अपना रूप मानती है। कुतिया भी इसी तरह मानती है। इसलिए कुछ थोड़ा-सा प्रेम दिखाती है। यही एक गाँठ खुलती है, लेकिन वह गाँठ भी पूरी तरह नहीं खुलती, क्योंकि दुनिया में जितनी देह हैं, उतनी सभी मेरे रूप हैं, ऐसा तो वह नहीं मानती।

गहराई बढ़ाने की प्रक्रिया

एक देश भक्त है, वह समझता है कि इस देश में जितने रहते हैं, सभी

मेरे रूप हैं। किंतु दूसरे देश की देहों को वह अपना रूप नहीं मानता, अपने से अलग मानता है। इसलिए वह देह को व्यापक समझता है, पर बहुत ज्यादा व्यापक नहीं। देशभक्त मानता है कि मेरे देश में खूब उत्पादन बढ़े। इस तरह उसकी पहली गाँठ खुली, पर वह पूरी तरह नहीं, क्योंकि वह यह नहीं जानता है कि दूसरे देश के लोग भी मेरे रूप हैं। अगर वह मानता कि कुल दुनिया मेरा रूप है, तो यह गाँठ खुल जाती। फिर भी एक गाँठ रह जाती, क्योंकि दुनिया याने दुनिया का बाह्य रूप वह समझता है, अन्दर के रूप का तो उसे खयाल है ही नहीं। कोई कुआँ पाँच फुट गहरा है। उसे हम दस फुट गहरा करते हैं, फिर ५० फुट और उसके बाद १०० फुट गहरा करते हैं, तभी अन्दर का झरना शुरू होता है। इस तरह गहरा-गहरा खोदते जाना चाहिए। 'मैं देह नहीं, मैं इंद्रियरूप हूँ', तो पाँच फुट गहरा हो गया। 'मैं इंद्रिय रूप नहीं, मनरूप हूँ', यह दस फुट गहरा हो गया। 'मैं मनरूप नहीं, बुद्धिरूप हूँ', यह ५० फुट गहरा हो गया। 'मैं बुद्धिरूप नहीं, आनंदस्वरूप आत्मा हूँ', यह सौ फुट गहरा हो गया। अब झरना भी बहने लगा। यही ज्ञान की प्रक्रिया है।

चौड़ाई बढ़ाने की प्रक्रिया

एक गड्ढा ५ फुट गहरा है। उसमें अन्दर से झरने का पानी नहीं आता, बाहर से बारिश का पानी भर जाता है। एक शख्स ने सोचा, इतना पानी नाकाफी है। उसने १५ फुट गड्ढे को चौड़ा किया। इस तरह करते-करते आखिर उस मनुष्य ने १०० फुट चौड़ा किया। अब उसमें बारिश का पानी इतना ज्यादा भरने लगा कि अन्दर से झरना बहने की कोई आवश्यकता नहीं रही। व्यापक बनने का यह एक प्रकार है। जो लोग घर का उत्पादन बढ़ाने की बात करते हैं, वहाँ गड्ढा ५ फुट चौड़ा होता है। जो गाँव का उत्पादन बढ़ाने की बात करते हैं, वे उस गड्ढे को ५० फुट चौड़ा करते हैं। जो तमिलनाड का उत्पादन बढ़ाने की बात करता है, वह १०० फुट गड्ढे को चौड़ा करता है और जो सारे भारत का उत्पादन बढ़ाने की बात करता है, सभी को खाना-पीना अच्छा मिले, यह सोचता है, उसने हजार फुट गड्ढे को चौड़ा किया। फिर भी

यह नाकाफी है। सारी दुनिया में खूब उत्पादन बढ़े, यह जिसने सोचा, उसने लाख-लाख फुट चौड़ा किया। सारांश, देशभक्तों की गहराई ५ फुट है और लंबाई-चौड़ाई जरा कम-वेशी होगी।

गहराई और विस्तार

हम समझना चाहते हैं कि आत्मा का विकास दो तरफ से होता है—(१) हमें इतना गहरा खोदना चाहिए कि अंदर से पानी का झरना बहना शुरू हो, और (२) इतना लम्बा-चौड़ा खोदना चाहिए कि सारी दुनिया का रूप मिले। एक को कहते हैं आत्मज्ञान की गहराई और दूसरे को विज्ञान का विस्तार। जिस देश में आत्मज्ञान की गहराई और विज्ञान का विस्तार है, वहाँ सब प्रकार की समृद्धि होगी। दुनिया में दो प्रकार के लोगों का दर्शन होता है : कुछ लोग देशभक्त बनते हैं, चौड़ाई बढ़ाते हैं, गहराई नहीं। तो कुछ लोग आत्मनिष्ठा बढ़ाते हैं, गहराई बढ़ाते हैं, पर चौड़ाई नहीं। किन्तु किसी एक से दुनिया का काम न चलेगा। गहराई और विस्तार दोनों ही चाहिए।

योजना-आयोग चौड़ाई बढ़ाने का कार्य-क्रम

योजना-आयोग का कार्य लम्बाई-चौड़ाई बढ़ानेवाला है। वहाँ सोचा जाता है कि लोग जो चाहते हों, उसे 'सप्लाई' करना चाहिए। लोग अन्न चाहें, तो अन्न देना चाहिए। कपड़ा चाहें, तो हर मनुष्य को ४० गज मिल का सस्ता कपड़ा सप्लाई करना चाहिए। लोग सिगरेट-बीड़ी चाहें, तो अपने देश में बीड़ी-सिगरेट के कारखाने खोले जायँ। उत्तम बीड़ी-सिगरेट बनाने में देश स्वावलम्बी बने। लोगों के बचाव के लिए सेना चाहिए, इसलिए सेना बढ़ाई जाय। कारखाने, मिलों आदि में काम करके थके-माँदे लोगों को सिनेमा चाहिए, तो उसकी व्यवस्था की जाय। मतलब यह कि ये गहरा नहीं खोदते। इसमें लंबा सोचा जाता है। इसपर भी कुछ लोग कहते हैं कि इतना लंबा भी नहीं चाहिए। अपना तमिलनाड का छोटा-सा राज्य अच्छा चलेगा।

आत्मज्ञान और विज्ञान के समन्वय से क्रांति

हमारे देश में प्राचीनकाल से एक सभ्यता चली आयी है। पश्चिमी लोगों

को लंबा-चौड़ा बनाने की आदत हो गयी है। किन्तु बाबा कहता है कि गहराई पूरी होनी चाहिए। विज्ञान का विस्तार भी जितना हो सके, उतना करें, पर गहराई में जरा भी कमी न हो। उसके बिना स्वच्छ पानी न मिलेगा। क्योंकि यह अपनी भारतीय संस्कृति की बात है। इसलिए गहराई सधेगी ही। फिर उसके साथ चौड़ाई जितनी चाहिए, उतनी बढ़े। फिलहाल देश तक, फिर बाद में विश्व तक फैलाना है। इसे 'आत्मज्ञान और विज्ञान का संयोग' कहते हैं और यही क्रान्ति है। जब तक आत्मज्ञान और विज्ञान का समन्वय न होगा, तबतक क्रान्ति न होगी।

आपने पंचवर्षीय योजना बनायी। कल दसवर्षीय योजना भी बनेगी। आप उत्पादन बढ़ाने की बात करते हैं। चीन, रूस और अमेरिका में भी यही काम चल रहा है। वे आगे-आगे जा रहे हैं। आप उनके पीछे-पीछे जाकर उनका अनुकरण करेंगे, तो जिस दुःख में आज वे पड़े हैं, उसीमें आप भी फँसेंगे।

गहराई, चौड़ाई, दोनों चाहिए

रूस, अमेरिका, चीन तीनों देश निर्भय नहीं बने हैं। वहाँ खाना, पीना आदि अच्छी तरह मिलता होगा और मिलता भी है। किन्तु गधे को अच्छी तरह खिलाया-पिलाया जाय, तो भी इसका यह अर्थ नहीं कि उन्हें अकल भी आती है। हिन्दुस्तान में खाना पीना ठीक नहीं मिलता, इसलिए हमें इन देशों का आकर्षण होता है। इसमें कोई शक नहीं कि हिन्दुस्तान का खाना-पीना कमजोर है, उसे बढ़ाना चाहिए। किंतु, हमें उनका अनुकरण न करना चाहिए। उसमें भलाई (गहराई) नहीं है, चौड़ाई है। वहाँ खूब खोदना चाहिए। इसलिए हमें अपने देश में (गहराई) कायम रखते हुए ही चौड़ाई की बात करनी चाहिए। सर्वोदय की यही कोशिश है। भूदान की यही राह है।

लोग पूछते हैं, 'बाबा जमीन माँगते हुए इस तरह गाँव-गाँव क्यों घूमता है? सरकार पर दबाव डालकर कानून से जमीन छीन ली जाय, तो अच्छा होगा। या हम जमीन वैसे ही छीन लेंगे। लोग न देंगे, तो हम खुद जाकर

जमीन पर कब्जा कर लेंगे। इतना आसान काम होते हुए भी बाबा ५ साल से इस तरह क्यों घूम रहा है? बाबा को क्या रोग हुआ है?' पर यह तो उसने अभी आपको समझाया। रोग यह हुआ है कि उसे गहराई के साथ चौड़ाई करनी है और चौड़ाई के साथ गहराई। याने दोनों गाँठें तोड़नी हैं।

दोनों गाँठें तोड़नी होंगी

'मैं देह हूँ' यह गाँठ तोड़नी है। 'मैं देहरूप नहीं, आत्मरूप हूँ' यह गहराई होगी। 'मैं इसी शरीर में नहीं हूँ', इसलिए 'दुनिया में जितने शरीर हैं, कुल मेरे ही रूप हैं' यह होगा, तो दूसरी गाँठ खुलेगी। दोनों गाँठें खुले बिना मानवता का विकास और समाधान तथा शान्ति की स्थापना न होगी।

पशुता से मानवता की ओर

मनुष्य की हालत जानवर से भिन्न है। वह कुछ व्यापक बनता है। उसका प्रेम परिवार तक फैलता है, वह समाज को अपना रूप मानता है और थोड़ा गहरा भी जाता है। यों तो मानव का पहला जन्म पशुओं के बराबर ही होता है। किंतु बाद में उसे संस्कार मिलता है, माता-पिता द्वारा उसे कर्त्तव्य का भान कराया जाता है। फिर वह गुरु-सेवा का महत्त्व समझने लगता है। फिर गुरु उसे विद्या सिखाता है। वह बताता है कि 'मैं देह से भिन्न हूँ; केवल शरीर का भरण करना धर्म नहीं, शरीर के लिए धर्म नहीं, धर्म के लिए शरीर है; धर्म के लिए शरीर का त्याग भी करना जरूरी हो, तो किया जाय। रोज खाना जरूरी है, लेकिन एक दिन एकादशी करना जरूरी है, एकादशी सिखाती है कि हम शरीर से अलग हैं, हमें अपने शरीर का गुलाम बनना नहीं है; धर्म सिखाता है कि शरीर का जोर अपना बल नहीं, अपना बल है धर्म और इसके लिए संयम बहुत जरूरी है।' इस तरह बालक जब संयम सीखता है, तब वह 'मनुष्य' बनता और उसका दूसरा जन्म होता है। पहले जन्म में तो वह पशु जैसा ही रहता है।

किन्तु आज पिता की यह इच्छा होती है कि मेरी सन्तान को विद्या भी कम-से-कम कष्ट में मिले, होस्टल में उसे सब प्रकार की फैसिलिटीज हों और उसका जीवन भी कम-से-कम कष्ट का हो। उसे कम-से-कम श्रम करना हो। अब

आप ही बताइए कि यह पहला जीवन है कि दूसरा ? क्योंकि गधा भी चाहता है कि उसे कम-से-कम कष्ट में खाना मिले। यह कौन-सी तालीम है ? यह सारी युनिवर्सिटी की तालीम पहले जन्म की है, जिससे विकसित गधा बनता है, विकसित मानव नहीं।

जंतुओं में भी सहयोग

मानव तबतक मानव नहीं बन सकता, जबतक वह अपने को दूसरों तक न ले जाय और दूसरों को अपने में समावेश न करे। लंबी-चौड़ी बात करना सिर्फ मनुष्य जानता है, सो भी नहीं और सिर्फ देशभक्त जानता है, सो भी नहीं। दीमक भी इस तरह काम करते हैं। लाख-लाख दीमक एकत्र होकर काम करते हैं। उनमें नेता भी होते हैं और रानी भी। उनके पीछे-पीछे सब जाते हैं। अपने को व्यापक बनाने की युक्ति उनमें भी है। सुप्रसिद्ध विद्वान् 'मेटर्लिंग' ने उनपर एक किताब लिखी है। उसमें वह लिखता है कि 'मनुष्य-समाज को फुफुंदी (दीमक) के जीवन से बहुत सीखने को मिलेगा।' शहद की रानी मक्खियाँ भी बहुत बड़ी संख्या में इकट्ठा होकर काम करती हैं। सहयोग से उनका समाज काम करता है। सारांश, दूसरे भी प्राणी यह बात जानते और व्यापक बनना समझते हैं। इसलिए यह मत समझिये कि सिर्फ मनुष्य ही यह जानता है। इसलिए मानव का विकास तबतक नहीं हो सकता जबतक वह व्यापक और गहरा न बनेगा।

मानव के विकास के लिए कठिन तपस्या

बाबा गाँव-गाँव क्यों घूमता है ? इससे जमीन माँगो, उससे संपत्तिदान माँगो, इसे समझाओ, उसे विचार जँचाओ, इस तरह कंठशोष क्यों करता है ? कानून के जरिये जमीन छीन क्यों नहीं लेता ? इसलिए कि बाबा मानव के हृदय का विकास चाहता है, सिर्फ जमीन का बँटवारा नहीं। इसीलिए यह कठिन तपस्या हो रही है। इसीको 'क्रान्ति' कहते हैं। जहाँ मनुष्य का विकास होगा, वहाँ वह गहरा और व्यापक बना दीखेगा।

नंजुण्डापुरम् (कोयम्बतूर)
४-१०-'५६

जीवन का अखंड प्रवाह

आज एक भाई मिलने आये। उन्होंने एक बड़ा सवाल पूछा कि 'हमें सद्गति कैसे मिले ?' ऐसा सवाल भारत में ही पूछा जाता है। यह अपने देश की बड़ी भारी संपत्ति है, क्योंकि यहाँ के लोग इस दुनिया के जीवन को ही अन्तिम नहीं समझते। वे समझते हैं कि यह जीवन तो अपने अखंड जीवन का एक छोटा-सा हिस्सा है। हम जनमे, उसके पहले भी जीवन था और यह शरीर गिरने पर भी वह जारी रहेगा। यह तो अखंड प्रवाह है। हम मर गये और जीवन खतम हुआ, ऐसा नहीं। दुनिया में कहीं भी देखो, अनंत सृष्टि फैली नजर आती है, सृष्टि का कहीं अन्त ही नहीं दीखता, फिर जीवन का अन्त कैसे हो ? इसलिए मरने के बाद भी जीवन है, जिसका खयाल लोग कुछ-न-कुछ रखते ही हैं। फिर भी जैसा रखना चाहिए, वैसा नहीं रखते, बहुत कम रखते हैं। अगर यह खयाल रखते कि 'हमारा यह जीवन तो छोटा-सा है, आगे बहुत लंबा जीवन पड़ा है !', तो हमारे जीवन का ढंग ही बदल जाता। नूह पैगम्बर की कहानी है। उन्हें भगवान् ने बीस हजार साल की जिन्दगी दी थी और वे भी इस बात को जानते थे। वे एक छोटी-सी झोपड़ी में रहते थे। एक दफा लोगों ने उनसे पूछा कि 'आप अच्छा मकान क्यों नहीं बनाते ?' उन्होंने जवाब दिया : 'बीस हजार साल ही तो रहना है। उसके लिए बड़ा मकान क्यों बनायें ?' ...सारांश बीस हजार साल की जिन्दगी के लिए भी नूह पैगंबर बड़ा मकान बनाने के लिए तैयार न थे, क्योंकि वे जानते थे कि अनंत काल में बीस हजार साल कुछ नहीं है। उनके जीवन से हमारा जीवन कितना छोटा है। फिर इतनी छोटी-सी आयु में हम सबको क्यों लूटें, सबका द्वेष क्यों संपादन करें ? संपत्ति, जमीन और बच्चों का लोभ क्यों रखें ?

मनुष्य धर्म के लिए पैदा हुआ

जिसे यह भान है कि यह जीवन याने एक छोटा-सा टुकड़ा है, बड़ा भारी टुकड़ा तो बाकी ही है, वह शख्स सबकी सेवा ही करेगा, वह भोग में आसक्त नहीं हो सकता। वह यही सोचेगा कि हम जिंदगी का एक क्षण भी बिना सेवा के न बितायेंगे। परमेश्वर ने हमें मनुष्य का चोला देकर यहाँ पर इसीलिए भेजा है कि हम सबकी सेवा करें। क्या गधा सबकी सेवा करता है ? शेर और भेड़िया सेवा करते हैं ? भगवान् ने हमें गधा नहीं बनाया, बैल भी नहीं और शेर या भेड़िया भी नहीं बनाया, बल्कि मनुष्य बनाया ; इसलिए कि हम सेवा करके छूट जायँ। यह मानव-देह सेवा के लिए है। 'स हि धर्मार्थमुत्पन्नः'—मनुष्य किसलिए पैदा हुआ ? धर्म करने के लिए पैदा हुआ, भोग के लिए नहीं। देहसे काम लेना है, इसलिए उसे खिलाना पड़ता है, जैसे कि घोड़े को खिलाना पड़ता है। चरखे से सूत कातना है, इसलिए हम उसे तेल देते हैं, तो क्या वह भोग है ? इसी तरह देह का उपयोग समाज-सेवा के लिए करना है। शौक है समाज-सेवा का, दुखियों को मदद देने का। लेकिन इस शरीर से काम लेना है, इसलिए उसे खिलाना पड़ता है, तो थोड़ा खिलायेंगे। पर भोग के लिए नहीं खायेंगे। सारांश, जो शख्स जानता होगा कि हमारा अखंड जीवन पड़ा है और उसका एक छोटा-सा हिस्सा यह मनुष्य-जीवन है, वह अपना जीवन केवल सेवा में ही लगायेगा।

गति अपनी करनी से

सद्‌गति क्या है ? क्या यह किसी बादशाह की मर्जी से मिलती है ? क्या ईश्वर कोई सुल्तान है कि अपनी मर्जी से चाहे जिसे नरक में ढकेल दे या स्वर्ग में भेज दे ? वह इस तरह अपनी इच्छा से काम करनेवाला नहीं, अत्यंत तटस्थ है। आप जैसा करोगे, वैसा पाओगे। आपने बबूल का बीज बोया और भगवान् से प्रार्थना करने लगे कि 'भगवान् ! हमें मीठे आम मिलने चाहिए', तो वह यही जवाब देगा कि 'तू ने बबूल का बीज बोया है, इसलिए तुझे बबूल ही मिलेगा। इसमें मेरी मर्जी का नहीं, तेरी करनी का ही सवाल

है। तू अगर आम चाहता है, तो तुझे आम की गुठली ही बोनी पड़ेगी।' अगर आप आम की गुठली बोयेंगे, तो भगवान् आपको बबूल कभी न देगा। एक भाई का पाँव अग्नि पर पड़ा और जला। उसने अग्निदेव से प्रार्थना की कि 'अग्निदेव! मेरा पाँव मत जलाओ।' अग्निदेव ने उससे कहा कि 'तू फिर से मुझ पर पाँव मत रख, तो मैं फिर से तुझे नहीं जलाऊँगा। यह तेरे ही हाथ में है।' ठंड के दिनों में एक आदमी अग्नि के पास बैठा तो उसे गरमी मिली। दूसरा आदमी अग्नि से दूर रहा, तो उसे गरमी न मिली। उसने अग्निदेव से प्रार्थना की कि 'अग्निदेव! तू क्यों पक्षपात करता है? तू तो देवता है न? देवता सबके साथ समान बर्ताव करता है। फिर तू उसे गरमी क्यों पहुँचाता है और मुझे क्यों नहीं?' अग्निदेव ने उसे जवाब दिया: 'तू गरमी चाहता है, तो मेरे नजदीक बैठ। दूर रहा, तो तुझे गरमी न मिलेगी। किसी को गरमी मिलती है और किसी को नहीं, इसमें मेरी नहीं, तेरी अपनी जिम्मेवारी है।'

इसी जिंदगी में पहचान

ईश्वर निमित्तमात्र है। बारिश होती है। आपने मिर्च बोयी, तो बारिश मिर्च को बढ़ाती है और केला बोया, तो केले को भी बढ़ाती है। आप मिर्च बोयेंगे, तो बारिश केले को नहीं बढ़ा सकती। सारांश, सद्गति और दुर्गति ईश्वर की मर्जी पर निर्भर नहीं है। वह अपनी कोई मर्जी नहीं रखता है बल्कि तटस्थ रहता है। वह निमित्त बनता है और आपको गति देता है। आपने जो टिकट लिया होगा, उसीके अनुसार आपको गाड़ी में बैठना होगा। गाड़ी आपके लिए खुली है, आप चाहे जो टिकट ले सकते हैं। बाबा किसी को सद्गति नहीं दे सकता, विचार समझा सकता है। जिसे मरने के पहले सद्गति मिली होगी, उसी को मरने के बाद भी मिलेगी। मरने के बाद सद्गति मिलेगी या नहीं?, इसकी पहचान यहीं हो जायगी। क्या आपके चित्त में काम, क्रोध, लोभ, मत्सर भरा है? तो फिर आपको सद्गति नहीं मिल सकती। मन का शांत और निर्विकार रहना ही 'सद्गति'

है। अगर मन प्रेम से भरा हो, शांत हो और उसमें क्रोध न हो, तो आज ही सद्गति है। फिर मरने के बाद मुझे सत्गति मिलेगी या नहीं ? इसकी फिक्र करने की जरूरत ही न रहेगी। जब आपने कलकत्ते का टिकट लिया है, तो आप कलकत्ता जरूर जायँगे फिर मैं कलकत्ता जाऊँगा या नहीं ? इसकी फिक्र में पड़ने की जरूरत नहीं। अगर आपने कलकत्ते का टिकट नहीं लिया होगा, तो कलकत्ता नहीं पहुँच सकते।

भूदान से दोनों दुनियाओं में भला

सद्गति की और दुर्गति की चाबी हमारे हाथ में है। हम अगर सबको प्यार करते हैं, तो हमें परमेश्वर का प्यार हासिल होगा। भूदान-यज्ञ उसी की राह दिखाता है। यह ऐसा अद्भुत काम है कि इसमें आध्यात्मिक कार्य भी होता है और व्यावहारिक कार्य भी। इसलिए हमने कहा कि भूदान-यज्ञ में जो जमीन देगा, उसका भी कल्याण होगा और जो जमीन लेगा, उसका भी कल्याण होगा। आपने किसी प्यासे को या किसी भूखे को पानी पिलाया, खाना खिलाया, तो उसका दाह शांत होगा, उसे तृप्ति होगी, उसे संतोष होगा। हम कहना चाहते हैं कि उसे जितना संतोष होगा, उससे ज्यादा संतोष आपको होगा। यह अनुभव की बात है। इससे इस दुनिया में भी भला होगा और परलोक में भी। ऐसे कार्य को 'भक्ति का कार्य' कहते हैं। भूदान-यज्ञ भक्ति का कार्य है।

कडूा पालेयम
५-१०-'५६.

शुद्धबुद्धि के जप का परिणाम

आप देखेंगे कि बाबा रोज घूम ही रहा है। वह लोगों के पास जमीन माँगने के लिए नहीं जाता, यह काम तो दूसरे लोग करते हैं। फिर बाबा करता क्या है? वह जप करता है। शुद्धबुद्धि से जो जप किया जाता है, उसकी बड़ी ताकत है। लोग उसकी महिमा पहचानते नहीं। जप से सारी हवा बदल जाती है। सारे भारत में यह जोरदार जप शुरू हुआ था कि 'हिन्दुस्तान को स्वराज्य चाहिए, अंग्रेज यहाँ से चले जायँ।' वह शुद्धबुद्धि का जप था और वह व्यापक हुआ। अंग्रेज बड़े समर्थ थे, शस्त्रास्त्रों से सज्जित थे, उन्होंने जर्मनी का भी पराभव किया। लेकिन उनके खिलाफ हम लोगों ने क्या किया? केवल जप किया और उन्हीं जेलों में जाकर पड़े रहे। कोई भी पूछ सकता है कि दुश्मन के जेल में जाकर पड़ना, क्या यह कोई उसे जीतने का तरीका है? अबतक जो लड़ाइयाँ हुईं, उनमें यही तरीका रहा कि दुश्मन के हाथ न पड़ें। जहाँ हमारे लोगों को दुश्मन ने पकड़ कर जेल में डाल दिया, वहीं हम हार गये, ऐसा माना जाता था। किंतु हम तो शत्रु के जेल में गये थे। फिर भी आजाद हुए। यह इसीलिए हुआ कि वह शुद्धबुद्धि का जप था। अब बाबा जप कर रहा है कि 'जमीन सबकी हो। जैसे हवा, पानी और सूरज की रोशनी पर सबका हक है, वैसे ही जमीन पर भी सबका हक है।' अगर बाबा के साथ आप सब लोग भी यह जप करना शुरू करें कि 'जमीन की मालकियत किसी की नहीं, केवल भगवान् की ही हो सकती है। जमीन पर काम करने का सबको अधिकार है और सबका यह कर्तव्य भी है; जमीन से किसी को वंचित रखना पाप है', तो निश्चय ही वह भी सफल होकर रहेगा।

जमीन का बँटवारा आप की मर्जी पर

लोग बाबा से पूछते हैं कि 'आप को ४० लाख एकड़ जमीन मिली, यह

बहुत अच्छा काम माना जायगा, किंतु आप कहते हैं कि पाँच करोड़ एकड़ जमीन चाहिए, कुल जमीन बँटनी चाहिए, जमीन की मालकियत मिटनी चाहिए, यह सब कैसे होगा ? उसके लिए कितना समय लगेगा ?' हम जवाब देते हैं कि आप जितना समय लगाना चाहते हो, उतना लगेगा। आप चाहेंगे कि यह काम इसी साल हो, तो इसी साल हो सकता है। आप चाहेंगे कि सौ सालों में भी न हो, तो सौ सालों में भी नहीं होगा। यह काम आपकी और हमारी मर्जी पर निर्भर है। अगर हम चाहें कि कुल जमीन का बँटवारा हो जाय, तो वह हो ही जायगा। जमीन का बँटवारा कौन करेगा ? क्या 'भूदान-समिति' करेगी ? वह तो दस-बीस हजार एकड़ का बँटवारा कर सकती है, परंतु क्या गाँव-गाँव की कुल जमीन का बँटवारा भूदान-समिति करेगी ? घर-घर शादी होती है, तो क्या उसके लिए कोई 'शादी-समिति' बनी है ? हर घर के लोग स्वयं अपना इन्तजाम कर लेते हैं। तमिलनाड भर में 'पोंगल' होता है, तो क्या उसके लिए कोई 'पोंगल-समिति' है ? मलाबार में 'ओणम्' होता है, हिन्दुस्तान भर में एक दिन दीवाली होती है। इसी तरह कुल हिन्दुस्तान में एक दिन में जमीन का बँटवारा हो सकता है। उसके लिए हम सबको भावना निर्माण करनी चाहिए। हम लोगों ने कहा कि अंग्रेजों को हिन्दुस्तान छोड़कर जाना चाहिए, तो अंग्रेजों ने एक तारीख मुकर्रर की और उसी दिन उन्होंने भारत छोड़ा। उसकी तैयारी करने में उन्हें एक-दो साल लगे, पर काम बना एक ही दिन में। मनुष्य मरता है, तो कितने दिन में मरता है ? एक क्षण में मरता है, चाहे इसकी तैयारी में सौ साल चले जायँ। किसी गुहा में दस हजार साल का अन्धकार हो और हम वहाँ लालटेन ले जायँ, तो वह अन्धकार कितने साल में दूर होगा ? क्या सौ-दो सौ साल लगेंगे ? जहाँ प्रकाश पहुँचा, उसी क्षण अन्धकार दूर हो जाता है।

कचरा खोदने का काम

एक भाई सूर्य पर रहता था। वह रात के समय पृथ्वी पर गिर पड़ा।

उसने देखा कि यहाँ तो जहाँ देखो वहीं कचरा-ही-कचरा पड़ा है। वह सूरज-वाला मनुष्य था, इसलिए उसे अन्धकार मालूम ही न था। इसलिए उसे लगा कि चारों ओर काला-काला कचरा ही पड़ा है। इसलिए उसने कुदाली लेकर खोदना शुरू किया। कुदाली से खोद-खोदकर टोकरियाँ भरता था और कचरा फेंकता था। उसने सोचा कि ये पृथ्वी के लोग कैसे हैं, कचरे में ही रहते हैं। इससे पड़ोसी जाग गया और लालटेन लेकर आया तमाशा देखने कि रात को कौन खोद रहा है। लालटेन देखकर सूरजवाले मनुष्य को लगा कि मैं घंटेभर से कचरा खोद-खोदकर फेंक रहा था, परंतु खत्म ही नहीं हो रहा था। लेकिन अब एक क्षण में कैसे खत्म हो गया?… लेकिन वह कचरा था ही नहीं, वह तो अन्धकार था, जो खोद-खोद कर नहीं, प्रकाश से ही हटनेवाला था।

अभी भूदान हमने खोदना शुरू किया है, दानपत्र भरवा लेते हैं, किन्तु इस तरह खोदते-खोदते भूदान कब पूरा होगा? जब विचार का प्रकाश फैलेगा, तब न दानपत्र लिखा जायगा, न दिया जायगा। लोग जाहिर कर देंगे कि हमें जमीन बाँटनी है और कुल जमीन बँट जायगी। उन्हें सिर्फ विचार का प्रकाश मिलना चाहिए। बाबा क्या कर रहा है? वह विचार फैला रहा है, लोगों के पास यह विचार पहुँचा रहा है कि 'भाइयो, जमीन चंद लोगों के हाथ में रखोगे, तो हिन्दुस्तान का भला न होगा। जमीन ईश्वर की संपत्ति है। जैसे हवा और पानी सबके लिए खोलना चाहिए, वैसे जमीन भी सबके लिये खोलनी चाहिए। यही विचार समझाने के लिए बाबा घूम रहा है और इसीका जप कर रहा है। अभी कचरा खोद-खोदकर फेंकने का काम चल रहा है। पूछा जाता है कि इस कोयम्बतूर जिले में कितना कचरा फेंका, तो जवाब मिलता है कि दस हजार एकड़। फिर लोग सोचते हैं कि जो बहुत सारा कचरा बचा है, वह कब फेंका जायगा? लेकिन यह कचरा नहीं है, अंधकार है। यह बात जब लोगों के ध्यान में आयेगी, तब वे सोचेंगे कि ये लोग क्या कर रहे हैं। फिर वे अपनी लालटेन लेकर आयेंगे, तो एक क्षण में प्रकाश फैलेगा।

शस्त्रों के हल बनेंगे

बाबा जप करेगा और काम आप लोग करेंगे। क्या आपका काम बाबा करेगा? आपका खाना बाबा खायेगा? आपकी नींद बाबा लेगा? आपको अपना खाना खुद खाना होगा, अपनी नींद खुद लेनी होगी। हिन्दुस्तान का मसला हिन्दुस्तान हल करेगा। बाबा ने अपना मसला हल किया है। उसने अपनी कोई मालकियत नहीं रखी। जैसे साँप दूसरे के घर में जाकर रहता है, वैसे बाबा भी दूसरे के घर में जाकर रहता है। बाबा ने साँप का चरित्र उठा लिया है। वह अपना घर बनाता नहीं। भागवत में अवधूत मुनि ने कहा है कि 'मैं साँप से यह बोध लेता हूँ', उसी तरह बाबा ने साँप से बोध लिया और अपनी मालकियत छोड़ दी। वह अपनी देह की भी मालकियत नहीं मानता, बल्कि यही मानता है कि यह सारी देह समाज की सेवा के लिये है। उसने स्वयं अपने लिए कोई वासना नहीं रखी। तो, बाबा का यह प्रश्न हल हो गया है। इसलिए बाबा को कोई समस्या नहीं हल करनी है। वह सारे देश की समस्या है, उसे सारा देश हल करेगा।

आज दुनिया में लोग बड़े-बड़े बम बनाते हैं, लेकिन ये सारे शस्त्रास्त्र खतम हो जायँगे। उन्हें कौन तोड़ेगा? जिन हाथों ने ये बनाये हैं, वे ही हाथ उन्हें तोड़ेंगे। ये सारी-की-सारी तलवारें, बंदूकें लोहे के कारखानों में वापिस आयेंगी और वहाँ उनका रस बनाकर हल बनाये जायँगे। सारे-के-सारे शस्त्रास्त्र पिघलने के लिए आनेवाले हैं, जहाँ उनसे अच्छे-अच्छे औजार बनेंगे, काटने के लिए हँसिया, खेती के लिए हल और सूत कातने के लिए तकुए बनेंगे। यह कौन बनायेगा? जिन लोगों ने ये शस्त्र बनाये, वे ही बनायेंगे। कब? जब विचार बदलेगा तब। विचार बदलने पर सारी-की-सारी सृष्टि का संहार हो जाता और नयी सृष्टि पैदा होती है। सूर्य की किरणें फैलते ही सभी लोग अपने बिस्तर लपेट लेते हैं। जिन्होंने बिछाये थे, वे ही लपेट लेते हैं। इसी तरह जिन्होंने ये शस्त्रास्त्र बनाये हैं, उन्हींकी समझ में जब आयेगा कि इनसे कोई मसला हल नहीं होता, तो वे ही इन्हें खतम कर देंगे। लोग पूछते हैं कि इतनी बड़ी भारी

योजनाएँ गिरेंगी? परंतु भूकंप से जितना बड़ा मकान होता है, उतना ही वह जल्दी गिरता है। छोटे मकान टिक भी जाते हैं। उसके लिए क्या करना होगा? विचार फैलाना पड़ेगा और वही बाबा कर रहा है।

सुलुर (कोयम्बतूर)
६-१०-'५६.

अपने कामों की जिम्मेवारी खुद उठायें :५५:

अभी आपने एक अद्भुत ही भजन सुना (सभा में प्रवचन के पहले माणिक्यवाचकर का एक भजन गाया था)। उसमें भक्त कहता है कि 'भला बुरा जो कुछ करना है, तू करता है। मैं उसके लिए जिम्मेवार नहीं।'

सारी जिम्मेवारी भगवान पर छोड़ना कठिन

मेरे हाथ से भला या बुरा कुछ भी हो, दोनों के लिए मैं जिम्मेवार नहीं, यह कहना बहुत बड़ी बात हो जाती है। इस तरह के भजन सुनने की आदत हमें हो गयी है। लेकिन उसका अर्थ कितना गहरा होता है, यह हम नहीं जानते। मेरे हाथ से कुछ अच्छा काम हुआ, तो उसका आनंद, हर्ष या अहंकार नहीं होना चाहिए, यह तो कुछ कोशिश करने से ध्यान में आ सकता है। किंतु मेरे हाथ से कुछ बुरा काम हो, तो उसकी भी मुझपर कोई जिम्मेवारी नहीं, उससे कुछ दुःख भी नहीं होता है, यह अनुभव बहुत कठिन है। बहुत ज्यादा खा लिया याने गलत काम हुआ, तो उसका फल मिलेगा ही, पेट जोरों से दुखना शुरू होगा। अब भक्त कहेगा कि ज्यादा खाया, इसलिए मैं जिम्मेवार नहीं और उसके कारण पेट दुखता है, उसके लिए भी मैं जिम्मेवार नहीं हूँ। लेकिन यह बोलना ही कठिन है, उसका अनुभव और भी कठिन है, इसलिए बेहतर यही है कि हम अपने कामों की जिम्मेवारी खुद उठायें।

गलत बँटवारा

कुछ लोगों ने बीच का एक मार्ग निकाला है। कुछ अच्छा काम किया

और उसका अच्छा फल मिला, तो कहते हैं कि हमने किया और कुछ गलत काम हुआ, तो कहते हैं कि भगवान् ने कराया, हम क्या करें ? डॉक्टर लोग ऐसा ही करते हैं। डॉक्टर ने सौ बीमारों को औषध दिया, जिसमें से अस्सी दुरुस्त हो गये, तो उसके औषध से दुरुस्त हुए और बीस मर गये, तो ईश्वर ने मार डाले। अगर अस्सी लोगों को तुमने दुरुस्त किया, तो बीस लोगों को तुमने ही मार डाला, ऐसा कहो। भला कुछ हुआ, तो हमारे हाथ से हुआ, उसमें हमारी जिम्मेवारी है और बुरा हुआ, तो ईश्वर ने किया, इसमें हमारी कोई जिम्मेवारी नहीं। किन्तु इस तरह बँटवारा करना मिथ्या है, यह नहीं चलेगा। या तो भला बुरा दोनों की जिम्मेवारी खुद उठाओ या दोनों की जिम्मेवारी ईश्वर पर छोड़ दो।

जिम्मेवारी हम खुद उठायें

भला या बुरा, दोनों की जिम्मेवारी छोड़ना आसान मालूम होता है, हमारे समाज में यह भाषा बहुत चलती है। हिन्दुस्तान में इस तरह बोलने की आदत पड़ गयी है कि भगवान् सब कुछ कराता है, हमारे हाथ में कुछ नहीं है। इस तरह बोलना आसान है, पर उसका अनुभव करना आसान नहीं। अनुभव का अर्थ यह है कि बिच्छू काटे, तो रोये नहीं और मीठा आम मिले तो खुश भी न हों। इसमें मीठा आम मिलने पर खुश न होना, कुछ संभव भी है, पर बिच्छू काटने पर न रोना कठिन है। सारी जिम्मेवारी ईश्वर पर सौंपने की भाषा माणिक्यवाचकर बोल सकता है, क्योंकि उसकी यह अवस्था हो गयी थी कि बिच्छू काटने पर भी शांत रहता था। इसलिए उसके लिए यह शोभा देता है परंतु हमारे लिए यही शोभा देता कि हम भला-बुरा, दोनों की जिम्मेवारी उठायें और सोच-विचार कर भला करें और बुरा टालें। ईश्वर सब कुछ करेगा, यह न कहें। ईश्वर ने हमें विवेकबुद्धि दी है। उसका उपयोग कर जो अच्छा हो, उसे ही करें और जो खराब हो उसे न करें। हमारे हाथ से हो चुका, ऐसा न कहना चाहिए, बल्कि हमने किया, यही कहना चाहिए। हमने बुरा किया, तो हमें उसका बुरा फल जरूर मिलेगा। उसे भोगना ही चाहिए, उसके लिए रोना ठीक नहीं और न ईश्वर से प्रार्थना करना ही ठीक है।

सांसारिक काम अपनी अक्ल से, पारमार्थिक ईश्वर की अक्ल से ?

लोगों से जब हम पूछते हैं कि क्या भूदान देना चाहिए ? सबको जमीन देनी चाहिए ? तो वे 'हाँ' कहते हैं, और यह पूछने पर कि 'क्या हवा, पानी और जमीन की मालकियत हो सकती है ?' तो 'नहीं' कहते हैं। इस पर हम कहते हैं कि 'तब तो आपको दान देना होगा।' लेकिन जहाँ दान देने की बात आती है, वहीं वे हिचकिचाने लगते हैं और कहते हैं कि भगवान् बुद्धि देगा, तब होगा। याने अपने हाथ से पुण्य करने का सवाल आता है, तो भगवान् बुद्धि देगा तब होगा। पर जब लड़की की शादी करनी होती है, तब खुद पचास जगह ढूँढ़ने क्यों जाते हो ? क्यों नहीं कहते कि भगवान् की इच्छा होगी तब शादी होगी ? भूख लगती है तो मनुष्य उठता है, चूल्हा सुलगाता है, घर में चावल न हो, तो कहीं से माँगकर ले आता है, माँगने पर न मिले तो चुराकर लाता और रसोई पकाकर खाता है। उस वक्त वह क्यों नहीं कहता कि ईश्वर चाहेगा, तब होगा ? मतलब यह है कि संसार के सब काम हम अपनी इच्छा से, अपनी अक्ल से करेंगे, किंतु जब परमार्थ का कार्य करना हो, तब कहेंगे कि ईश्वर करेगा तब होगा। याने स्वार्थ के कार्य हम अपने प्रयत्न से करेंगे और पुण्यकार्य, धर्मकार्य ईश्वर करायेगा, तब होगा। बोलने में तो हम पाप-पुण्य दोनों की जिम्मेवारी ईश्वर पर डालते हैं, पर फल भोगने का समय आने पर पुण्य की जिम्मेवारी अपने ऊपर लेते और पाप की जिम्मेवारी ईश्वर पर डालते हैं। फिर पाप का फल मिलने लगता है, तब क्यों रोते हैं ? पाप की जिम्मेवारी ईश्वर पर है, तो रोने दो ईश्वर को, तुम क्यों रोते हो ? लेकिन मनुष्य रोता है, फिर भी यह समझता नहीं कि यह मेरी जिम्मेवारी है।

भक्तिमार्गी साहित्य के कारण भ्रम

इस तरह के भक्तिमार्गी साहित्य से हिन्दुस्तान के लोगों के दिमाग में यह सर्वथा भ्रम पैदा हो गया है। वे समझते ही नहीं कि असली चीज क्या है, अपनी हालत क्या है ? अपनी हालत के अनुसार ईश्वर का स्वरूप बदलता है।

अगर हमें सुख-दुःख की परवाह है, तो हम अपने पाप-पुण्य के लिए जिम्मेवार हैं, उसे ईश्वर पर नहीं सौंप सकते। हमें विचारपूर्वक पुण्य करना और उसका फल भोगना होगा। हमें विचारपूर्वक पाप को टालना और उसके फल से दूर रहना चाहिए। जब हम सुख-दुःख से परे हो जायँगे, तभी माणिक्य-वाचकर का वह वाक्य काम में आयेगा। तबतक तो हमें सत्कार्य में ही निरत रहना चाहिए, बुरी चीजों को दूर रखना चाहिए, सारे समाज को प्यार करना और मिल-जुलकर रहना चाहिए। जो सुख हम अपने लिये चाहते हैं, वही दूसरों को देना चाहिए। दूसरों को सुखी बनाकर ही हम सुखी बन सकते हैं, दुःखी बनाकर नहीं। इसलिए हमें परोपकार में रत रहना चाहिए, आस-पास के लोगों की निरंतर सेवा करनी चाहिए। तभी हमें सुख मिलेगा, मानसिक समाधान मिलेगा। होते-होते आखिर यह सुख की वासना ही जल जायगी और तब माणिक्यवाचकर का वह वाक्य हमारे काम आयेगा।

केथनुर (कोयम्बतूर)
११-१०-'५६.

स्त्रियाँ और संन्यास

: ५६ :

मैं मानता हूँ कि हिन्दूधर्म ने स्त्रियों पर कुछ अन्याय किया है। पुरुषों को डर लगता था कि स्त्रियों को पारमार्थिक कार्य में प्रवेश देने से खतरा पैदा होगा।

बुद्ध ने खतरा उठाया !

भगवान् बुद्ध भी आरंभ में स्त्रियों को दीक्षा नहीं देते थे। एक बार उनके शिष्य आनन्द एक स्त्री को लेकर आये और भगवान् से कहने लगे : 'इसे दीक्षा दीजिये। यह स्त्री दीक्षा के लिए अत्यंत योग्य है, शायद हमसे भी अधिक।' तब भगवान् बुद्ध ने उस स्त्री को दीक्षा देना स्वीकार किया। फिर भी उन्होंने उस समय आनन्द से कहा : 'आनन्द, मैं एक खतरा उठा रहा हूँ।'

महावीर की निर्भीकता

महावीर स्वामी बुद्ध भगवान् के कुछ ३०–४० साल पहले हुए। वे इतने निर्भय थे कि उनसे अधिक निर्भय व्यक्ति शायद ही कोई हो। स्त्रियों और पुरुषों को समान अधिकार है, इस बात को वे अक्षरशः सत्य मानते थे। वे मानते थे कि संन्यास, ब्रह्मचर्य और मोक्ष का अधिकार, स्त्री और पुरुष दोनों को है। वे अत्यंत निर्विकार थे, नग्न घूमते थे। जैनियों में पुरुषों के समान सैकड़ों स्त्री-संन्यासिनियाँ काम करती थीं। उनमें दो प्रकार होते हैं : (१) श्रमण और (२) *श्रावक। श्रमण माने संन्यासी और श्रावक माने गृहस्थाश्रम में रहकर* धर्मकार्य करनेवाला। उनमें जितने श्रमण थे, उनसे अधिक श्रमणियाँ थीं। आज भी जैन संन्यासिनियाँ धर्म-प्रचार करती रहती हैं। *स्त्रियों* को दीक्षा देने के विषय में बुद्ध भगवान् को जो डर था, वह महावीर स्वामी को नहीं था।

रामकृष्ण परमहंस को भी संकोच

यह तो पुरानी *बात* हो *गयी। आज भी यद्यपि रामकृष्ण परमहंस के आश्रम में* शारदा देवी पहले से ही थीं, फिर भी स्त्रियों को दीक्षा नहीं दी जाती थी। अब पिछले साल से स्त्रियों को दीक्षा देना आरंभ हुआ है। इसका मतलब यह हुआ कि उन्हें *भी इस कार्य को आरम्भ करने में इतना समय बिताना पड़ा।*

गांधीजी का नया रास्ता

गांधीजी को इसमें कोई दिक्कत नहीं मालूम हुई, क्योंकि यद्यपि वे मानते थे कि संन्यास का अधिकार सबको है, फिर भी वे किसी को भी दीक्षा नहीं देते थे। जहाँ दीक्षा देने की बात *आती* है, वहाँ बहुत दृढ़ता की *आवश्यकता होती* है, जरा भी दोष आ जाय, तो उससे संस्था कलुषित होती है। दीक्षा देने की आवश्यकता गांधीजी को महसूस नहीं हुई। उन्होंने दीक्षा के बिना ही शुद्ध रहने का मार्ग बताया। उन्होंने एक नया विचार दिया कि 'गृहस्थ' को ही 'वानप्रस्थ' बनना चाहिए, याने दो-चार दिन संसार में बिता कर पति-पत्नी को वानप्रस्थ बनकर रहना चाहिए और गृहस्थाश्रम में संयम होना चाहिए। इसमें

ढोंग नहीं आ सकता है और साधकों की साधना को पूरी गुंजाइश मिलती है। गांधीजी ने स्त्री-पुरुष दोनों को समान अधिकार दिये। किन्तु दीक्षा देनेवालों को स्त्रियों को दीक्षा देने में भय मालूम होता था।

मीरा की मीठी चुटकी

मीराबाई की कहानी है। एक बार वह मथुरा-वृन्दावन गई थीं। वहाँ एक संन्यासी रहते थे। मीराबाई ने उनके दर्शन की इच्छा प्रकट की, पर उनके शिष्यों ने बताया कि हमारे गुरु स्त्रियों को दर्शन नहीं देते। इस पर मीराबाई ने वहीं पर एक भजन बनाया, जो गुजराती में है :

'हुँ तो जाणती हती जे व्रजमां पुरुष छे एक।
व्रज मां वसीने तमे पुरुष रह्या छो तेमां भलो तमारो विवेक।'

"मैं तो समझती थी कि व्रज में सिर्फ एक ही पुरुष है और बाकी सारी गोपियाँ हैं। व्रज में रहकर भी आप पुरुष बने रहे, तो आपके विवेक के लिए क्या कहें?" जब शिष्यों ने गुरु को यह सुनाया, तब गुरु को लगा कि इसे दर्शन देना उचित है और फिर उन्होंने दर्शन दिया।

संन्यास की कलिवर्ज्यता पर शंकर का प्रहार

संन्यास, ब्रह्मचर्य, परिव्रज्या लेने की इजाजत हो, तो भी हजारों स्त्रियाँ संन्यासिनी बनेंगी, ऐसी बात नहीं। आज पुरुषों को इजाजत है, तो भी हजारों पुरुषसंन्यासी थोड़े ही बनते हैं। किंतु इजाजत न होना एक 'डिसएबि-लिटी' (अपात्रता) होना प्रगति के लिए रुकावट पैदा करता है। हिन्दूधर्म में पहले ऐसा नहीं था। पर बीच में माना गया कि कलियुग में संन्यास सबके लिए वर्जित है। इस पर प्रहार शांकर-सम्प्रदाय से हुआ। शंकराचार्य के गुरु संन्यासी थे। वे पहले गृहस्थाश्रमी थे और बाद में उन्होंने संन्यास लिया। ब्रह्मचर्य में से ही संन्यासी होने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने अपनी माँ से संन्यास लेने की इजाजत माँगी। माँ इजाजत नहीं देती थी, पर आखिर उसे देनी पड़ी। आज हम शंकराचार्य का अत्यंत गौरव गाते हैं। हिन्दूधर्म

पर श्रीकृष्ण भगवान् के बाद सबसे ज्यादा असर यदि किसी व्यक्ति का हुआ, तो वह शंकराचार्य का हुआ है। उनके भाष्य-स्तोत्र आदि देश भर में सर्वत्र पढ़े जाते हैं। किंतु उनके रहते, जो हालत थी, उसकी हम कल्पना नहीं कर सकते।

अन्त तक माफी नहीं माँगी

शंकराचार्य संन्यास लेकर निकले और उत्तर में घूम रहे थे, तो उन्हें माता का स्मरण होने लगा। उन्होंने सोचा कि स्मरण हुआ है, इसका मतलब यह है कि माँ मुझे बुला रही है। इसलिए वे दक्षिण की ओर वापस चल पड़े। घर पहुँचे, तो उनकी माता की मरने की तैयारी थी। माँ को भगवान् का दर्शन होना चाहिये, इसलिए उन्होंने कृष्णाष्टक बनाया और माँ के मुँह से उसका उच्चारण कराया। उसकी अंतिम पंक्ति का उच्चारण होते ही माँ को भगवान् का दर्शन हुआ, ऐसी कहानी है। माँ ने अपने लड़के को संन्यास लेने के लिए इजाजत दी थी और कलियुग में तो संन्यास वर्जित माना गया था, इसलिए उनके समाज की तरफ से याने नंबुद्री ब्राह्मणों की तरफ से उनका बहिष्कार था, जैसे टॉलस्टॉय का पोप की तरफ से बहिष्कार था या जैसे गांधीजी को हिन्दू धर्म का वैरी समझकर मारा गया था। बहिष्कार के कारण माँ की स्मशान की यात्रा के लिए ब्राह्मणों में से एक भी मनुष्य नहीं आया। जाति-भेद था, इसलिए दूसरी जातिवाले तो आ ही नहीं सकते थे। लाश उठाने के लिए कोई नहीं आया, तो फिर शंकराचार्य ने तलवार से लाश के तीन टुकड़े किये और एक-एक टुकड़ा ले जाकर जलाया। वे अत्यंत प्रखर ज्ञानी थे, ऐसे मौके पर भी वे पिघले नहीं। अगर वे माफी माँगते, तो ब्राह्मण स्मशानयात्रा के लिए आते, परन्तु उन्होंने माफी नहीं माँगी।

हक पाने का यही तरीका

आज शंकराचार्य के लिए इतना आदर है कि नंबुद्री ब्राह्मणों में उनकी स्मृति में, जलाने के पहले लाश पर तीन लकीर खींचते हैं। परंतु उस जमाने में समाज इतना कठोर था कि माँ की लाश उठाने के लिए कोई नहीं आया।

फिर भी शंकराचार्य ने समाज पर कोई आक्षेप नहीं किया। उनके ग्रंथों में कहीं भी कटुता नहीं है। उत्तम सुधारक का यही लक्षण है। शंकराचार्य को संन्यास का हक प्राप्त करने के लिए इतना करना पड़ा। इसी तरह एक-एक हक प्राप्त करना होता है।

स्त्री-पुरुष-समानता का हक कैसे मिले ?

स्त्री-पुरुषों की समानता का हक भी ऐसे ही प्राप्त करना होगा। स्त्रियाँ अगर पुरुषों की बराबरी में बीड़ी पीना चाहें, तो वह हक उन्हें आसानी से मिल सकता है। किंतु वे संन्यास, ब्रह्मचर्य, परिव्रज्या या मोक्ष का हक चाहती हैं, तो कोई ज्ञानवान, प्रखर वैराग्य संपन्न स्त्री निकलेगी, तभी वह हासिल होगा। गांधीजी के देने से उन्हें यह हक हासिल नहीं होगा, न और किसी के देने से। जब शंकराचार्य की कोटि की कोई स्त्री निकलेगी, तभी उन्हें यह हक हासिल होगा।

वडुमपालेयम्
११-१०-'५६

ज्ञानविज्ञानमय युग

: ५७ :

अभी आपने एक बहुत सुंदर भजन सुना कि भक्तशिरोमणि 'आंडाल' भगवान् कृष्ण को अपना सर्वस्व समर्पण कर रही है। उसने अपने लिए कुछ भी नहीं रखा, बल्कि अपना जीवन ही कृष्णमय बना दिया। यहाँ तक कि कृष्ण भगवान् को पहनाने के लिए वह जो माला ले जाती थी, उसे पहले स्वयं पहन लेती और देखती कि ठीक दीखती है या नहीं। भगवान् को वह पुष्पमाला अधिक प्रिय होती थी, जो आंडाल पहले स्वयं पहनकर फिर भगवान् को देती। इसका अर्थ यह है कि उसका अपना निज का भोग भी परमेश्वरार्पण हुआ था। हम अपने लिए कुछ रख लेते हैं और बाकी भगवान् को देते हैं, समाज-सेवा में लगाते हैं, तो वह परोपकार होता है। लेकिन हम अपने लिए कुछ भी नहीं

रखते, सब समाज का समझते हैं, अपने शरीर के भोग को भी एक सामाजिक-कार्य समझते हैं, तो वह संपूर्ण कृष्णार्पण हो जाता है। फिर उस मनुष्य के लिए परोपकार जैसी कोई चीज ही नहीं रहती, क्योंकि 'स्व' और 'पर' में भेद ही मिट जाता है। फिर तो 'सर्वोपकार' हो जाता है। हमने 'कुरल' में एक बड़ा सुंदर मंत्र पढ़ा था कि 'जिसका हृदय प्रेम से भरा हो, जो उदार और बुद्धिमान् हो, वह समझता है कि अपनी हड्डियाँ भी अपनी नहीं, बल्कि समाज की हैं। इससे उल्टे जो छोटी बुद्धिवाला होता है, वह सारी दुनिया अपनी मालकियत की समझता है।'

पुराणों में दधीचि ऋषि की सुंदर कहानी है। वे महान् तपस्वी और भगवान् की भक्ति में तन्मय थे। उनके शरीर में ज्यादा मांस नहीं था, सिर्फ हड्डियाँ ही थीं। समाज के लोग उनके पास आये और कहने लगे : 'हमें वृत्रासुर से बहुत तकलीफ हो रही है और कहा गया है कि दधीचि ऋषि की हड्डियों के वज्र से ही उसकी पराजय हो सकेगी। इसलिए आप कृपाकर अपनी अस्थियाँ दीजिये।' दधीचि ऋषि ने बड़ी खुशी से अपनी हड्डियाँ समाज को अर्पित कर दीं और वे स्वयं मर गये।

धर्म-विचार के बिना मानव क्षण भर भी टिक नहीं सकता

अपना सर्वस्व समाज को समर्पित करना चाहिए, ऐसी बातें सुनने की हमारे समाज को आदत पड़ गयी है। आदत के कारण उनका चित्त पर बहुत ज्यादा असर भी नहीं होता। कुछ लोगों ने यह मान लिया है कि यह सारा धर्म-विचार परलोक के लिए है, इहलोक के लिए नहीं। कुछ लोगों ने माना है कि आगे जो आदर्श समाज आयेगा, उसमें यह नीति चलेगी;. पर आज के समाज में नहीं। इसीलिए 'ईसा मसीह के अनुयायी' कहलानेवाले भी इन दिनों शस्त्रसंभार बढ़ाने की तैयारी में लगे हैं। वे रविवार के दिन चर्च में जाकर प्रार्थना-प्रवचन सुनते और उनकी सेना के हर सिपाही के जेब में बाइबिल होती है। वे समझते हैं कि अहिंसा व्यक्तिगत कल्याण के लिए अच्छी है, पर समाज कल्याण के लिए हिंसा की जरूरत रहेगी ही। लोग समझते हैं कि त्यागी पुरुषों की ये सारी कहानियाँ,

भक्तगाथाएँ, धर्मप्रवचन, अहिंसा की बातें महापुरुषों के लिए हैं, अपने लिए नहीं। यह कल्पना गलत है। धर्म की अगर कहीं जरूरत है तो आज इसी क्षण है। जैसे हमें हवा इसी क्षण चाहिए, हम हवा को अगले क्षणों के लिए छोड़ देंगे, तो इन क्षणों में हमें मरना होगा। हवा को भी रोका जा सकता है, दस-पंद्रह मिनट तक हवा के बिना चल सकता है, पर धर्मविचार और प्रेम के बिना मनुष्य एक क्षण भी नहीं टिक सकता। फिर सवाल उठाया जा सकता है कि फिर आज कैसे टिका है? आज भी वह इसीलिए टिका है कि समाज में प्रेम का अंश अधिक है। कहीं द्वेष, झगड़ा या बुराई हो, तो मनुष्य को चुभती और एकदम उसकी आँखों को दिखाई देती है। किसी माता ने किसी बच्चे को प्यार किया, तो अखबार में उसका तार नहीं भेजा जाता, किंतु कहीं खून हुआ, तो उसकी खबरें अखबार में महीनों तक सतत आती हैं। सारा इतिहास लड़ाइयों से भरा रहता है। इसलिए शायद यह गलतफहमी हो सकती है कि मानव स्वभाव में झगड़े, द्वेष आदि हैं, पर बात इससे उल्टी है। स्वच्छ, निर्मल, शुभ्र खादी को जरा-सा भी दाग लग जाय तो वह एकदम दीखता है, वह सहन नहीं होता। दूध में जरा भी कचरा पड़ा हो, तो सहन नहीं होता। मानव-हृदय शुद्ध-निर्मल होने के कारण उसे बुराई सहन नहीं होती। इसलिए जो बुराई प्रकट होती है, वह फौरन अखबारों में और इतिहास में आ जाती है।

भूदान-यज्ञ में यह अनुभव हो रहा है कि हजारों लोग जमीन देते हैं। आजतक हमें साढ़े पाँच लाख लोगों ने जमीन दी है। जमीन के लिए भाई-भाई में झगड़े चलते हैं, कोर्ट में केस चलते हैं किसान को जमीन प्राणवत् प्रिय होती है, लेकिन जहाँ जमीन माँगी गई है, वहाँ लोगों ने प्रेम से दी है। कहीं कम-बेशी होती है, क्योंकि मोह होता है।

नदी समुद्र से डरती नहीं

कुल की कुल जमीन दान दीजिये, ऐसी माँग करना भी कलियुग के लिए साहस की बात मानी जायगी। फिर भी इस युग में यह बात बोली जाती है। इसलिए हम कहना चाहते हैं कि यह कलियुग नहीं, 'नारायणपरायणता' का

युग है। आज अपना सब कुछ समाज के लिए अर्पण करने की बात ठीक मालूम होती है। अगर किसी एक शख्स के लिए जमीन की माँग की गई, तो देना ठीक है या बेठीक, वह उसका उपयोग कैसे करेगा, आदि सवाल पैदा हो सकते हैं। लेकिन जहाँ समाज को अर्पण करने की बात आ गई, वहाँ तो पैसा बैंक में रखने की बात हुई। लोग इस बात को समझ जाते हैं कि मनुष्य के लिए सबसे सुरक्षित बैंक अगर कोई है, तो वह समाज है। वहाँ अपना पैसा सुरक्षित रहेगा और उसका इतना ब्याज मिलेगा कि हम अपने दो हाथों से न ले सकेंगे। कोई भी नदी कितनी ही बड़ी क्यों न हो, समुद्र में जाने से डरती नहीं। कावेरी भी अपना पानी समुद्र में उँडेल देती है और छोटा-सा नाला भी। बड़ी गंगा भी गंगासागर में मिल जाती है, क्योंकि सब का गन्तव्य-स्थान समुद्र ही है और वहीं से सबको पानी मिला है। इसलिए जहाँ समाज को देने की बात आती है, वहाँ लोगों को उसे समझने में मुश्किल मालूम नहीं होती।

ज्ञानविज्ञानमय युग

यह सारा इस युग में हो रहा है, क्योंकि यह ज्ञानविज्ञानमय युग है। पुराना युग ज्ञानमय युग था। वे लोग आत्मज्ञान से ही समझाते और आत्मज्ञान से ही माँगते थे। आत्मज्ञान का ग्रहण सबको आसानी से नहीं होता। इसलिए कुछ लोग उनकी बात सुनते थे, तो कुछ नहीं। अब इस युग जो बात कही जा रही है, वह आत्मज्ञान भी कहता है और विज्ञान भी। आत्मज्ञान कहता है कि 'तुम अपना सब कुछ दे दोगे, तो श्रेय होगा।' पहले भी वह यही कहता था और आज भी कहता है, 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः।' हम भी आत्मज्ञान की वही माँग कर रहे हैं और साथ-साथ विज्ञान की भी माँग कर रहे हैं। हम समझाते हैं कि भाइयो, इस विज्ञान-युग में अलग-अलग रहोगे, तो टिक न सकोगे। एक हो जाओगे तो टिक सकोगे। आपका श्रेय और कल्याण तो एक होने में ही है, यह प्राचीन काल में भी था और आज भी है। परंतु आपका ऐहिक जीवन भी इससे सुधरेगा, ऐसा विज्ञान

कह रहा है। आज व्यक्तिगत मालकियत के असुर पर एक तरफ से आत्मज्ञान का प्रहार हो रहा है और दूसरी तरह से विज्ञान का। इन दो प्रहारों के बीच अब यह असुर टिक नहीं सकता।

बुद्ध और आईन्स्टीन का शस्त्र

आप इस गलतफहमी में न रहें कि यह कलियुग है। भागवत की भाषा में तो यह 'नारायण सेवा का युग' है और आज की भाषा में 'ज्ञान-विज्ञान का युग'। बुद्ध भगवान् की बात आत्मकल्याण को पहचाननेवाले ही सुनते थे। पर बाबा की बात आत्मकल्याण और व्यक्तिगत कल्याण तथा समाज-कल्याण को पहचाननेवाले भी सुनते हैं। सबसे अलग रहने से इस युग में हम टिक नहीं सकते, यह बात बाबा के कहने से और अच्छी तरह समझ में आती है। बुद्ध भगवान् का शस्त्र तो बाबा के पास है ही, दूसरा विज्ञान का, आईन्स्टाइन का शस्त्र भी बाबा के पास है। उसके पास दो आयुध हैं, इसी-लिए भूदान और संपत्तिदान दे रहे हैं। यह इसलिए बन रहा है, क्योंकि आत्मज्ञान और विज्ञान, दोनों जोर कर रहे हैं। इसलिए जो ताकत दुनिया में पहले कभी भी पैदा नहीं हुई थी, वह ताकत आज पैदा होने जा रही है।

स्वार्थ के लिए सर्वस्व समर्पण करो

लोग पूछते हैं कि बाबा पाँच-साढ़े पाँच साल से सतत घूम रहा है, तो उसे थकान कैसे नहीं आती? हम कहते हैं कि प्रभु रामचंद्र जैसे महापुरुष को रावण जैसे मामूली असुर को नष्ट करने के लिए चौदह साल घूमना पड़ा, तो बाबा को मोहासुर को नष्ट करने के लिए साढ़े पाँच साल घूमना पड़ा, तो कौन-सी बड़ी बात है? रावण के तो दस ही सिर थे, लेकिन मोहासुर के हजार-हजार सिर हैं। बाबा को साढ़े पाँच साल घूमने से कोई थकान नहीं मालूम होती, बल्कि बड़ा उत्साह आता है, क्योंकि इस काम में धर्म और अर्थ, दोनों इकट्ठा हुए हैं। आप परार्थ चाहते हों तो आपको भूदान, संपत्तिदान में हिस्सा लेना चाहिए। आप स्वार्थ चाहते हों, तो भी इसमें हिस्सा लेना चाहिए। परार्थ चाहते हों, तो थोड़ा-सा दान देने से निभ

जायगा; पर स्वार्थ चाहते हों, तो सर्वस्व समर्पण करो, जैसे आंडाल ने अपना सर्वस्व भगवान् को समर्पित किया था। इस तरह धर्म और अर्थ, स्वार्थ और परार्थ, दोनों इकट्ठे हो रहे हैं। जरा उधर पश्चिम के देशों की तरफ देखिये। वहाँ कितना सामूहिक कार्य हो रहा है। यह सारा विनाश के लिए किया जा रहा है, फिर भी उसमें समूहभावना, सहयोग है ही। यह कितना प्रचंड सामूहिक कार्य है। ऐसे जमाने में हम अपना अलग-अलग घर, अलग इस्टेट आदि रखेंगे, तो कैसे टिकेंगे? इसलिए इस जमाने की माँग है कि हम सब व्यापक बन जायँ।

काटुपालेयम् (कोयम्बत्तूर)
१४-१०-'५६

धर्म का रूप बदलता है　　: ५८ :

सेवा और धर्म का रूप भी दिन-दिन बदलता रहता है। उसे पहचानना पड़ता है। युग-युग के अलग-अलग धर्म होते हैं, किन्तु कुछ समान धर्म भी होते हैं। सत्य, प्रेम और करुणा सारी दुनिया के लिए याने सब स्थानों के लिए और सब जमानों के लिए समान-धर्म है। परमेश्वर के असंख्य गुणों में से हमने ये तीन गुण चुन लिए हैं और उनका हम निरंतर स्मरण करते हैं। परमेश्वर का रूप इन्हीं तीन गुणों में देखते हैं। हमने कुल शास्त्रों, सत्पुरुषों के अनुभवों और इतिहास का निचोड़ निकालकर सत्य, प्रेम और करुणा ये तीन गुण चुने हैं। ये गुण ही अनादिकाल से आज तक सारी दुनिया को ऊपर उठाने का काम करते आ रहे हैं। फिर भी ये उस-उस समाज के लिए जैसा रूप चाहिए, वैसा लेते हैं।

पुराना समाज श्रद्धा-प्रधान, आज का ज्ञान-प्रधान

प्राचीन काल से आज तक समाज में भी सत्य, प्रेम और करुणा ये त्रिमूर्ति काम कर रहे हैं, किन्तु पुराने समाज में उनका एक रूप था, बीच के समाज में दूसरा रूप और आज तीसरा रूप है। पुराना समाज श्रद्धा-

प्रधान था, तो आज का समाज ज्ञान-प्रधान हो गया है। यह अपरिहार्य है। इसका मतलब यह नहीं कि पुराने समाज में ज्ञान की कीमत न थी और आज के समाज में श्रद्धा की कीमत नहीं है। लेकिन जहाँ सृष्टि का रहस्य और विज्ञान मनुष्य के सामने खुल गया, वहाँ मनुष्य की अवस्था दूसरे प्रकार की होती है। पुराने जमाने में बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों को और सम्राटों को भूगोल का जो ज्ञान नहीं था, वह आज दस साल के लड़के को है। अकबर जैसे बड़े बादशाह को या श्रीहर्ष जैसे बड़े सम्राट् को दुनिया में कितने देश हैं, यह कहाँ मालूम था? लेकिन आज हम देखते हैं कि स्वेज नहर के बारे में घटना हो रही है, तो दुनिया में ऐसा एक भी देश नहीं कि जहाँ के लड़कों को उसका ज्ञान न हो। कुल दुनिया के कुल अखबारों में उस खबर को प्रधान स्थान दिया जाता है। लोग उसे पढ़ते हैं और उसके बारे में सोचते भी हैं। वाद-विवाद मंडलियों में उचित-अनुचित की चर्चा भी चलती है। हिन्दुस्तान को ही मिसाल लीजिये। पिछले साल सीमा-आयोग की रिपोर्ट प्रकाशित हुई और उस पर देश भर में काफी चर्चा चली। उसमें लड़कों ने और विद्यार्थियों ने भी दिलचस्पी ली। यह दुःखजनक नहीं, आनंदजनक बात है।

आज भी श्रद्धा का क्षेत्र है

मैंने ये मिसालें इसलिए दीं कि आगे का समाज ज्ञान-प्रधान रहेगा। इसका मतलब यह नहीं कि श्रद्धा का क्षेत्र कम हो जायगा। मेरी आँख को चश्मा लग गया, तो मेरी आँख पहले जितना दूर देखती थी, उससे बहुत ज्यादा दूर का देखने लगी। मेरी आँख का क्षेत्र बढ़ गया, इसलिए कान का क्षेत्र कम होने का कोई कारण नहीं। वह क्षेत्र ही अलग है। श्रद्धा का क्षेत्र पहले भी था और आज भी है। लेकिन पहले जिन बातों में नाहक श्रद्धा रखते थे, उन बातों में आज उनकी श्रद्धा न रहेगी, वहाँ बुद्धि आयेगी। जिस विषय का स्पष्ट ज्ञान होता है, वहाँ श्रद्धा का सवाल नहीं है। लेकिन जहाँ ज्ञान बढ़ता है, वहाँ अज्ञान भी बढ़ता है। जिनके पास ज्ञान नहीं होता था, उनके पास अज्ञान भी बहुत कम होता था। पहले लोगों को इस दुनिया का जितना

ज्ञान था, उससे आज ज्यादा ज्ञान हुआ है और पहले हमें इस दुनिया के बारे में जितना अज्ञान था, उससे आज ज्यादा अज्ञान है। सच्चे ज्ञानी सच्चे अज्ञानी भी होते हैं, इसीलिए वे नम्र होते हैं। लेकिन अज्ञानी को थोड़ा-सा ज्ञान हो गया, तो उसे लगता है कि मुझे सारा ज्ञान हो ही गया, अब मेरे पास अज्ञान नहीं रहा। ज्ञानी को पता चलता है कि अभी प्राप्त करने के लिए कितना ज्ञान पड़ा है। इसीलिए आज भी श्रद्धा का क्षेत्र है, लेकिन जिन बातों में श्रद्धा की जरूरत नहीं है, उन बातों में लोग नाहक श्रद्धा न रखेंगे।

करुणा का युगानुकूल नया रूप

पुराने समाज के मूल्य आज के समाज में ज्यों-के-त्यों काम नहीं देंगे। आज नये मूल्य आयेंगे। उससे घबड़ाने का कोई कारण नहीं। वह करुणा का नया रूप है। छोटे बच्चों को आज्ञा करना करुणा का एक रूप है, लेकिन प्रौढ़ बाप की करुणा का रूप यह है कि लड़कों को सलाह दे, आज्ञा न दे। बूढ़े बाप की करुणा का रूप यह है कि अपने प्रौढ़ लड़के के पूछने पर ही सलाह दे, अन्यथा उसके वश में रहे। अगर कोई बाप ऐसा हो, जो बूढ़ा होने पर कहे कि बीस साल पहले मेरी आज्ञा चलती थी, लेकिन आज नहीं चलती, यह क्यों हुआ ? तो इस बाप में सिर्फ ज्ञान नहीं, ऐसी बात नहीं, बल्कि करुणा ही नहीं है।

पुराने लोग न पहचानेंगे

आज हम भूदान-यज्ञ के सिलसिले में जो कर रहे हैं, उसका आकलन पुराने ढंग से सोचनेवालों से एकदम नहीं होता, वे उसे समझ नहीं पाते, इसमें आश्चर्य नहीं। नारायण का एक अवतार राम था और उसीका दूसरा अवतार परशुराम, पर परशुराम ने राम को नहीं पहचाना। परशुराम कोई मूर्ख नहीं, महाज्ञानी और ईश्वर का अवतार था। फिर भी ईश्वर के नये अवतार को ईश्वर का पुराना अवतार पहचान न सका। लेकिन जब परशुराम ने रामचंद्र की कृति देखी, तब उसने पहचान लिया और मान लिया कि मुझे इसके सामने झुकना चाहिए।

पाँच साल से भूदान-यज्ञ एक छोटी-सी पगडंडी से चल रहा है। वह कोशिश कर रहा है कि दोनों ओर के आक्रमण टालकर आगे बढ़े। पुराने लोग हमसे पूछते हैं कि बाबा, आप जैसा बोलते हैं, वैसा बापू नहीं बोलते थे। बापू तो बड़े-बड़े फंड जमा करते थे और उसका ब्याज हासिल करते थे, पैसा ठीक जगह रखा है और उसका ब्याज ठीक मिल रहा है या नहीं, इसका पूरा ध्यान रखते थे। इस तरह एक ओर से इस प्रकार का आक्षेप उठाया जाता है और दूसरी ओर से यह आक्षेप उठाया जाता है कि आप जन-समाज को प्यार से जीतना चाहते हैं और जिसे जितना महत्त्व न देना चाहिए, उतना देते हैं। कुछ लोग ठीक इससे उल्टा कहते हैं कि जिन्हें जितना महत्त्व देना चाहिए, उतना नहीं देते। एक भाई कह रहे थे कि गांधीजी ने कांग्रेस को इतनी महिमा दिलायी, तो आप क्यों नहीं देते? उधर से दूसरे लोग कहते हैं कि आप कांग्रेसवालों के साथ मिलजुलकर काम करते हैं, अधिकतर कांग्रेसवाले ही भूदान का काम करते हैं, इसलिए कांग्रेस की महिमा नाहक क्यों बढ़ा रहे हैं? कुछ लोग कहते हैं कि आप खतरनाक काम कर रहे हैं, क्योंकि मालकियत मिट रही है। उधर दूसरे लोग पूछते हैं कि आप भूदान माँगते फिरते है, तो सत्याग्रह कब करेंगे? उनकी सत्याग्रह की कुछ अपनी कल्पना है।

नये विचार के लिए नया वाहन

इस तरह दोनों ओर से लोग पूछते रहते हैं, तो हमें उस पर न आश्चर्य होता है, न दुःख, बल्कि खुशी होती है। नया युग आ रहा है। करुणा का नया रूप प्रकट हो रहा है। करुणा का पुराना रूप अपने इस नये रूप को पहचान नहीं रहा है। हम अपने कार्यकर्ताओं को समझाते हैं कि पुराने लोगों का जितना आशीर्वाद हासिल कर सकते हो, उतना कर लेना चाहिए और यह ध्यान में रखना चाहिए कि नये विचार के लिए नये वाहन की जरूरत होती है। इसलिए आत्मनिष्ठापूर्वक काम करते चले जाओ। हमारी वाणी में नम्रता हो, हरएक के साथ हम प्रेम से पेश आयें, विचार-भेद को ठीक से समझें, गलत

विचार जरा भी सहन न करें, फिर भी सबके लिए आदर रखें। इस तरह हम काम करते चले जायँगे, तो यह काम खूब बढ़ेगा।

बजाजनगर (वीरपांडी)
१५-१०-'५६.

एक पुराना भ्रामक तत्त्व-विचार : ५९ :

बहुत पुराने जमाने से एक भ्रम चलता आया है, जिसके मूल में एक तत्त्व-विचार भी है। कुछ दार्शनिकों ने माना है कि आद्यतत्त्वों में एक तत्त्व नहीं, बल्कि दो तत्त्व हैं : स्त्रीतत्त्व और पुंतत्त्व याने प्रकृति और पुरुष। प्रकृति जड़ होती है और पुरुष चेतन। इस पर से कुछ लोग यह भी कहने लगे कि 'स्त्रियों को मोक्ष और वेदाध्ययन का अधिकार नहीं, क्योंकि वे जड़ हैं। वे इस जन्म में श्रद्धा-भक्ति रख सकती और फिर अगला जन्म पुरुष का पाकर मोक्ष हासिल कर सकती हैं। लेकिन स्त्री-जन्म में ही मोक्ष हासिल नहीं हो सकता।'

यह सारी गलतफहमी उस प्रकृति-पुरुष वाले रूपक के कारण हुई है। व्याकरण में 'प्रकृति' शब्द का स्त्रीलिंग और 'पुरुष' शब्द का पुल्लिंग है। किंतु वास्तव में प्रकृति याने जड़-अंश और पुरुष याने चेतन-अंश है। स्त्री और पुरुष दोनों में जड़-अंश होता है और चेतन-अंश भी। शरीर जड़ है और आत्मा चेतन। इसलिए दोनों में दोनों अंश समान हैं, यह नहीं कि स्त्री के शरीर में आत्मा का अंश कम है और शरीरांश ज्यादा या पुरुष के शरीर में आत्मा का अंश ज्यादा और शरीरांश कम है। फिर भी वह भ्रामक विचार चलता आ रहा है।

बजाजनगर (वीरपांडी)
१५-१०-'५६

अभी वैकुंठभाई मेहता ने अपने भाषण में कहा कि गत ५०-६० साल से स्वदेशी के दो आंदोलन हुए। फिर भी स्वदेशी-विचार हमारे मानस में स्थिर नहीं हुआ। बात सही है, पर उसके कारणों के विषय में हमें चिंतन करना चाहिए।

पुराना सदोष स्वदेशी-विचार

प्रथम तो जो स्वदेशी-विचार निर्माण हुआ था, वह स्वदेश-प्रेम के तौर पर नहीं, बल्कि विदेशी राज्य हटाने के साधन के तौर पर निर्माण हुआ। याने उसका स्वरूप भावात्मक (पॉजिटिव) नहीं, अभावात्मक (निगेटिव) था। इसका अर्थ यह नहीं कि उस आन्दोलन में स्वदेश-प्रेम का कोई अंश न था, बल्कि उस समय हमें अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त होना था और दूसरे-तीसरे साधन न मिल रहे थे। इसलिए हम आर्थिक बहिष्कार का एक शस्त्र के तौर पर उपयोग करें, यही हमारी दृष्टि थी। इसलिए उसका प्रथम स्वरूप तो यह था कि हम इंगलैंड का माल न खरीदें, चाहे दूसरे देशों का खरीदें। उन दिनों जापान ने रूस पर विजय पायी थी, एशियाई के नाते हमारे मन में जापान के लिए कुछ प्रेम और आदर पैदा हुआ था। इसलिए जापान का माल यहाँ बहुत आने लगा और हमारे स्वदेशी-आन्दोलन से जापान को लाभ मिला। फिर आगे ब्रिटिश माल के बहिष्कार की जगह विदेशी कपड़े के बहिष्कार की बात चली, जिससे यहाँ की मिलों को उत्तेजन मिला। यह संभव नहीं था कि कुल चीजें बाहर से न लें, इसलिए हमने कपड़े जैसी एक चीज चुन ली और उसे बाहर से न लेने का तय किया। परिणाम यह हुआ कि यहाँ की मिलों ने खूब नफा कमाया और देश को अच्छी तरह ठगा। हमें यह भी कबूल करना होगा कि हमारे आन्दोलनों को कुछ मदद उन्हीं लोगों ने पहुँचायी, जिन्होंने इस तरह नफा कमाया। मैं यह सब इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि उन लोगों के

लिए आपके मन में कुछ घृणा पैदा करूँ, बल्कि आपके सामने सिर्फ एक इतिहास रख रहा हूँ। सारांश, उन आन्दोलनों में यहाँ की जनता की ताकत बढ़ने कोई बात न हुई, ज्यादातर यह आंदोलन मध्यमवर्ग तथा ऊपर के वर्ग के लिए था। इस तरह यह स्वदेशी विचार सदोष ही था, उसमें कोई गहरा चिंतन न था।

स्वराज्य-प्राप्ति के ख्याल से चरखा स्वीकार

उसके बाद गांधीजी के समय दूसरा स्वदेशी-आन्दोलन हुआ। गांधीजी ने पुराने स्वदेशी आन्दोलन का दोष देख लिया था। इसलिए उन्होंने ग्रामोद्योगों पर जोर दिया और कहा कि ग्रामोद्योग शत-प्रतिशत स्वदेशी है। इसका मतलब यह हुआ कि जब ग्रामोद्योगों के बदले हम यहाँ की मिलों की चीजें खरीदते हैं, तो वह कुछ प्रतिशत स्वदेशी हो जाता है, उसे भी कुछ तो नंबर मिल ही जाते हैं, इसलिए उसका पूरा निषेध नहीं होता। फिर भी उसका काफी निषेध हुआ और नये आन्दोलन में पुरानी स्वदेशी का दोष नहीं रहा। किंतु इसमें भी एक दोष आ गया, जो गुण भी माना गया और वह गुण था भी। बहुत बार गुण-दोषों का मिश्रण हो जाता है। इसलिए एक गुण होता है, तो उसके साथ दोष भी होता है। उस आन्दोलन का गुण यह था कि वह चीज अपने देश की आजादी के साथ जुड़ी थी। केवल ग्रामोत्थान की ही दृष्टि से नहीं, बल्कि देश की आजादी की दृष्टि से वह चीज सामने रखी गयी। यह उसका बड़ा गुण और आकर्षण था। इसलिए आजादी के आन्दोलन के साथ यह विचार जरा व्यापक फैल गया। लेकिन उसमें एक दोष भी आया कि जिन्होंने उसको स्वीकार किया था, उन्होंने उसे आर्थिक बुनियादी अंश मानकर स्वीकार नहीं किया। गांधीजी उस आर्थिक विचार पर बहुत जोर देते थे, लेकिन उनके हाथ में एक साधन के तौर पर मुख्य संस्था कांग्रेस थी, जो अंग्रेज-सरकार से लड़ती थी। किंतु कांग्रेस के नेता बार-बार उनसे पूछते थे कि चरखे से आजादी का क्या संबंध है? क्या सूत कातने से स्वराज्य मिलेगा? याने क्या यह कोई मंत्र है? स्वराज्य तलवार से नहीं मिलता, यह चीज भी निगल जाना हमारे लिए

मुश्किल था। लेकिन उस समय हमारे हाथ में तलवार नहीं थी, इसलिए हमने वह चीज मान ली। लेकिन सूत के धागे से स्वराज्य मिलेगा, यह बात ग्रहण करनी बड़ी कठिन थी। फिर भी बहुत से लोगों ने उसे इसलिए कबूल किया, क्योंकि वे कहते थे कि इसके जरिये जन-संपर्क होगा। स्वराज्य के आन्दोलन के लिए जन संपर्क (मास कान्टैक्ट) की बहुत जरूरत होती है।

उसमें और एक बात भी थी कि उसके जरिये लोगों में अंग्रेजों के राज्य के बारे में असंतोष भी पैदा होता था। देश का दारिद्रय आदि सब बातें लोगों के सामने रखने का मौका उसके जरिये मिलता था। ये सब बातें सही थीं। दरिद्रता आदि की जिम्मेवारी अंग्रेजों की थी। लेकिन चरखे से हम अंग्रेजों के खिलाफ कुछ-न-कुछ भावना पैदा करेंगे, यह जो विचार था, उसके कारण दोष पैदा हुआ। परिणाम यह हुआ कि जहाँ स्वराज्य आया, वहाँ जिन लोगों ने उसे उस दृष्टि से स्वीकार किया था, उन्होंने कहा कि स्वराज्य-प्राप्ति के बाद चरखे का काम खतम हुआ। अब उसकी क्या जरूरत है?

स्वदेशी एक धर्म

बापू ने हमें सिखाया था कि जैसे सत्य एक धर्म है, अहिंसा एक धर्म है, उसी तरह अपने आस-पास के लोगों द्वारा पैदा किया हुआ माल प्रेम से स्वीकार करना हमारा धर्म है। क्योंकि अगर हम नजदीक की चीज छोड़कर दूर की लेते हैं, तो करुणा नहीं, बल्कि लाभ-प्राप्ति की दृष्टि होती है। अगर करुणा की दृष्टि हो, तो आसपास के लोगों का दुःख दूर करना हम अपना कर्तव्य समझेंगे। इसमें दूरवालों का द्वेष नहीं होगा। बल्कि दूर के लोगों का भी वही कर्तव्य होगा कि वे अपना माल इस्तेमाल करें। स्वदेशी जीवन का एक धर्म है, यह बात बापू ने हमारे सामने रखने की कोशिश की थी, नहीं तो उस समय स्वदेशी को राजनैतिक बहिष्कार का एक साधन माना गया। इसलिए कुछ लोगों को उसका आकर्षण था और इसीलिए कुछ लोगों के मन में उसके प्रति विरोध भी था। वे कहते थे कि यह स्वदेशी का प्रचार बिलकुल संकुचित है। दुनिया एकरूप है, इसलिए कहीं से भी हम माल ले सकते हैं। हम फलाने देश का

लिए आपके मन में कुछ घृणा पैदा करूँ, बल्कि आपके सामने सिर्फ एक इतिहास रख रहा हूँ। सारांश, उन आन्दोलनों में यहाँ की जनता की ताकत बढ़ने कोई बात न हुई, ज्यादातर वह आंदोलन मध्यमवर्ग तथा ऊपर के वर्ग के लिए था। इस तरह वह स्वदेशी विचार सदोष ही था, उसमें कोई गहरा चिंतन न था।

स्वराज्य-प्राप्ति के ख्याल से चरखा स्वीकार

उसके बाद गांधीजी के समय दूसरा स्वदेशी-आन्दोलन हुआ। गांधीजी ने पुराने स्वदेशी आन्दोलन का दोष देख लिया था। इसलिए उन्होंने ग्रामोद्योगों पर जोर दिया और कहा कि ग्रामोद्योग शत-प्रतिशत स्वदेशी है। इसका मतलब यह हुआ कि जब ग्रामोद्योगों के बदले हम यहाँ की मिलों की चीजें खरीदते हैं, तो वह कुछ प्रतिशत स्वदेशी हो जाता है, उसे भी कुछ तो नंबर मिल ही जाते हैं, इसलिए उसका पूरा निषेध नहीं होता। फिर भी उसका काफी निषेध हुआ और नये आन्दोलन में पुरानी स्वदेशी का दोष नहीं रहा। किंतु इसमें भी एक दोष आ गया, जो गुण भी माना गया और वह गुण था भी। बहुत बार गुण-दोषों का मिश्रण हो जाता है। इसलिए एक गुण होता है, तो उसके साथ दोष भी होता है। उस आन्दोलन का गुण यह था कि वह चीज अपने देश की आजादी के साथ जुड़ी थी। केवल ग्रामोत्थान की ही दृष्टि से नहीं, बल्कि देश की आजादी की दृष्टि से वह चीज सामने रखी गयी। यह उसका बड़ा गुण और आकर्षण था। इसलिए आजादी के आन्दोलन के साथ वह विचार जरा व्यापक फैल गया। लेकिन उसमें एक दोष भी आया कि जिन्होंने उसको स्वीकार किया था, उन्होंने उसे आर्थिक बुनियादी अंश मानकर स्वीकार नहीं किया। गांधीजी उस आर्थिक विचार पर बहुत जोर देते थे, लेकिन उनके हाथ में एक साधन के तौर पर मुख्य संस्था कांग्रेस थी, जो अंग्रेज-सरकार से लड़ती थी। किंतु कांग्रेस के नेता बार-बार उनसे पूछते थे कि चरखे से आजादी का क्या संबंध है? क्या सूत कातने से स्वराज्य मिलेगा? याने क्या यह कोई मंत्र है? स्वराज्य तलवार से नहीं मिलता, यह चीज भी निगल जाना हमारे लिए

सिद्धांत को मानते हैं। लेकिन परस्परावलंबन दो प्रकार का होता है। एक समर्थों का और दूसरा असमर्थों का परस्परावलंबन। आपके हाथ, पाँव, आँखें सब कुछ हैं, मुझे भी वह सब हैं। आप भी एक पूर्ण पुरुष हैं, हम भी एक पूर्ण पुरुष हैं। आप भी समर्थ हैं, हम भी समर्थ हैं। अब हम दोनों हाथ से हाथ मिलाकर काम करेंगे, परस्पर सहयोग करेंगे, तो वह समर्थों का सहयोग होगा। मान लीजिये कि भगवान् ने ऐसा किया होता कि आपको चार आँखें दी होतीं और कान नहीं दिये होते, मुझे चार कान दिये होते और आँखें नहीं दी होतीं, और भगवान् कहता कि तुम लोग अब परस्परावलम्बन करो, सुनने की जरूरत हो तो कानवाला सुनेगा, और देखने की जरूरत हो तो आँखवाला देखेगा। दोनों मिलकर सुनना और देखना, दोनों काम हो जायँगे। इसी तरह का परस्परावलंबन आज चल रहा है। इसे सांख्यशास्त्र में 'अंधपंगु न्याय' कहते हैं।

अगर हम कहें कि हम स्वावलंबनवादी हैं, तो हम संकुचित बन जाते हैं। इसलिए हमने तय किया है कि हम स्वावलंबन का नाम नहीं लेंगे, हम परस्परावलंबन का ही नाम लेंगे, किंतु हरएक को पूर्ण रखेंगे और पूर्णों का परस्परावलंबन चलेगा। हमारे सामनेवालों की जो योजना है, उसमें हम भी अपूर्ण हैं और आप भी अपूर्ण हैं, और दोनों मिलकर पूर्ण बन जाते हैं। लेकिन हमारी योजना में हम भी पूर्ण हैं और आप भी पूर्ण हैं और दोनों मिलकर परिपूर्ण बन जाते हैं। उपनिषदों ने यही कहा है कि 'पूर्णम् अदः पूर्णम् इदम्' परमेश्वर ने अपनी रचना में प्राणिमात्र को बुद्धि दी है। आज की योजना के मुताबिक अगर उसने बुद्धि का भंडार किसी बैंक में रखा होता, तो कैसा मजा आता? फिर किसी को अक्ल की जरूरत पड़ती, तो वह परमेश्वर के पास टेलीग्राम भेजता कि अक्ल भेजो। आजकल हमारे इंतजाम करनेवालों को हवाई जहाज में कितना दौड़ना पड़ता है, तो फिर परमेश्वर को कितना दौड़ना पड़ता? लेकिन ईश्वर की क्या हालत है? वह क्षीरसागर में सोता रहता है और इतना शांत है कि कुछ लोगों के मन में शंका होती है कि वह है भी या नहीं। क्योंकि उसका इंतजाम इतना सुव्यवस्थित है कि उसे बीच-बीच में दर्शन देने की जरूरत ही नहीं

माल लेंगे और फलाने देश का माल न लेंगे, *यह कहना ठीक नहीं है।* उस समय स्वदेशी विचार मूलतः संकुचित भावना से निर्माण हुआ था, इसलिए जैसे चंद लोगों को उसका आकर्षण था, वैसे ही चंद लोगों को उसका विरोध भी था।

अतः हमें स्वदेशी को एक जीवन-विचार के तौर पर समझना बाकी है। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद हिन्दुस्तान में क्या दृश्य देखने को मिला? स्वदेशी का विचार ही खतम हो गया है। यहाँ तक कि परदेश में सीये हुए कपड़े यहाँ आते हैं और कुछ तो वहाँ के लोगों के इस्तेमाल किये हुए होते हैं। किंतु *वे सस्ते मिलते हैं। कुछ लोग इसे भी सेवा मानते हैं, क्योंकि उससे गरीबों* को कपड़ा सस्ता मिलता है।

बुनियादी विचार ठीक से समझें

हम किसी का दोष नहीं दिखाना चाहते। दोष व्यक्ति का नहीं है। जब विचार ही ठीक से समझ में नहीं आता, तब दोष निर्माण होते हैं। अगर हम अहिंसक समाज-रचना चाहते हैं, तो बुनियादी तौर पर कुछ बातें हमें समझनी चाहिए। अगर उन विचारों का ग्रहण नहीं हुआ, तो अहिंसा का नाम लेते हुए भी, विश्वशान्ति की चाह रखते हुए भी, हमारे काम से हिंसा को बढ़ावा मिलेगा। अहिंसा के लिए जिन बातों की अत्यंत जरूरत है, ऐसी दो बातों का उल्लेख वैकुंठभाई ने अपने भाषण में किया। अहिंसा के लिए और भी वस्तुओं की जरूरत है, लेकिन उन सबका विवेचन करने का आज प्रसंग नहीं। उन्होंने जो दो बातें बतायीं उनमें से एक यह है कि उस-उस *स्थान के लोग अपना भार दूसरों पर न रखें, अपना भार खुद उठायें, जिसे* हम स्वावलंबन का सिद्धान्त कह सकते हैं। दूसरी बात यह है कि आर्थिक समत्व की जरूरत है। इस बारे में हमें अपना विचार साफ करना चाहिए। जो लोग हमारा विचार नहीं जानते, वे अगर उसपर अमल नहीं करते हैं तो हम उनका दोष नहीं मान सकते।

समर्थों का परस्परावलंबन

हम सर्वोदयवाले स्वावलंबन सिद्धान्त को नहीं, बल्कि परस्परावलंबन के

भगवान् से प्रार्थना करते समय यह नहीं कहते हैं कि भगवान् हमें सद्बुद्धि दे, बल्कि यह कहते हैं कि भगवन्! तू आईक, ईडन, बुलगानिन को सद्बुद्धि दे। क्योंकि भगवान् मुझे बुरी बुद्धि देगा, तो उससे दुनिया का कुछ न बिगड़ेगा, मेरा ही बिगड़ेगा। लेकिन अगर इन लोगों का दिमाग बिगड़ गया, तो सारी दुनिया का मामला बिगड़ जायगा।

हम सबके लिए यह सोचने की बात है कि हमने सारी दुनिया की रचना इस तरह बना ली है कि इधर से चीज उधर भेजो और उधर से इधर भेजो। ऐसी हालत में किस वक्त दुनिया का संतुलन बिगड़ेगा, कह नहीं सकते। मान लीजिये कि कल विश्वयुद्ध शुरू हुआ, तो हिंदुस्तान चाहे उसमें शामिल होना चाहता हो, या न चाहता हो, तो भी जो विश्व में शामिल हैं उन्हें विश्वयुद्ध में शामिल होना ही पड़ेगा। इस हालत में एक बम कोयम्बतूर में पड़े, दूसरा बंबई पर और तीसरा अहमदाबाद में, तो वहाँ के कुल मजदूर शहर छोड़कर भाग जायँगे। फिर आपको और हमें, सबको नंगा रहना पड़ेगा। इसलिए हम कहते हैं कि रोजमर्रा की चीजें बाहर से खरीदना खतरनाक है। उसमें दुनिया की जो रचना बनती है, वह अच्छी नहीं बनती।

स्विटजरलैंड की घड़ियाँ खरीदें

अभी इन लोगों ने एक अच्छा अंबर चरखा बनाया है। इसकी अच्छाई यही है कि यह स्वयमेव कातता है। यंत्र की अच्छाई इसीमें मानी जाती है कि वह स्वयमेव चले। समाज रूपी यंत्र भी तब अच्छा माना जायगा, जब स्वयमेव चलेगा। अगर ऐसा हो कि हर जगह का इंतजाम वहाँ के लोग करें; खाना, कपड़ा आदि रोजमर्रा की चीजें अपने गाँव में या दस-पाँच गाँव मिलकर पैदा करें और जो रोजमर्रा की चीजें न हों, वे जहाँ पैदा होती हों, वहाँ से खरीदें, तो वह बहुत अच्छी रचना होगी। मैं इस विचार को भी पसंद नहीं करूँगा कि हम हिन्दुस्तान में बहुत ज्यादा कोशिश करके नाहक घड़ियाँ बनायें। उन्हें स्विटजरलैंड बहुत अच्छी तरह बना रहा है। इतना ही चाहूँगा कि लोग नाहक घड़ी न पहनें। आजकल हरएक के हाथ में घड़ी दीखती

पड़ती। सारांश, उसने अच्छी तरह से विकेंद्रित योजना बनायी है, सबको अक्ल दी है।

स्वावलंबन का अर्थ

हम भी परस्पर सहयोग चाहेंगे। जहाँ अच्छा गेहूँ पैदा नहीं होता, वहाँ उसे पैदा न करेंगे। हर रोज गेहूँ खाने का आग्रह नहीं करेंगे। हमारी जमीन में चावल और ज्वार पैदा होता हो, तो हम हर रोज वही खायेंगे। फिर भी कभी-कभी गेहूँ खाने की इच्छा हो, तो यह न कहेंगे कि गेहूँ खाना बड़ा पाप है। गेहूँ बाहर से खरीद लेंगे। जिन चीजों की रोजमर्रा आवश्यकता है, जिनके बिना एक क्षण भी न चलेगा, ऐसी चीजों के लिए अपना भार दूसरों पर नहीं डालना चाहिए। इसका नाम है अहिंसा की रचना और इसीको 'स्वदेशी' कहते हैं।

स्वदेशी में बाहर के लोगों के साथ व्यापार-व्यवहार नहीं चलेगा, ऐसी बात नहीं है। स्वदेशी में परस्पर व्यवहार के लिए अच्छी तरह गुंजाइश है। किंतु जो काम हम अच्छी तरह कर सकते हैं, उस काम का बोझ दूसरों पर डालना गलत है। जो चीजें हम देहात में अच्छी तरह बना सकते हैं, वे वहाँ न बनायें और दूसरों की चीजें खरीदते रहें, इसका क्या अर्थ है? कपड़ा शहरों की मिलों में बनता है। और कपास कहाँ बनती है? अगर यह होता कि कपास शहरों में पैदा होती, तो हम ग्रामों के लिए खादी का आग्रह न रखते। गाँववालों से हम यही कहते कि तुम्हारे यहाँ कपास नहीं होती है, कपास तो बंबई अहमदाबाद और कोइम्बतूर में होती है, तुम्हारे यहाँ अनाज होता है, तो तुम्हें उतना ही पकाना चाहिए। लेकिन जब कपास देहात में पैदा होती है, तो इधर की कपास उधर भेजो और उधर का कपड़ा इधर लाओ, यह सब क्या है?

रोजमर्रा की चीजें बाहर से खरीदना खतरनाक

दुनिया में विश्वयुद्ध कब शुरू हो जायगा, कोई नहीं कह सकता, क्योंकि दुनिया का सारा बुरा-भला करने का अधिकार दो-चार व्यक्तियों के हाथ में है। अगर उनके दिमाग बिगड़े, तो दुनिया में लड़ाई शुरू होगी। आजकल हम

भगवान् से प्रार्थना करते समय यह नहीं कहते हैं कि भगवान् हमें सद्बुद्धि दे, बल्कि यह कहते हैं कि भगवन्! तू आईक, ईडन, बुलगानिन को सद्बुद्धि दे। क्योंकि भगवान् मुझे बुरी बुद्धि देगा, तो उससे दुनिया का कुछ न बिगड़ेगा, मेरा ही बिगड़ेगा। लेकिन अगर इन लोगों का दिमाग बिगड़ गया, तो सारी दुनिया का मामला बिगड़ जायगा।

हम सबके लिए यह सोचने की बात है कि हमने सारी दुनिया की रचना इस तरह बना ली है कि इधर से चीज उधर भेजो और उधर से इधर भेजो। ऐसी हालत में किस वक्त दुनिया का संतुलन बिगड़ेगा, कह नहीं सकते। मान लीजिये कि कल विश्वयुद्ध शुरू हुआ, तो हिंदुस्तान चाहे उसमें शामिल होना चाहता हो, या न चाहता हो, तो भी जो विश्व में शामिल हैं उन्हें विश्वयुद्ध में शामिल होना ही पड़ेगा। इस हालत में एक बम कोयम्बतूर में पड़े, दूसरा बंबई पर और तीसरा अहमदाबाद में, तो वहाँ के कुल मजदूर शहर छोड़कर भाग जायँगे। फिर आपको और हमें, सबको नंगा रहना पड़ेगा। इसलिए हम कहते हैं कि रोजमर्रा की चीजें बाहर से खरीदना खतरनाक है। उसमें दुनिया की जो रचना बनती है, वह अच्छी नहीं बनती।

स्विटजरलैंड की घड़ियाँ खरीदें

अभी इन लोगों ने एक अच्छा अंबर चरखा बनाया है। इसकी अच्छाई यही है कि यह स्वयमेव कातता है। यंत्र की अच्छाई इसीमें मानी जाती है कि वह स्वयमेव चले। समाज रूपी यंत्र भी तब अच्छा माना जायगा, जब स्वयमेव चलेगा। अगर ऐसा हो कि हर जगह का इंतजाम वहाँ के लोग करें; खाना, कपड़ा आदि रोजमर्रा की चीजें अपने गाँव में या दस-पाँच गाँव मिलकर पैदा करें और जो रोजमर्रा की चीजें न हों, वे जहाँ पैदा होती हों, वहाँ से खरीदें, तो वह बहुत अच्छी रचना होगी। मैं इस विचार को भी पसंद नहीं करूँगा कि हम हिन्दुस्तान में बहुत ज्यादा कोशिश करके नाहक घड़ियाँ बनायें। उन्हें स्विटजरलैंड बहुत अच्छी तरह बना रहा है। इतना ही चाहूँगा कि लोग नाहक घड़ी न पहनें। आजकल हरएक के हाथ में घड़ी दीखती

है। उसका उपयोग इसी में होता है कि अपना कितना समय आलस्य में बीता, इसका पता चले। साथ ही किसी की घड़ी का किसी की घड़ी से मेल नहीं खाता। किसी की घड़ी १० मिनट आगे, तो किसी की १० मिनट पीछे।

खालिस चीज मिलती नहीं

इन दिनों जवान लोगों के सिर पर एक छप्पर दीखता है। वे सुन्दरता के लिए बाल रखते हैं और उसमें शहर का तेल डालते हैं। वह तेल खराब होता है, क्योंकि उसमें दूसरी खराब चीजें मिलायी जाती हैं। उससे बाल पक जाते हैं। याने सुन्दरता के लिए जो किया जाता है, उसीसे लोग कुरूप बनते हैं। लोगों को इतनी मामूली अक्ल क्यों न होनी चाहिए कि गाँव का स्वच्छ-शुद्ध तेल डालें?

आज दुनिया में बड़ी भारी समस्या है कि कहीं भी खालिस चीज नहीं मिलती। यहाँ तक कि औषध भी खालिस नहीं मिलती। यह बड़ी भयानक दशा है। इसमें मनुष्य की निष्ठुरता की कोई सीमा ही नहीं है। यह सारा मिश्रण इसलिए होता है कि लोग स्वदेशी धर्म को नहीं पहचानते। इसलिए हमें अपना काम स्वयं करना चाहिए। जितना हमसे हो सके उतना करने के बाद जो नहीं हो सकता, उसका बोझ हम दूसरों पर डाल सकते हैं। दूसरे भी जो काम न कर सकेंगे, उनका जिम्मा हमें उठा लेना चाहिए।

इस तरह एक-दूसरे की मदद देने-लेने में पाप या संकोच नहीं। वह मदद याने 'परोपकार' होना चाहिए। 'उपकार' शब्द में ही एक खूबी है। थोड़ी-सी मदद को उपकार कहते हैं। अपना मुख्य काम हम खुद ही करें और कुछ थोड़ी-सी चीजें, जो हम नहीं बना सकते, दूसरों से लें। उतना उपकार हम उनसे लें और उतना ही उपकार उनपर करें। अगर कोई पंगु हो, तो हम उसे कंधों पर उठाएँ। वह प्रेम का कर्त्तव्य होगा, सवाल यही है कि प्रेम और करुणा क्या कह रही है। अपने नजदीक वाले मनुष्य ने जो चीज बनाई, उसे न खरीदते हुए दुनिया की चीजें खरीदना एक संकुचित स्वार्थ और निष्ठुरता है।

विचार व्यापक रहे

स्वदेशी में किसी प्रकार का मानसिक संकोच नहीं। तुकाराम से जब पूछा गया था कि तुम्हारा स्वदेश कौन-सा है, तुम कहाँ रहते हो, तो उसने जवाब दिया : "आमुचा स्वदेश, भुवनत्रयामधे वास"—मेरा स्वदेश यही है कि मैं तीनों भुवनों में निवास करता हूँ। तुकाराम एक बिलकुल ही देहात में रहनेवाला मनुष्य था। उसने भिन्न-भिन्न भाषाएँ नहीं सीखी थीं। सिर्फ अपनी मातृभाषा मराठी जानता था। उसने अपनी सारी जिंदगी एक देहात में ही बितायी। लेकिन जब उससे पूछा गया कि तुम कहाँ रहते हो तो उसने कहा कि मैं तीनों भुवनों में रहता हूँ। इस तरह हमें विचारों में अत्यंत व्यापक होना चाहिए। समझना चाहिए कि दुनिया में जितने मानव हैं, वे सब हमारे भाई हैं। किंतु हमें अपने भाइयों से भी कहना चाहिए कि 'तू पंगु नहीं, तुझे अपना काम करना चाहिए। मैं भी पंगु नहीं, मुझे भी अपना काम करना चाहिए। फिर हम एक दूसरे को थोड़ी मदद कर सकते हैं।' हमारा विचार संकुचित स्वावलंबन का नहीं, दया और करुणा का विचार है। अगर हम करुणा रखते हैं, तो हमें स्वदेशी विचार के बारे में इसी तरह सोचना चाहिए। स्वदेशी के पुराने आन्दोलन सफल नहीं हुए, इसका कारण यही है कि खालिस विचार लोगों के पास नहीं पहुँचाया गया। उसे अत्यन्त शुद्ध स्वरूप में अगर किसी ने रखा, तो गांधीजी ने ही रखा है। उन्होंने किसी प्रकार का लेशमात्र भी संकोच नहीं रखा।

स्वदेशी का शुद्ध दर्शन

ऋग्वेद में अग्नि का वर्णन आता है। 'दूरेदृशं गृहपतिमथर्युम्'—अग्नि दूर को देखता है और अपने घर का पालन करता है। यहाँ पर अग्नि रखी हो तो दूर से दिखाई देती है, पर उसकी गर्मी नजदीक वालों को ही पहुँचती है। इस तरह हम दृष्टि से चारों ओर प्रेम करें। किन्तु जो प्रत्यक्ष सेवा करनी है, वह आस-पास के लोगों की ही करें। सेवा हाथ से की जाती है और प्रेम दिल से। विचार

दिमाग से किया जाता है। प्रेम और विचार अत्यंत व्यापक हो सकते हैं, पर हाथ नहीं। हाथ नजदीक की सेवा ही कर सकते हैं।

वेद में *अग्नि का जैसा वर्णन है, वैसा ही वर्णन 'वर्ड्सवर्थ' की एक* सुंदर कविता में आता है—"The Type of the wise who soar but never roam. True to the kindred points of Heaven and Home. *अर्थात् स्काइलार्क आकाश में ऊँचा उड़ता है, फिर भी अपने* घोंसले पर उसकी दृष्टि रहती है। उसमें ऊँचा उड़ने की ताकत है। किंतु वह ऐसा ऊँचा नहीं उड़ता कि घोंसले को ही छोड़े। वह पक्षी स्वर्ग की तरफ भी नजर रखता है और घोंसले की तरफ भी। वह ऐसा नहीं करता कि आकाश में ही ऊँचा भटकता रहे या ऐसा भी नहीं करता कि अपने घोंसले में बैठा रहे और उसके इर्दगिर्द ही नाचे। यह स्वदेशी धर्म है। हमें सारी दुनिया पर प्रेम करना है। मन में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रखना है। हम सारे विश्व के नागरिक हैं, लेकिन हम सेवा नजदीक के क्षेत्र में ही करेंगे। *श्वाइत्सर* अफ्रिका में सेवा कर रहा है। वह सारी दुनिया के लिए प्रेम रखता है, लेकिन आपके मलाबार के लिए वह क्या कर रहा है? कुछ भी नहीं कर सकता है, क्योंकि हाथ-पाँव की एक मर्यादा होती है।

इस तरह सेवा के लिए नजदीक का क्षेत्र और प्रेम तथा चिंतन के लिए सारी दुनिया पर ही नजर, इसका नाम है 'स्वदेशी धर्म'। इसलिए स्वदेशी धर्म में जाति, गाँव, प्रान्त, देश या धर्म का अभिमान आदि बातें नहीं आ सकती हैं। इन सबको स्वदेशी धर्म में से हटा देना चाहिए। क्योंकि अगर ये चीजें रहीं, तो स्वदेशी न टिकेगी। जिनकी उदार दृष्टि हो, वे ही स्वदेशी को समझ सकते हैं। स्वदेशी का यही शुद्ध दर्शन हमें करना होगा। आज इस ओर वैकुंठभाई ने *ध्यान खींचा। वे सूत्रवत् बोले, तो हमें भी लगा कि उसपर* भाष्य करना ही चाहिए।

गांधीनगर-तिरुपुर (मद्रास)
१७-१०-'५६.

चुनाव खेलो

: ६१ :

भूदान के काम में हमें हँसने की कला सीखनी चाहिये। हम लोगों के पास जाकर अपनी बात समझायेंगे, तो कभी उसका जवाब अनुकूल मिलेगा, कभी प्रतिकूल। किन्तु दोनों हालतों में लोग हमें हँसते देखें, तभी भूदान आगे बढ़ेगा। अगर अनुकूल जवाब मिलने पर हम हँसे, और प्रतिकूल मिलने पर चिढ़ जायँ, तो भूदान आगे नहीं बढ़ सकता। इसलिए हमारा यह काम हँसते-हँसते करने का काम है।

इन दिनों बहुत से लोगों को हर बात में 'फाइट' करने की आदत पड़ गयी है। कहा जाता है कि अगले साल १९५७ में चुनाव की 'फाइट' होगी। हमने कई बार कहा है कि तुम लोग चुनाव लड़ते क्यों हो? चुनाव तो खेलना चाहिए। कुश्ती खेलते हैं या नहीं? दो मनुष्यों के बिना कुश्ती नहीं बनती। इसलिए कांग्रेसवालों को इस वक्त बड़ी मुश्किल हो रही है। उन्हें फिक्र है कि सामने कुश्ती के लिए मल्ल ही नहीं दिखाई देता। विरोधी दल के बिना लोकशाही का कारोबार अच्छा नहीं चलता, यह सिद्धांत हमने बनाया ही है। आप अगर विरोधी दल चाहते हैं, तो आपको चुनाव खेलना चाहिए, लड़ना नहीं। कुश्ती में जो जीतता है, उसे इनाम मिलता ही है। लेकिन जो हारता है, उसे भी सम्मानपूर्वक नारियल देते हैं। क्योंकि अगर वह न हारता, तो दूसरे को ५००) रु० इनाम मिलता ही नहीं। इसीलिए चुनाव को एक खेल के तौर पर समझें, तो आज जो उसमें बुराइयाँ होती हैं, वे न होंगी। जिसने चुनाव जीत लिया, उसे राज्य-कारोबार चलाने का इनाम मिल गया और जो चुनाव हार गया, उसे सार्वजनिक सेवा का नारियल! दोनों को दोनों ओर से लाभ है। उसमें अपना क्या बिगड़ेगा! वे हारे तो भी उनकी जीत होती है।

पक्षभेद के कारण प्रेम न घटे

इलेक्शन में हमें खेल के समान वृत्ति रखनी चाहिए। उसमें यह होना चाहिये कि हम दोनों भाई-भाई हैं। एक ही आश्रम या एक ही घर में रहते हैं,

प्रेम से मिलजुल कर काम करते हैं, एक साथ खाते-पीते हैं, अपनी कमाई दोनों बाँट लेते हैं। उनमें एक सोशलिस्ट पार्टी का है, तो दूसरा कांग्रेस पक्ष का। फिर भी एक दूसरे से दोनों अत्यंत प्रेम करते हैं। चुनाव में ये दोनों जायँगे, तो एक कहेगा कि दूसरे को वोट मत दीजिये, क्योंकि यह अच्छा कारोबार न चलायेगा, क्योंकि उसकी कल्पना अच्छी नहीं है। दूसरा भी इसी तरह लोगों से कहेगा कि यह अच्छी लोकशाही न चलायेगा, क्योंकि उसका विचार ठीक नहीं है। इस तरह एक-दूसरे के विरुद्ध प्रचार करेंगे। लोगों में अपने विचार का प्रचार करेंगे। कोई भी हारे और कोई भी जीते, लेकिन घर पर जाकर दोनों एक साथ खायेंगे-पीयेंगे और प्रेम से रहेंगे। इस तरह के आनन्द में और विनोद के बीच चुनाव होना चाहिए। फिर हम दोनों में से कोई भी हार जाय, तो कोई हर्ज नहीं।

हमने बिहार में यह खूब देखा है। बिहार के कई कुटुंबों में एकआध कांग्रेसी होता है, दूसरा कम्युनिस्ट, तीसरा सोशलिस्ट, तो चौथा सर्वोदयवादी। बाप अगर काँग्रेसी रहा, तो बेटा जरूर कम्युनिस्ट होगा। लेकिन वे लोग कहते हैं कि किसी भी पक्ष का राज्य चले, अपने कुटुंब का नुकसान न होगा, क्योंकि कुटुंब में हरएक पार्टी के लोग होते हैं। यही आनंद प्राचीन काल में हिन्दुस्तान में आता था। बाप हिन्दू होता था, तो बेटा बौद्ध और उसका एक भाई जैन होता था, सभी एक ही परिवार में प्रेम से रहते और अलग-अलग अपने-अपने धर्म में विश्वास रखते थे। लेकिन धर्म-विश्वास अलग है, तो प्रेम तोड़ना चाहिए, इसकी कोई जरूरत नहीं। इसी तरह राजनैतिक पद्धति अलग होने पर भी प्रेम तोड़ने की जरूरत नहीं है। इसलिए चुनाव में लड़ने की वृत्ति, 'टु फाइट इलेक्शन' यह शब्द बहुत बुरा है। यह शब्द अंग्रेजी भाषा से यहाँ आया है। अपने देश में तो चुनाव खेल होना चाहिए।

घर्षण में तेल डालिये

खैर, यह तो हमने आपको बेकार बात बतायी, क्योंकि आपने प्रस्ताव पास किया कि हम चुनाव में भाग न लेंगे, इसलिए आप पर यह लागू

नहीं होती। चुनाव में जो हिस्सा लेंगे, उनको यह बात समझाइये, इतनी ही आपकी जिम्मेवारी रहेगी कि दोनों में से किसी की सूरत रोनी या गुस्सेवाली न हो। अगर हमने इतना कर लिया, तो भी बहुत किया। मशीन में 'घर्षण' तो होता ही है। अगर बिना 'घर्षण' की मशीन बनायें, तो वह काम ही न देगी। बिना घर्षण के मशीन ढीली पड़ जायगी। उसमें गति ही न आयेगी। इसलिए कितना भी हँसते-हँसते चुनाव खेलो, फिर भी उसमें कुछ-न-कुछ घर्षण होगा ही। ऐसे समय आप तेल की डिबिया लेकर तैयार रहिये। ज्योंही घर्षण की स्थिति मालूम पड़े, त्यों ही उसमें तेल डालिये। अगर यह कला आपको सध जाय तो लोग शिकायत न करेंगे कि आप चुनाव से अलग रहे। बल्कि यही कहेंगे कि अगर ऐसे थोड़े लोग अलग न रहते, तो तेल ही कौन डालता!

भूदान-कार्य करने का तरीका

जब चुनाव हँसते-हँसते खेलना है, तब भूदान काम चिढ़ते-चिढ़ते नहीं करना है, यह अलग बताने की जरूरत नहीं। लोग समझते हैं कि यह इस्टेट (भूमि आदि) हमारी है, तो हमें भी कहना चाहिए कि हाँ, हम आपके लड़के हैं। वह ३० साल का युवक होगा और हम साठ साल के सफेद लम्बी दाढ़ीवाले! तो वह यह रिश्ता कैसे कबूल करेगा? कहेगा कि 'आप मेरे बाप और मैं ही आपका लड़का हूँ, इसलिए मैं ही आपकी इस्टेट का अधिकारी हूँ। फिर आप मेरी इस्टेट कैसे माँगते हैं?' मैं कहूँगा कि 'आपकी इस्टेट मुझे ही मिलनी चाहिए।' सारांश, अगर उससे हमें इस्टेट माँगनी है, तो प्रेम से समझा कर ही काम लेना होगा। अगर वह मान जाय, तो इस्टेट का हक दे देगा, नहीं तो दान देगा ही। हक नहीं, तो दान ही सही।

फिर अगर वह दान भी न देना चाहे, तो बाबा कहेगा कि इस ब्राह्मण की इज्जत रखोगे या नहीं? हमें तो किसी-न-किसी तरह उससे जाकर चिपकना है। हम पूछेंगे कि 'जमीन न सही, पर क्या पढ़ने के लिए पुस्तक भी न लेंगे?' वह तुरत कहेगा: 'हाँ-हाँ, जरूर लेंगे। बस, हमारा काम हो गया! उसके घर में

हमारी पुस्तक पहुँच गयी, तो उसका नाम 'काली सूची' (ब्लैक लिस्ट) में चढ़ गया कि फलाने को 'गीता-प्रवचन' दिया है।

पन्द्रह दिनों बाद पुनः मिलने पर हम उससे पूछेंगे, कि 'क्यों भाई, 'गीता-प्रवचन' पढ़ा या नहीं ? वह कहेगा : 'पढ़ना तो है, लेकिन फ़ुर्सत नहीं मिलती ।' मैं कहूँगा, 'ठीक ! पर आपके घर आया हूँ, तो भोजन दीजियेगा न ? अगर जमीन माँगनेवाला भोजन से मान जाय याने भोजन से जमीन देना टल जाय, तो उसे कौन नहीं देगा ? फिर भोजन करने के लिए साथ-साथ बैठने पर मैं चर्चा शुरू कर दूँगा कि 'गीता-प्रवचन क्या है ? भूदान क्या है ?' आदि-आदि । तब वह कहेगा कि 'अब मैं समझा । अगर ऐसा है, तो मैं 'गीता-प्रवचन' अवश्य पढ़ूँगा ।' बस, हमारा काम हो गया ।

सारांश, किसी के भूदान देने पर ही हमारा काम होता है, ऐसी बात नहीं । हमें उनसे बहुत बातें करवानी हैं—साहित्य पढ़वाना, खद्दर पहनवाना, सूत कतवाना, हमारे ढंग का पाखाना बनवाना आदि सभी बातें करवानी हैं और सभी प्रेम से करवानी है ।

गुड़ खिलानेवाला महात्मा

पुराने ऋषि लोगों को कड़ुवा खिलाते थे । कहते थे कि नीम की पत्ती खाओ । लेकिन गांधीजी ने तो गुड़ खिलाने की सलाह दी । बीच में उन्होंने भी नीम की पत्ती खिलाना शुरू किया था । उसके लिए दस-बारह चेले भी मिल गये, लेकिन ज्यादा नहीं मिले । तब उन्होंने समझ लिया कि नीम की पत्ती खिलाने का कार्यक्रम लोकप्रिय नहीं हो सकता, गुड़ खिलाने का कार्यक्रम ही लोकप्रिय होगा ।

हमारा एक प्रोग्राम गुड़ खिलाने का भी है । हमें लोगों से कहना चाहिए कि शक्कर क्यों खाते हो ? गुड़ क्यों नहीं खाते ? वे कहेंगे कि 'शक्कर सफेद दीखती है !' तो आप कहिये : वह सफेद दीखती है, इसीलिये वह सफेद लोगों की तरह है । तुमने 'गोरों' को यहाँ से भगा दिया, तो गोरी शक्कर को क्यों बनाये रखते हो ? गुड़ का रंग अपने देश का है और शक्कर का रंग गोरों के

देश का। यह दीखने में तो सफेद है, लेकिन उसके अन्दर 'विटामिन' नहीं है। फिर आपको विटामिन पर एक व्याख्यान भी झाड़ देना चाहिए। अवश्य ही आजकल गुड़ स्वच्छ, शुद्ध और निर्मल नहीं मिलता। 'पर महात्माजी ने ऐसे गुड़ का प्रचार करने के लिए नहीं कहा था। उन्होंने तो शुद्ध, स्वच्छ, निर्मल गुड़ के प्रचार के लिए कहा था, जिसे लेकर लोग कहें कि 'अरे, गुड़ भी ऐसा होता है!' इस तरह भूदान नहीं, तो गुड़ का ही प्रचार हो जाता है।

देखो हम तो हैं मच्छीमार! गांधीजी ने हमें मच्छीमार विद्या सिखायी है। उन्होंने हमारे हाथ में अनेक प्रकार के जाल दिये हैं। कोई मछली एक जाल में न आयेगी, तो दूसरे में आयेगी। अगर वह भूदान के जाल में नहीं आती, तो खादी के जाल में आयेगी। अगर उसमें भी नहीं आती, तो आखिर गुड़ के जाल में तो वह आयेगी न? इसीलिए इस दुनिया में हम बिलकुल अपराजित हैं। हमारी कभी पराजय हो नहीं सकती। जहाँ भी हम जायँ, हमारी जीत ही जीत है। क्योंकि हमारे पास यह गुड़ है, जिसे महात्माजी ने अहिंसा नाम दे दिया है। हम लोगों को अहिंसारूपी गुड़ खिलायेंगे, तो हमारा बहुत काम होगा। इसलिए आप भूदान काम के लिए जायँगे, तो एकांगी बनकर न जायेंगे, इन सब अङ्गों को लेकर ही जायँ।

यह अष्टभुजा देवी है। उसके एक हाथ में एक शस्त्र है, तो दूसरे हाथ में दूसरा शस्त्र। हमारे देवता भी कैसे रहते हैं? उनके एक हाथ में गदा रहती है, तो दूसरे हाथ में फूल है। सब हाथ में गदा ही गदा रहे, तो फिर कोई भी भक्त नजदीक नहीं आयेगा। इसीलिए दूसरे हाथ में हमारा देवता कमल भी रखता है। इस तरह यह अपना भूदान हमारी गदा है और गुड़ हमारा फूल है। शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी हम विष्णु भगवान् हैं। इसलिए लक्ष्मी तो हमारे न चाहने पर भी हमारे पास आयेगी। उसमें कोई शक नहीं है कि जमीन लोगों के हाथ से छूट रही है। इसलिए हम प्रेम से लोगों के पास जायँगे, तो बिलकुल आसानी से वह हमारे पास आ जायगी।

परीक्षक जनता

दूसरी बात हमें आपसे यह कहनी थी कि हिन्दुस्तान के लोग बड़े परीक्षक हैं। बैल बराबर पहचान लेता है कि गाड़ी चलानेवाला ठीक है या नहीं। उसे तुरत पता चल जाता है कि गाड़ी चलानेवाला शिक्षित है या अशिक्षित। हम कहते हैं कि सारी जनता मूर्ख है, लेकिन वह बहुत अक्ल रखती है। वह हम लोगों की बराबर परीक्षा करती है। हिन्दुस्तान के गरीब लोगों की सेवा संतों ने की है, इसलिए जब उसे मालूम होता है कि हम सेवक हैं, तब वह हमें संत की कसौटी पर कसती है, लोगों का जीवन-स्तर गिरा है, लेकिन चिंतन का स्तर ऊँचा ही है। इसलिए वे कार्यकर्ता और सेवक की छोटी-छोटी बात भी देखते हैं। इसलिए हमारा व्यक्तिगत आचरण जितना ही निर्मल और स्वच्छ रहेगा, उतना ही हमारा कार्य जल्दी होगा।

गांधी नगर
१८-१०-'५६

हाइड्रोजन बम और चाकू : ६२ :

हमसे पूछा गया कि 'आप राज्य पर यकीन नहीं रखते हैं और कहते हैं कि फौज, पुलिस वगैरह की जरूरत नहीं है। उस हालत में अगर देश पर बाहरी हमला होगा, तो देश का बचाव कैसे किया जायगा?' हम कहते हैं कि दूसरा देश हमपर हमला करेगा ही क्यों? अगर हमारे देश में जमीन बहुत ज्यादा है और दूसरे देश के पास कम, इसलिए वह हमला करेगा, तो हम उसे प्रेम से जमीन दे देंगे। आस्ट्रेलिया में जमीन बहुत ज्यादा है, और वे दूसरों को वहाँ आने नहीं देते, इसलिए उनपर हमला हो सकता है। लेकिन हिंदुस्तान पर हमला नहीं हो सकता है, क्योंकि हमारे पास जमीन कम ही है।

बात यह है कि हिंदुस्तान पर अमेरिका या रूस कभी हमला न करेगा। अगर हमला होगा, तो पाकिस्तान से होगा। याने भाई-भाई के झगड़े का सवाल

है। दुनिया में जितने झगड़े होते हैं, सब भाई-भाई के ही झगड़े हैं, दुश्मनों के नहीं। भाइयों में ही एक दूसरे पर दावा किया जाता है, जो मित्रों पर नहीं किया जाता। किसी मित्र ने एक-आध बार कुछ एहसान किया, तो आप उसे जिंदगी भर याद रखते हैं। किंतु भाई हमेशा आपका काम करता हो और कभी एक-आध बार वह आपकी बात न माने, तो आप उतना ही याद रखते हैं। इसलिए ये सारे झगड़े भाईचारे से मिटेंगे, फौज से नहीं। अगर हम फौज बढ़ायेंगे, तो पाकिस्तान भी बढ़ायेगा और फिर विश्वयुद्ध का भी खतरा खड़ा हो जायगा। लेकिन आज अगर हिंदुस्तान हिम्मत करके अपनी सेना विघटित कर दे, तो हिंदुस्तान की ताकत बहुत बढ़ जायगी। फिर पाकिस्तान भी फौज पर नाहक खर्च न करेगा।

लेकिन इसके लिए हिम्मत चाहिए, यह डरपोक का काम नहीं है। हम डरपोक हैं, डरपोक को कल्पना-शक्ति नहीं होती। सोचने की बात है कि हमपर हमला किसका होगा। उधर तो एटम और हाइड्रोजन बम बन रहे हैं, जो हमारे पास नहीं है। फिर भी हम कहते हैं कि हमारे पास एक चाकू तो होना ही चाहिए। मैं मानता हूँ कि अगर हिंदुस्तान अपनी फौज को विघटित कर देगा, तो वह दुनिया में सबसे शक्तिशाली राष्ट्र बन जायगा, इससे इसकी नैतिक प्रतिष्ठा बहुत बढ़ जायगी। वह पाकिस्तान की जनता का दिल जीत लेगा और 'यूनो' में भी उसका वजन बहुत बढ़ जायगा।

तिरुपुर (कोयम्बतूर)
१८-१०-'५६

साढ़े पाँच साल से भूदान-यात्रा चल रही है। लाखों लोगों ने दान दिया है। यह दान कोई नयी चीज नहीं, पुराने जमाने से ही लोग कुछ-न-कुछ दान करते आये हैं। दानी लोगों की प्रशंसा भी की जाती है, उनपर काव्य भी लिखे जाते हैं, उनके भजन भी गाये जाते हैं। जिस तरह दान की परंपरा चली आ रही है, उसी तरह तप की भी। कोई तपस्वी अपनी चित्तशुद्धि के लिए तप करता है, दूसरे लोग उसकी सेवा करते हैं, उसकी प्रशंसा करते हैं, उसकी तपश्चर्या के कारण उसके प्रति आदर और पूज्य बुद्धि रखते हैं और समझते हैं कि उसके आशीर्वाद से हमारा भला होगा। यहाँ ऐसे भी ज्ञानी हो गये, जो ऊँचे पहाड़ों के जैसे ज्ञान के पहाड़ थे। कुछ ऐसे भी ज्ञानी हो गये, जिनके ज्ञान का लोगों को कोई अन्दाजा नहीं लगा। लोगों ने इतना ही समझा कि ये ज्ञान के समुद्र हैं, इनसे हमें कुछ ज्ञान मिले, तो अच्छा है। किंतु हममें ज्ञान प्राप्त करने की योग्यता नहीं है, इसलिए उनका आशीर्वाद मिले, उनकी कृपादृष्टि, उनका दर्शन हो, तो बस है।

सामूहिक दान

इस तरह अपने देश में एक प्रकार की साधना चली। भूदान-यज्ञ का काम उससे भिन्न प्रकार का है। इसमें भी दान है और उसमें भी। इसमें भी कार्यकर्ताओं को खूब घूमना पड़ता है, तपस्या करनी पड़ती है। इसके लिए भी अध्ययन करना पड़ता है, ज्ञान की जरूरत होती है। किंतु इसमें जो किया जाता है, वह समाज के लिए किया जाता है। सारा समाज मिलकर करे, ऐसी इच्छा रहती है। इसमें यह बात नहीं कि कोई एक-आध मनुष्य दान दे, बल्कि यह है कि सबके सब दान दें, बिना दान किये कोई न रहे। हमसे बार-बार पूछा जाता है कि क्या गरीब भी दान दें, तो हम कहते हैं कि क्यों न दें? भगवान् ने उन्हें दो हाथ दिये हैं, इसलिए उन्हें लेना भी है और देना भी। अगर देना नहीं होता, तो भगवान् उन्हें एक ही हाथ देता। गरीबों के पास भी देने

की चीज है। वे पैसे से श्रीमान् नहीं, पर श्रम से श्रीमान् हैं। वे अपने श्रम का एक हिस्सा दे सकते हैं। हर एक को देना है, एक भी शख्स दिये बिना रहेगा, तो इस यज्ञ की पूर्ति न होगी। किसी गाँव के १०० मनुष्यों में से ९९ लोगों ने दान दिया, किसी ने भूदान, किसी ने संपत्ति-दान, किसी ने श्रम-दान दिया, तो यह माना जायगा कि अच्छा काम हुआ, पर उससे यज्ञ पूरा नहीं होगा। जब वह बचा हुआ आखिरी मनुष्य १०० वाँ दान देगा, तब यज्ञ पूरा होगा। व्यक्तिगत दान की कल्पना भिन्न है और यह सामूहिक दान की, सबलोगों के दान की कल्पना भिन्न है। इसमें विचार ही भिन्न है।

सामूहिक त्याग और भोग

पहले कुछ लोग पैसा कमाते थे, तो व्यक्तिगत कमाते थे। आज भी वह चल रहा है। लेकिन अब जमाना आया है कि सब मिलकर संपत्ति पैदा करें। पहले अपना अकेला भोग चलता था, अब सबका मिलकर भोग करना है। सब मिलकर जीवन की सब साधना करनी है। भूदान के पीछे यही विचार है। उसके परिणामस्वरूप जो भोग मिलेगा, वह सबको मिलेगा और उसके लिए सबको त्याग करना पड़ेगा। सार्वजनिक त्याग में और सार्वजनिक भोग में एक विशेष आनंद आता है। इसमें किसीके मन में अभिमान नहीं रहता कि मैं त्यागी हूँ। मैं चौबीस घंटे श्वासोच्छ्वास लेता हूँ और सभी लोग लिया करते हैं, तो उसका किसीको अभिमान नहीं होता। पुण्य-कार्य में सबसे बड़ा खतरा यह है कि उस पुण्य का अहंकार सिर पर बैठता है। त्याग का बोझ सिर पर बैठा, तो फिर कितनी भी हजामत करो तो भी वह हटता नहीं। जो लोग इस तरह हजामत करने का प्रयोग करते हैं, उन्हें संन्यासी कहा जाता है। सन्यास का भी अहंकार होता है। अहंकार की हजामत की, तो हजामत का भी अहंकार हो जाता है। इसलिए सबसे बड़ी बात है अहंकार से मुक्ति। अगर हम त्याग नहीं करते हैं, पुण्य नहीं करते, तो हम नीच हैं, हम संसार में फँसे हैं, ऐसी भावना मन में आती है। 'मैं नीच हूँ', यह कहना भी अभिमान का एक प्रकार है, और 'मैं ऊँचा

हूँ', यह कहना भी अभिमान का दूसरा प्रकार है। इन दोनों में से मुक्त होने का एक ही उपाय है कि जो साधना करनी है, सब मिलकर करनी चाहिए।

सामूहिक तपस्या की प्राचीन मिसालें

१०-१५ दिनों के उपवास करनेवाले कई तपस्वी होते हैं। हम पुराने ग्रंथों में पढ़ते हैं कि फलाने ऋषि ने तीन साल फाका किया। हम सोचते रहे यह कैसे संभव है, वह ऋषि जरूर कुछ दूध वगैरा पीता होगा। इन दिनों दूध पीनेवाले और केले खानेवाले उपवास चलते हैं। उपवास के दिन खाने की कुछ खास चीजें होती हैं। अगर वैसा ही वह ऋषि करता होगा तो फिर तीन ही नहीं बल्कि तीस साल फाका कर सकता है। परन्तु ग्रंथों में लिखा है कि *ऋषि ने तीन साल तक बिना पानी का उपवास किया।* इसपर सोचते हुए हमारे मन में कल्पना आयी कि उस समय किसी प्रकार की साधना के लिए सब लोग मिलकर फाका करते होंगे और वह किसी मनुष्य के मार्गदर्शन में करते होंगे। मान लीजिये कि ५२ व्यक्तियों ने वसिष्ठ ऋषि के मार्गदर्शन में एक हफ्ते तक बिना पानी पिये फाका किया तो यह कहा जाता होगा कि वसिष्ठ ऋषि ने एक साल फाका किया। याने कुल की कुल तपस्या वसिष्ठ ऋषि के नाम पर लिखी गयी। हम यह भी पढ़ते हैं कि फलाने ऋषि ने तीस साल तपस्या की। इसका मतलब यह है कि कोई ऋषिसंघ होगा, और सब मिलकर तपस्या करते होंगे, जो एक व्यक्ति के नाम पर लिखी जाती होगी।

आज भी यह होता है। कहा जाता है कि बाबा ने ४० लाख एकड़ जमीन हासिल की। लेकिन बाबा ५०० साल काम करेगा, तो भी यह संभव न होगा कि वह ४० लाख एकड़ हासिल करे। लेकिन हजारों लोगों ने जमीन हासिल की और वह सारा बाबा के नाम पर लिखा जाता है। इस तरह जहाँ सामूहिक साधना होती है, वहाँ एक विशेष शक्ति प्रकट होती है और उस तपस्या का अहंकार नहीं होता।

मोक्ष व्यक्तिगत नहीं हो सकता

मनुष्य-जीवन में भोग या मोक्ष जो कुछ हासिल करता है, सब मिलकर

हासिल करना है, यह कल्पना दृढ़ होनी चाहिए। कवि ने कहा है—'कलंदु निन् अडियारोडु' अर्थात् हम तुम्हारे भक्तों के साथ मिश्रित होकर रहना चाहते हैं। भक्त-जनों की साधना का यही रहस्य है। समाज का कोई व्यापक प्रश्न हल करने के लिए सामूहिक तपस्या या सामूहिक दान की कल्पना पहले के जमाने के लोग कम करते थे। कुछ थोड़ी मिसालें मिलती हैं, जो मैंने अभी पेश कीं। लेकिन हम कहना चाहते हैं कि अब जमाना आया है कि भोग और मोक्ष, हम सब मिलकर प्राप्त करें। सब मिलकर भोग प्राप्त करने की कुछ कल्पना आ सकती है परंतु सब मिलकर मोक्ष प्राप्त करने की कल्पना बिलकुल ही नयी है।

लोग कहते हैं कि मोक्ष तो व्यक्तिगत ही होता है। पर यह बिलकुल गलत विचार है। जो व्यक्तिगत हो सकता है, वह मोक्ष ही नहीं। मोक्ष का मतलब है, अहंकार से छुटकारा। 'मेरा मोक्ष' ऐसी भाषा जहाँ आती है, वहाँ मोक्ष खतम ही होता है। मोक्ष का अर्थ ही है, व्यक्तित्व से छुटकारा पाना, सामूहिक, समाजमय बनना। भोग कभी व्यक्तिगत हो भी सकता है। कोई शख्स कहीं कोने में जाकर मुँह छिपाकर आम खा सकता है। किंतु व्यक्तिगत मोक्ष की कल्पना हो ही नहीं सकती। जिस किसी ने ऐसी कल्पना की हो, उसने मोक्ष का अर्थ समझा ही नहीं। उसने दूसरी ही किसी चीज को मोक्ष मान लिया।

हमारे लिए काम

हम समझते हैं कि समाज को आजतक मोक्ष हासिल नहीं हुआ है। उसकी साधना हो रही है, धीरे-धीरे हम ऊपर चढ़ रहे हैं। आज के ऋषि पुराने जमाने के ऋषियों से ऊँचे हैं। पुराने जमाने की अपेक्षा आज के जमाने में जैसे भौतिक ज्ञान ज्यादा है, वैसे आजके आध्यात्मिक ज्ञान का स्तर भी ऊँचा है। यह मैं इसीलिए कह रहा हूँ कि आपके मन में यह शंका न हो कि दान से जमीन के ऐसा बड़ा मसला पहले कभी हल नहीं हुआ तो अब कैसे हो सकता है। मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि पुराने जमाने में जो चीजें नहीं बनीं, वही करने के लिए आपका और हमारा जन्म है। आज के जमाने में हमें और आपको एक नया काम करने का अवसर मिल रहा है, यह आपका और हमारा परम भाग्य

है। हम आशा करते हैं कि गाँव-गाँव के लोग इस बात को समझेंगे, गाँव-गाँव के लोगों को कार्यकर्ता यह बात समझायेंगे और इस यज्ञ में हिस्सा न लेनेवाला एक भी शख्स भारतभूमि में न रहेगा।

वेल्लपालेयम (कोयम्बतूर)
२०-१०-'५६

राजा मिटे नहीं

: ६४ :

हिंदुस्तान को राजा का अनुभव हजारों वर्षों से है। उस पर से वे इस निर्णय पर पहुँचे कि यहाँ राजा लोग प्रजा के कल्याण के लिए नाकाफी हैं। राजा अकेला तो राज्य नहीं करता था। कुछ मंत्री बना लेता और उनकी सलाह से राज्य चलाता था। अब लोगों ने राज्य-संस्था मिटा दी। अब प्रजा पाँच-पाँच साल के लिए राज्यकर्ता चुनती है। अगले साल लोग आपको पूछने आयेंगे कि राजा किसे बनाया जाय? लोगों की मर्जी के मुताबिक राजा चुना जायगा, जिसे आज मुख्यमंत्री कहते हैं। वह पाँच साल के लिए राज्य चलायेगा और अपने मंत्री खुद तय कर लेगा। उसमें किसी को पूछेगा नहीं।

आज सरकार के हाथ राजा से भी अधिक सत्ता

आज के मुख्यमंत्री और राजाओं में खास फर्क नहीं है। पहला फर्क तो यह कि पहले का राजा मृत्यु तक राज्य चलाता था, अब मुख्यमंत्री पाँच साल तक राज्य चलायेंगे। पाँच साल के बाद आप अगर उन्हें फिर से चुनेंगे, तो फिर से पाँच साल तक वे राज्य चलायेंगे। दूसरा फर्क यह है कि पहले राजा का बेटा गद्दी पर बैठता था, पर अब राज्यकर्ता का बेटा उसी तरह राज्य नहीं चला सकता। बस, इतना ही फर्क है, और ढाँचे में कोई बदल नहीं हुआ। पाँच साल तक वह पूरी हुकूमत चला सकता है। वह जो करेगा सो बनेगा।

इस जमाने के पाँच साल पुराने जमाने के ५० साल के बराबर हैं। पुराने जमाने में राजा हुक्म देता था, तो उसे देश में पहुँचते-पहुँचते ही दो-चार साल

बीत जाते। औरंगजेब बादशाह का आसाम के गवर्नर को हुक्म हुआ, तो देहली से वहाँ पहुँचते-पहुँचते ही दो-तीन महीने बीत जाते। फिर वह अपने सरदार को सभी गाँवों में वह आज्ञा प्रचारित करने का हुक्म देता। इस तरह गाँव-गाँव बादशाह का हुक्म पहुँचने में चार-पाँच महीने और लग जाते थे। इस बीच परिस्थिति बदल जाती, तो राजा द्वारा दूसरा हुक्म भेजा जाता। पहले हुक्म का अमल नहीं हुआ था कि उतने में दूसरा भी हुक्म हो जाता। उसे भी गाँव-गाँव पहुँचने में एक साल लग जाता। इसलिए वे केवल नाममात्र के राजा रहते थे। वे प्रजा के जीवन का बहुत ज्यादा नियमन न कर पाते थे। लोगों को अच्छी तरह आजादी थी। आज हालत दूसरी है। आज देहली से हुक्म निकला, तो उसी दिन सारे हिंदुस्तान में पहुँच जाता है। रेडियो वगैरह ऐसे साधन हैं कि जो हुक्म दिया जायगा, उसके अमल के लिए दो घंटे में हिंदुस्तान में तैयारी हो जायगी। यही हालत दूसरे देशों की है। इसलिए जिसे राजा बनाते हैं, फिर वह पाँच साल के लिए भी क्यों न हो, वह पाँच साल में इतना काम कर सकता है जितना पहले के राजा ५० साल में भी नहीं कर सकते थे। आज के पाँच वर्ष याने पुराने राजाओं को मरने के लिए जितना समय लगता था वह कुल समझ लो। २० साल में पुराना बादशाह जितने हुक्म चला सकता होगा, उतने हुक्म आज आपका मुख्य मंत्री भी चलाता होगा। इसलिए वे अगर प्रजा का भला करना चाहें, तो भला कर सकते हैं और बुरा करना चाहें, तो बुरा भी कर सकते हैं। प्रजा के हाथ में कुछ न रहेगा।

आप इस भ्रम में मत रहिये कि पाँच साल के बाद राज्य हमारे ही हाथ में है। पाँच साल में तो इधर का उधर हो जायगा। आज प्रजा को पूछने का सिर्फ नाटक होता है। उसके परिणामस्वरूप राज्य चलानेवाले कहते हैं कि हम जो कुछ करते हैं, वह प्रजा की सम्मति से ही करते हैं। पुराने राजा यह नहीं कह सकते थे कि हम जो करते हैं वह प्रजा की सम्मति से करते हैं। आजकल तो बम्बई, कलकत्ता, पटना और कई जगह सरकार की ओर से गोली चलायी जाय, तो वे कहेंगी कि लोगों की सम्मति से हम गोली चलाते हैं।

लोगों ने हमें राज्य चलाने की आज्ञा दी है। इसलिए हमें ऐसा करना पड़ता है। पुराने राजाओं के सरदार यह नहीं कह सकते थे कि हमने गोली चलायी, तो लोगों की सम्मति से चलायी। इसलिए वे जो पुण्य-पाप करते थे, वह राजा का पुण्य-पाप होता था और उसका बोझ उसीको उठाना पड़ता था। लेकिन आज के राजा, जो पुण्य-पाप करेंगे, उसकी जिम्मेवारी आपपर है और पुराने जमाने के राजा से शतगुणित सत्ता अभी आपके मुख्यमंत्री के पास है। इसलिए गाँव-गाँव के लोगों को जाग जाना चाहिए। अपना भला बुरा करने की सत्ता किसी को नहीं देनी चाहिए। पाँच साल के लिए नहीं और पाँच दिन के लिए भी नहीं।

ग्राम-राज्य से गाँव आजाद होंगे

आप अपने गाँव का एक राज्य बनायें। कौन-सा माल बाहर से लाया जायगा, यह सब मिलकर तय करें। गाँव में इतनी शक्ति आनी चाहिए कि इसके अलावा कोई भी चीज कोई व्यक्ति न खरीदेगा और बेचनेवाला वैसे ही वापस चला जायगा। गाँव एक स्टेट (राज्य) है। आजकल प्रान्त-रचना के सिलसिले में चर्चा चलती है कि कौन-सा तालुका किस राज्य में डाला जाय। राज्य चलानेवाले इधर से उधर डालते हैं और उधर से इधर। आपसे कोई पूछने नहीं आता। पाँच साल के बाद दूसरा शासक आता है, तो वह भी उधर का इधर और इधर का उधर कर देता है। कोई अगर आपसे पूछेगा कि आप कहाँ रहते हैं, तो जवाब होगा कि मैं गाँव में रहता हूँ और वह गाँव दुनिया में है। आप हमारी गिनती तमिल, मैसूर आदि चाहे जिसमें करें, हम तो अपनी गिनती गाँव में करते हैं और वह जगह कहीं है, तो दुनिया में है। हमारा राज्य परमेश्वर है और गाँव वाले मिलजुल कर राज्य-कारोबार चलाते हैं। आज तो आप के गाँव की योजना देहली में, और बहुत हुआ तो मद्रास में होती है। पर जबतक अपने गाँव की योजना आप न बनायेंगे, तबतक गुलामी न मिटेगी।

इसलिए सबसे बड़ी बात यह है कि आप अपना कारोबार चलायें। गाँव

के जितने २१ साल से बड़े भाई-बहन हैं, उनकी एक समिति (ग्राम-समिति) बनायी जाय और फिर उसमें से कार्य करने के लिए सर्वानुमति से एक समिति (कार्य-समिति) बने। वे लोग गाँव की सेवा करेंगे। वे गाँव के लिए जो फैसला देंगे, वह गाँव में ही होगा। शादी का खर्चा सारा गाँव उठा लेगा, इसलिए कर्ज का सवाल ही न आयेगा। गाँव की समिति की ओर से गाँव में एक दूकान चलेगी, जिसमें गाँववाले जो तय करेंगे, वे ही चीजें रखी जायँगी। झगड़े का निपटारा गाँव में ही होगा। उस पर अपील न की जा सकेगी। ऐसा करोगे तभी गाँव को सच्ची आजादी मिलेगी।

फिर अगर देहलीवाले कहें कि बाहर से आक्रमण होने पर रक्षा के लिए सेना चाहिए, देश में रेल चाहिए, इन सब के इन्तजाम के लिए थोड़ा टैक्स दीजिए, तो वह देना होगा। किन्तु उसमें भी आप कह सकेंगे कि हमारे गाँव का कारोबार हम सँभालते हैं, तो हमारे टैक्स का उपभोग हमारे गाँवही क्यों न किया जाय ? इस पर सरकार कहेगी कि रुपये में से १५ आना आप रखिये और एक आना हमें दीजिये। इस तरह गाँव की सत्ता आपके हाथ में आयेगी, तभी देश बचेगा। यही सर्वोदय का प्रयत्न है। भूदान इसीलिए है। थोड़ी 'जमीन लेकर बाँटना उसका उद्देश्य नहीं है। व्यक्तिगत मालकियत को खत्म करना ही उसका उद्देश्य है।

व्यक्तिगत मालकियत मिटने से व्यक्तिगत रोना भी दूर

लोग पूछते हैं कि व्यक्तिगत मालकियत न रहेगी तो काम कैसे चलेगा ? पर यह भ्रम है। व्यक्तिगत मालकियत मिटेगी तो व्यक्तिगत रोना भी मिट जायगा। सब मिल कर काम करेंगे, तो रोयेंगे क्यों ? आज तो हरएक किसान के पीछे एक-एक साहूकार लगा है, किसान रोता रहता है और बाकी लोग सुनते रहते हैं। व्यक्तिगत मालकियत रखी है, इसीलिए व्यक्तिगत रोना पड़ता है। व्यक्तिगत मालकियत मिटने पर अगर रोयेगा तो सारा गाँव रोयेगा। सारा का सारा गाँव रोये, ऐसा मौका आये, यह आसान बात नहीं है। सब मिलकर काम करते हैं तो हँसने का ही मौका आता है, इस दृष्टि से आप भूदान की ओर देखिये।

ग्रामदान क्यों ?

यदि आप इसे ठीक तरह समझ लेंगे और उसके अनुसार बरतेंगे तो सुखी होंगे। नहीं तो पाँच-पाँच साल में राजा बदलते जायेंगे और आप उन्हें चुनते चले जायेंगे। यह समझ लो कि राजा अभी मरा नहीं, बल्कि जोरदार बना है, उसका नाम बदल गया है। जबतक हम अपने गाँव में गाँव का राज्य न चलायेंगे, तबतक ये राजा चलते रहेंगे। ग्रामदान में आप कुछ खोयेंगे नहीं। ५–१० या ५० एकड़ जमीन का मालिक २ हजार एकड़ जमीन का, याने सारे गाँव की जमीन का मालिक हो जायगा। उसमें कोई कुछ खोयेगा नहीं, बहुत कुछ पायेंगे। एक छोटा-सा परिवार था, तब जो आता, वही उसे पीसता। अब अगर वह परिवार बड़ा हो जाय, तो उसे कोई पीस न सकेगा। यह ग्रामदान का अर्थ है। इसीलिए बाबा ग्रामदान माँगता है।

कनकम् पालेयम
२१-१०-'५६.

बुनकरों से ! : ६५ :

बुनकरों का धन्धा सिखाने या उसे बढ़ाने के लिए आजतक किसी की एक कौड़ी खर्च नहीं हुई है। वेद में एक मन्त्र है। ऋषि भगवान् को अपना स्तोत्र अर्पण कर रहा है : "वस्त्रेव भद्रा सुकृता सुपाणि।" याने जैसे किसी बुनकर ने उत्तम वस्त्र बनाया हो, वैसे ही मैंने यह स्तोत्र बनाया है और वह तुम्हें समर्पित करता हूँ। यह दस हजार साल पहले का वचन है। इससे स्पष्ट है कि दस हजार साल से हमारे देश में बुनकर का धन्धा चलता आया है। बाप ने बेटे को वह कला मुफ्त में सिखायी है। इसे सिखाने के लिए न शिक्षक रखना पड़ा, न शाला खोलनी पड़ी और न सरकार को या और किसी को यह कला सिखाने के लिए कौड़ी खर्च करनी पड़ी। किन्तु आज उसी कला को मारने के लिए सरकार की तरफ से खर्च किया जाता है, तो यह कितनी विचित्र बात है!

क्योंकि एक बार चरखे को पॉवरलूम लगेगा, तो हाथ की कला खतम हो जायगी। हजारों साल से जो कला विकसित होती चली आयी है, वह एक क्षण में नष्ट हो सकती है। इसलिए आप लोगों ने पॉवरलूम का जो निषेध किया, उसके साथ हमारी सहानुभूति है। ऐसी सभा गाँव-गाँव में होनी चाहिए और बुनकरों की आवाज उठनी चाहिए कि हम पॉवरलूम नहीं चाहते।

याद रखिए कि अगर अभी राजा का राज्य होता, तो आप बोल सकते थे कि 'राजा का जुल्म हुआ।' लेकिन यह प्रजा का राज्य है, इस राज्य में आप चुप बैठेंगे, तो यही माना जायगा कि सब कुछ आपकी सम्मति से हो रहा है। इसलिए इसके विरुद्ध आवाज उठाना आपका कर्तव्य हो जाता है। मन में निषेध रखेंगे तो काम न चलेगा। हजारों सभाओं के जरिये अपनी आवाज उठानी होगी और जिनके कान यहाँ नहीं आ पाते, उतने कानों तक वह पहुँचनी चाहिए। इतने जोरों से आवाज उठनी चाहिए कि बहरों के कानों को भी वह सुनाई दे। अगर आप यह करते हैं, तो सरकार के खिलाफ कुछ भी नहीं करते। बल्कि अच्छा राज्य चलाने में सरकार को मदद ही देते हैं। क्योंकि अगर आप आवाज नहीं उठायेंगे तो सरकार समझेगी कि लोगों को यह बात पसंद है और लोगों की पसंदगी से राज्य चल रहा है। इसलिए यह निषेध बहुत जरूरी है और प्रजा के नाते आपका यह कर्तव्य है।

लेकिन इस निषेध के साथ अपना कुछ संघटन भी होना चाहिए। केवल बुनकरों का संगठन काफी नहीं। बुनकर, किसान और दूसरे-तीसरे धंधे करनेवालों का एक संघ चाहिए। तीन रस्सी इकट्ठी कर बटने पर ही वह मजबूत होती है। बुनकर एक धागा है, किसान भी एक धागा है और इन दोनों के अलावा दूसरे कार्य करनेवाले भी एक-एक धागा हैं। इन सब को बटने से मजबूत रस्सी बनेगी और उसे कोई तोड़ नहीं सकता। इसलिए आपने गाँव के साथ एकरूप होने का जो निश्चय किया, उससे हमें बड़ी खुशी हुई। दुनिया में केवल निषेध काम नहीं देता। निषेध के साथ कुछ काम भी रहना चाहिए।

उसके साथ कुछ संकल्प रहता है, तभी ताकत आती है। लेकिन यह भी समझ लीजिए कि सिर्फ प्रस्ताव में भी ताकत नहीं है। उसका अमल करेंगे, तभी ताकत पैदा होगी।

गुरट्टपालेयम्
२२-१०-'५१.

निष्काम-सेवा : ६६ :

आप के गाँव के नाम से आचार्य नरेन्द्रदेवजी का स्मरण हो आता है। वे भारत के एक बहुत बड़े सेवक थे और आखिर की बीमारी में यहाँ आकर रहे थे। सत्पुरुषों का मरण-स्थान भी महत्त्व का माना जाता है, क्योंकि उनकी आखिर की शुभवासना उस स्थान के साथ जुड़ी रहती है। हम उम्मीद करते हैं *कि यहाँ के भाई-बहनों को उनके स्थान से निष्काम-सेवा की प्रेरणा मिलेगी।* वैसे हर मनुष्य कुछ-न-कुछ सेवा करता ही है, उसके बिना जीना संभव ही नहीं। किंतु हम सेवा करते हैं, तो उसके साथ कुछ फल की अपेक्षा भी रखते हैं। अपने लिए कुछ अपेक्षा रखकर जो सेवा की जाती है, उसकी कीमत कुछ कम हो जाती है। पर जहाँ केवल प्रेम से सेवा की जाती है और उससे मिलनेवाले मानसिक आनन्द के अलावा कुछ भी इच्छा नहीं रहती, उस सेवा की कीमत ऊँची हो जाती है। ऐसी सेवा करनेवाले ईश्वर-भक्त होते हैं। वे लोगों की सेवा करते और उसीसे हृदय में आनन्द का अनुभव करते हैं, उसीसे उन्हें तृप्ति होती है।

खेल के जैसा सेवा-कार्य

जिस सेवा के साथ कुछ कामना रहती है, उससे पूरा आनन्द नहीं मिलता। हर काम के लिए यही बात लागू होती है। बच्चे खेलते हैं तो उन्हें उसमें आनन्द आता है। उससे व्यायाम भी होता है और देह के लिए लाभ भी। पर वे देह के लाभ की कामना रखकर नहीं खेलते, आनन्द और सहजभाव से खेलते

हैं। इसलिए बच्चों का खेलना निष्काम कर्म हो जाता है। इसी तरह सत्पुरुषों के जितने लोकसेवा के कार्य होते हैं, वे स्वयस्फूर्ति से होते हैं और केवल खेल के जैसे होते हैं। बच्चों से पूछा जाय कि तुम किसलिए खेलते हो, तो उनके मन में यह सवाल ही नहीं पैदा होता है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि वे आनंद के लिए खेलते हैं। देहलाभ के लिए तो खेलते ही नहीं। खेल से देह के लिए लाभ होता और अनन्द भी मिलता है, परन्तु बच्चे स्वभाव से खेलते हैं। इसी तरह सत्पुरुष स्वभाव से ही सेवा करते हैं। उस सेवा से जनता को कई प्रकार के लाभ होते हैं और वे होने भी चाहिए। उन लाभों को ध्यान में रखकर ही सेवा करनी पड़ती है। पर उस सेवा में अपने लिए वे कोई कामना नहीं रखते। इसीलिए वे जो सेवा करते हैं, उसका उनके सिर पर कोई बोझ नहीं होता है।

स्वभाव से सेवा

सवाल पूछा गया था कि ईश्वर सृष्टि की रचना क्यों करता है? जब कि हम खुद ही उस सृष्टि के छोटे-से अंश हैं, तो इसका क्या जवाब दे सकेंगे? लेकिन इसका जवाब दिया गया है: 'लीलामात्रम्।' यानी ईश्वर केवल खेलने के लिए सृष्टि की रचना करता है। नटराज नाच रहा है, क्यों नाचता है? उसमें से सृष्टि का प्रलय भी होता है, सृष्टि का निर्माण भी होता है और सृष्टि का पालन भी। उससे भक्तों पर अनुग्रह भी होता है और उनका मोचन भी। उनके नाट्य से ऐसा पंचविध कार्य होता है। वैसे कितने ही कार्य होते होंगे, पर गिनने के लिए पांच प्रकार के कार्य गिने गये हैं। लेकिन नटराज से पूछा जाय कि 'क्या तुम पंचविध कार्य करते हो?' तो वे इतना ही कहेंगे कि 'मैं तो नाचता हूँ।' उनका यह खेल चल रहा है। उसका उनके सिर पर कोई बोझ ही नहीं है। पंचविध कार्य तो किये बिना वे रह ही नहीं सकते।

अगर आप सूर्यनारायण से कहें कि 'तुम चौबीस घंटे लगातार प्रकाश देते हो, मनुष्यों को और प्राणियों को गर्मी पहुँचाते हो, कितना महान् कार्य करते हो! अन्धकार दूर करना आपका कितना महान् उपकार है!' तो वह कहेगा

कि 'मैं नहीं मानता कि मैं क्या उपकार करता हूँ।' प्रकाशदान सूर्य का स्वभाव है। उसके बिना सूर्य रह ही नहीं सकता। सूर्य का सूर्यत्व ही उसपर निर्भर है। इसीलिए वह जितने काम करता है, उनका उसके सिर पर कोई बोझ नहीं होता। क्या हमें अपने आरोग्य का भार मालूम होता है? भार तो रोग का होता है, आरोग्य का नहीं। क्योंकि आरोग्य प्रकृति है, वह स्वभाव है, इसलिए उसका बोझ नहीं मालूम होता।

परोपकार के लिए ही जीवन

परोपकार करना सत्पुरुषों का स्वभाव है। वे पहचानते ही नहीं कि हम परोपकार कर रहे हैं। वे समझते हैं कि हम अपना काम करते हैं। एक बार एक किसान लोकमान्य तिलक से मिलने आया और उन्हें नमस्कार करते हुए कहने लगा : "आपका हमपर बड़ा उपकार है। आप महापुरुष हैं।' लोकमान्य ने उससे कहा : 'अरे भाई, तू खेती करके पेट भरता है और मैं लेख लिखकर, व्याख्यान देकर। इसलिए तू जो काम करता है, उससे मैं कोई ज्यादा काम नहीं करता। और अगर उपकार की बात करनी है, तो तेरा भी दुनिया पर उपकार होता है, जितना कि मेरा होता है।' कहने का तात्पर्य यह है कि उन्होंने महसूस नहीं किया कि मैं कोई उपकार करता हूँ।

माता बच्चे की कितनी सेवा करती है, वह उस बच्चे के लिए ही जीवन बिताती है, चौबीसों घंटा उसीके लिए काम करती है। अगर कल वह यह कहे कि मैं कितना काम करती हूँ, तो बच्चे भी उससे कहेंगे कि हम आपका बहुत उपकार मानते हैं। लेकिन आज माँ कहती भी नहीं कि मैं बड़ी सेवा का काम कर रही हूँ और बच्चे भी उसका आभार नहीं मानते हैं। माँ बच्चों की सेवा करती है और बच्चे माँ की सेवा करते हैं। कोई किसी का उपकार या आभार नहीं मानता।

लेकिन संस्था का सेक्रेटरी अपने सालभर के काम की लंबी रिपोर्ट पेश करता है और फिर सब लोग इकट्ठा होकर उसका उपकार मानते हैं। इस तरह जहाँ सेवा का नाटक चलता है, वहाँ उपकार का बोझ मालूम होता और आभार माना

जाता है। लेकिन जहाँ स्वभाव से ही उपकार होता है, वहाँ उसका बोझ नहीं मालूम पड़ता।

सत्पुरुषों की सेवा 'बाई-प्रॉडक्ट'

आपकी कावेरी नदी अखंड बहती है, तो कितना उपकार करती है। लोगों पर, प्राणियों पर, पेड़ों पर, किसानों पर, कारखानादारों पर और शहर में बिजली के पहुँचने पर शहरवालों पर वह असंख्य उपकार करती है। किंतु उससे कहो कि तुम कितना उपकार कर रही हो, तो वह यही कहेगी कि 'मैं क्या उपकार कर रही हूँ, मुझे मालूम नहीं। मुझे इतना ही मालूम है कि मैं समुद्र में मिलने जा रही हूँ। दूसरा कोई काम मैं करती हूँ, तो मुझे मालूम नहीं। सिर्फ एक ही काम मालूम है, मेरा जो ध्येय, गतव्य स्थान समुद्र है, उससे मिलने के लिए मैं जा रही हूँ।' वैसे ही भक्त लोग हमेशा परमेश्वर के साथ मिलने के लिए, संगम के लिए, प्रवास करते हैं। ईश्वर के पास जाने के लिए उनकी यात्रा चलती है, लेकिन उससे लोगों पर उपकार हो जाता है, असंख्य मनुष्यों की सेवा होती है। वह सेवा उनका 'बाई-प्रॉडक्ट' है। वे सेवा करते-करते ही अपने जीवन को पूर्ण बनाते हैं और सार्थक करते हैं।

निष्काम और सकाम सेवा की मिसालें

भगवान् सूर्यनारायण का प्रवास सुबह से लेकर शाम तक अखंड चलता रहता है। उनसे लोगों की कितनी सेवा होती है, परन्तु वे नहीं समझते कि मैं कोई सेवा कर रहा हूँ। ऐसी सेवा को निष्काम सेवा कहते हैं। इस प्रकार की निष्काम सेवा करने के लिए ही यह मनुष्य देह है।

महात्मा गांधी ने ४० साल तक स्वराज्य के लिए सतत काम किया। उनके चौबीसों घंटे स्वराज्य के चिंतन में जाते थे। जब स्वराज्य हुआ, तो देहली में और हर बड़े शहर में रोशनी हुई। पर उस समय वे नोआखाली में पैदल घूम रहे थे, दुखियों के आँसू पोंछने के काम में लगे हुए थे। स्वराज्य आने पर उन्होंने कोई भी पद अपने हाथ में नहीं लिया। इसी तरह भगवान् कृष्ण ने कंस का वध किया और सारा राज्य उनके हाथ में आ गया। किंतु कृष्ण खुद राजा नहीं बने। उन्होंने उग्रसेन को राजा बनाया। फिर उनके

हाथ द्वारका का राज्य आया, तो उसे बलराम को दे दिया, खुद नहीं लिया। महाभारत का बड़ा युद्ध हुआ और उसमें श्रीकृष्ण के कारण ही पांडवों की जय हुई। लेकिन भगवान् ने आखिर धर्मराज के ही मस्तक पर अभिषेक किया। वे खुद हमेशा सेवक ही रहे। इसीका नाम है निष्काम सेवा। लोकमान्य तिलक स्वराज्य के लिए सतत प्रयत्न करते रहे। लेकिन जब उनसे पूछा गया कि स्वराज्य-प्राप्ति के बाद आप कौन-सा पद लेंगे? तो उन्होंने कहा : 'स्वराज्य प्राप्ति के बाद पद लेना मेरा काम नहीं। मैं या तो वेदों का अध्ययन करूँगा या गणित का अध्यापक बनूँगा।' इसीका नाम है निष्काम सेवा। ऐसी थोड़ी भी निष्काम सेवा जिस किसी मनुष्य के हाथों से होती है, उसे अत्यंत समाधान और तृप्ति का अनुभव होता है।

दाताओं को निष्काम-सेवा का समाधान

हम चाहते हैं कि भूमिहीनों को भूमि मिले और उनकी मदद के लिए संपत्तिवानों की संपत्ति मिले। सब लोग अपनी जमीन, संपत्ति और बुद्धि गरीबों की सेवा में लगायें। इसके बदले में हम उन दाताओं को क्या कोई पद देंगे या उनके लिए कहीं सिफारिश करेंगे? हम उन्हें निष्काम सेवा का समाधान देंगे। केवल निष्काम सेवा करने की प्रीति से जो लोग अपनी जमीन, संपत्ति और बुद्धि का एक अंश दान देंगे, उनके हृदय को अत्यंत समाधान होगा। उससे भूमिहीनों को जितना आनंद होगा, उससे ज्यादा आनद देनेवालों को होगा। एक प्यासा आपके घर पर आकर पानी माँगता है और आप उसे ठंडा पानी पिलाते हैं, तो उसकी अंतरात्मा तृप्त होती है। किंतु पानी पीनेवाले को जितना आनंद होता है, उससे ज्यादा आनंद पिलानेवाले को होता है। यह बात सही है या गलत, आप ही अपने मन में सोचिये। आप गरीबों के, दुःखियों के लिए कुछ मदद करेंगे, तो उनसे ज्यादा आनंद आपको होगा। आप अनुभव करके देख लीजिये और अगर आपके मन में यह निश्चय हुआ कि उसमें आनंद, संतोष और तृप्ति है, तो फिर आपको इस काम को उठा लेना होगा।

परेन्दुराई (कोयम्बतूर)
२४-१०-'५६.

भारत बहुत बड़ा देश है। इसमें ३६ करोड़ से भी ज्यादा लोग रहते हैं। इसमें से छठा हिस्सा शहरों में रहता है। वह खेती नहीं करता और न वह कर सकता है। गाँवों में जो कारीगर वर्ग होता है, वह भी खेती नहीं कर सकता है, क्योंकि उसे गाँववालों के काम करने पड़ते हैं। आज कुल देश को अनाज दिलाने का काम किसानों और कृषक-मजदूरों का होता है, बाकी सभी लोग अनाज खरीदेंगे। अनाज ऐसी वस्तु है कि उसके बिना किसी का नहीं चलता। वह ऐसी चीज है, जो सबको मिलनी चाहिए। इसलिए वह मँहगी भी नहीं बिक सकती। वास्तव में 'अनाज की कीमत', यह कल्पना ही छोड़ देनी चाहिए। जैसे हवा, पानी सबको मुफ्त में मिलते हैं, वैसे ही अनाज भी बिना दाम मिलना चाहिए। अगर वह मुफ्त न हो सके, तो कम-से-कम दाम होना चाहिए, जो मुफ्त जैसा ही मालूम हो। लेकिन अगर अनाज का बहुत कम दाम मिलता है, तो किसानों को तकलीफ होती है। इसलिए महँगा भी नहीं और सस्ता भी नहीं, ऐसा बीच का रास्ता निकालना चाहिए।

अनाज से पैसा नहीं मिल सकता

यह तो जाहिर है कि अनाज पैदा कर बहुत पैसा पैदा नहीं कर सकते, यह बात किसान भी जानते हैं। फिर भी वे माँग करते हैं कि अनाज की कुछ ज्यादा कीमत होनी चाहिए। साथ ही वे जानते हैं कि अनाज बहुत ज्यादा महँगा नहीं हो सकता। जो चीज सबको चाहिए, वह महँगी नहीं हो सकती। इसीलिए फिर वे तम्बाकू, गन्ना, जूट, कपास, हल्दी जैसी पैसे की चीजें बोते हैं। यह भी ज्यादा दिन न चलेगा, क्योंकि दिन-ब-दिन जनसंख्या बढ़ रही है। इसलिए जितनी जमीन में दूसरी चीजें बोई जायँगी, उतने परिमाण में अनाज कम मिलेगा। इससे देश को नुकसान होगा। यद्यपि शक्कर खाने की चीज है, फिर भी वह अनाज की जगह नहीं ले सकती। दो तोले अनाज

तो उद्योग होना चाहिए और उसका खुद उपयोग करना चाहिए। पर आज तो जमीन को ही अपने पैसे का साधन बनाया गया है। इसलिए पैसेवालों ने गरीब लोगों के हाथ से उसे छीन लिया है। घर में शादी हुई, तो सौ रुपये का कर्जा दो सौ रुपया लिखवाकर लेना पड़ा। दिन-ब-दिन रुपये बढ़ते गये और आखिर दो सौ रुपये के बदले में पाँच एकड़ जमीन देनी पड़ी। इस तरह जमीन की पैसे में कीमत हो गयी और बेचारा किसान बेहाल हो गया। वास्तव में जमीन का मूल्य रुपये में नहीं हो सकता। अगर आप दस हजार रुपये के नोट को एक गड्ढे में रखकर ऊपर से पानी डालें, तो क्या फसल आयेगी? मिट्टी की कीमत पैसे में हो ही नहीं सकती। मिट्टी में से खाने की चीजें मिल सकती हैं, पैसे नहीं। फिर भी आज जमीन पैसे का साधन बनी और वह चंद लोगों के हाथ में आ गयी है। कारण, पैसा किसानों के हाथ की चीज नहीं है। वह नासिक के छापखाने में छपता है। शहरवालों को पैसा बनाने में तकलीफ नहीं होती है। आपने जमीन को पैसे का आधार बनाया, तो आपकी चोटी उनके हाथ में आ गयी। जमीन की मालकियत ही नहीं हो सकती। वह पैसे की चीज नहीं, प्राण की चीज है। उस पर अपना प्राण टिकेगा। परंतु आपने उसकी पैसे में कीमत की। परिणामस्वरूप गाँव के उद्योग टूट गये और गाँव के लोग चूसे गये।

शहर में बहुत ज्यादा लूटनेवाले होते हैं। गाँव को लूटनेवाले, गरीब लोगों की तुलना में पैसेवाले ही ज्यादा होते हैं। किंतु शहर में तो वे ही लूटे जाते हैं। क्योंकि जमीन में से वे कितने पैसे कमायेंगे? इस तरह शहरों में एक-दूसरे को मारकर लोग जीते हैं। इससे समाज कभी सुखी नहीं हो सकता। समाज में शान्ति नहीं हो सकती। हृदय को समाधान नहीं हो सकता और न जीवन में कभी पूर्णता ही आ सकती है।

गाँववाले सुखी कैसे हों?

आपको सुखी होने के लिए चार-पाँच चीजें करनी होंगी—(१) जमीन पैसे का आधार नहीं होनी चाहिए, (२) गाँववालों को पैसे की ज्यादा जरूरत

राज्य नहीं, स्वराज्य

: ६८ :

आज देश में 'निष्काम-सेवा' करीब-करीब शून्य है। निष्काम-सेवा याने ऐसी सेवा, जिसमें अपने लाभ की इच्छा न हो, अपने पक्ष के लाभ की इच्छा न हो और न उसमें प्रतिष्ठा की भी बात हो। स्वराज्य-प्राप्ति के पहले निष्काम-सेवा का लोगों को कुछ अभ्यास था। उन दिनों कांग्रेस में कई लोग केवल स्वराज्य की भावना से निष्कामता से काम करते थे। रचनात्मक काम करनेवाले भी गरीबों की सेवा निष्काम बुद्धि से करते थे।

स्वराज्य के बाद निष्काम सेवा नहीं रही

पर स्वराज्य-प्राप्ति के बाद कुल देश बदल गया। लोग अनेक राजनैतिक पक्षों में बँट गये। फिर कुछ सेवक, जो पहले लोगों की सेवा करते थे, सरकार के अंदर दाखिल हो गये। स्वराज्य हाथ में लेने के बाद उसे चलाना चाहिए, यह भी एक कर्तव्य माना गया, इसलिए योग्यता और वजन रखनेवाले लोग सरकार के अन्दर गये। जो लोग सरकार में गये, वे निष्काम नहीं हो सकते, ऐसा नहीं; कुछ तो हो ही सकते हैं। हम जानते हैं कि महाराज जनक अत्यन्त निष्काम थे और उन्हीं की मिसाल निष्काम कर्म के बारे में भगवत्गीता में दी गई है। लेकिन वैसे लोग हाथ की उंगुलियों से ही गिने जायँगे। बाकी बहुत-से लोग वहाँ सत्ता का ही अनुभव करते हैं। इसलिए उनसे निष्काम सेवा नहीं बनती।

रचनात्मक काम करनेवाले पहले सरकारी मदद की अपेक्षा न करते थे। एक प्रकार से उनका काम सरकार के विरुद्ध ही था। इसलिए उन्हें काफी त्याग करना पड़ता था। उन्हें कुछ तनख्वाह भी दी जाती थी, तो वह बिलकुल कम-से-कम दी जाती थी और उनका सबका भार जनता पर ही था। लेकिन आज हालत बदल गयी है, आज सरकार की योजना में कुछ रचनात्मक कार्यकर्ता दाखिल हुए हैं। वहाँ उन्हें अनेक प्रकार की सहूलियतें मिलने लगी हैं। उन्हें त्याग की आवश्यकता भी उतनी नहीं रही। उन्हें जनता पर आधार रखने की

आवश्यकता भी न रही। उनकी यह श्रद्धा हो गयी कि सरकार पर आधार रखकर ही काम हो सकता है। इस हालत में भी निष्काम सेवा करनेवाले हैं, पर उनकी संख्या बहुत कम, तीन-चार हाथों की उंगुलियों पर उनके नाम गिने जा सकते हैं।

राजनैतिक पक्षवालों की हालत

जो लोग राजनैतिक पक्षों में बँट गये हैं, उनमें से कुछ लोग पद लिये हुए हैं, कुछ म्युनिसिपलिटी, डिस्ट्रिक्टबोर्ड आदि में गये, तो कुछ कांग्रेस संस्था के अध्यक्ष, मंत्री आदि बने। इन दिनों काँग्रेस के अध्यक्ष आदि के हाथ में भी बहुत सत्ता रहती है, क्योंकि आज काँग्रेस शासनकर्त्री संस्था है। ऐसी हालत में *निष्काम सेवक कौन होंगे? दुनिया में कुछ तो होंगे ही, ईश्वर के भक्त कहीं-न-*कहीं होते हैं तो वहाँ भी होंगे। जो लोग दूसरे राजनैतिक पक्षों में काम करते हैं, उनके हाथ में सत्ता नहीं है, किंतु वे सत्ता के अभिलाषी हैं और उनका सारा ध्यान इसी में रहता है कि काँग्रेस के या सरकार के काम में कहाँ त्रुटियाँ हैं। इस तरह दूसरों की गलतियाँ गिननेवाला अपना चित्त शुद्ध नहीं रख सकता। जहाँ चित्तशुद्धि का अभाव आया वहाँ निष्काम सेवा कहाँ से होगी? फिर भी उनमें कुछ चंद लोग निष्काम होंगे।

सेवा का सौदा

इस तरह स्वराज्य-प्राप्ति के बाद जो सेवा हो रही है, उसका हिसाब हमने लगा लिया। अब भी 'रामकृष्ण मिशन' जैसी कुछ संस्थाएँ काम करती हैं, जो पहले भी करती थीं। उनमें कुछ निष्काम सेवक जरूर होंगे। निष्काम सेवा ही सच्ची सेवा है। बाकी सेवा याने एक प्रकार का सौदा है। किसी ने जेल में कई साल बिताये, तो वह कहता है हमें भी कुछ मिलना चाहिए। किसी ने भूदान में कुछ त्याग किया, तो वह भी कहता है कि हमें कुछ मिलना चाहिए। अभी काँग्रेस ने जाहिर किया है कि जिन्होंने कुछ काम किया है, वे अपने काम का हिसाब पेश करें और उसके अनुसार उन्हें कुछ पद आदि मिलेगा। कुछ लोग अपने काम की रिपोर्ट पेश करेंगे कि हमने इतने-इतने दिन काम किया,

इसलिए हम चुने जायँ। उन्हें वैसी अपेक्षा रखने का अधिकार भी है, लेकिन उसमें निष्कामता कहाँ रही? वह शुद्ध सेवा नहीं, वह तो सौदा हो गया।

राजसत्ता से धर्म-प्रचार संभव नहीं

अब मैं दूसरा हिसाब लगाऊँगा। आज की हालत में जनशक्ति पर श्रद्धा और जनसेवा पर विश्वास बहुत ही कम दीखता है। राजनैतिक पक्षों में काम करनेवाले मानते हैं कि सत्ता के जरिये ही काम होगा, उनका सरकार की शक्ति पर जो विश्वास है वह जनशक्ति पर नहीं है। वे कुछ जनसेवा भी करेंगे, तो इतना ही करेंगे कि सरकार के जरिये लोगों को कुछ मदद पहुँचायेंगे। लोग भी उनसे ऐसा ही पूछेंगे कि आप हमारी तरफ से प्रतिनिधि बने हैं, तो आपने हमारे लिए क्या किया? इसलिए लोगों को उनकी अपनी शक्ति पर विश्वास नहीं और राजनैतिक पक्षों में काम करनेवालों का भी जनशक्ति पर विश्वास नहीं। इस हालत में स्वतंत्र जनसेवा की कोई कीमत नहीं रही। तिस पर भी वे लोग सेवा करेंगे, क्योंकि उसके जरिये वे सत्ता पर काबू रख सकेंगे। वे सोचते हैं कि हम सेवा करेंगे, तभी लोग हमें चुनेंगे और तभी हमारे हाथ में सत्ता आयेगी। इसलिए वह सेवा सत्ता की दासी है।

लोक-जीवन में सुधार, परिवर्तन, लोगों में क्रांति लाना आदि काम सरकारी शक्ति से कभी नहीं हो सकता। अगर सरकारी शक्ति से जनक्रांति होना संभव होता, तो बुद्ध भगवान् के हाथ में जो राज्य था, उसे वे क्यों छोड़ते? इन दिनों लोग बुद्ध भगवान् की नहीं, बल्कि अशोक की मिसाल देते हैं। वे कहते हैं कि अशोक का परिवर्तन हुआ और उसने धर्मप्रचार किया, तो फिर राज्यशक्ति से धर्मप्रचार हुआ न? हम कहना चाहते हैं कि वे लोग इतिहास का जरा भी ज्ञान नहीं रखते। जब से बुद्ध-धर्म को सरकारी शक्ति का बल मिला, तब से बुद्ध-धर्म के हिन्दुस्तान से उखड़ने की तैयारी हुई। जब से ईसाई-धर्म को, कान्स्टेन्टाईन के बाद राजसत्ता का आधार मिला, तब से ईसाई-धर्म नाममात्र का रहा। ईसा के पहले अनुयायी जैसे शुद्ध धर्म का आचरण करते थे उसका लोप हुआ, चर्च बना और ढोंग पैदा हुआ। यहाँ पर धर्म-पैगम्बर-जैन दिखाई देते हैं

परंतु जब से इनको राजसत्ता का बल मिला तब से हजारों लोग शैव, वैष्णव और जैन बने। लेकिन वे वास्तव में शैव, वैष्णव या जैन नहीं, बल्कि राजनिष्ठ और राजभक्त बने। आज दुनिया में गिनती के लिए तो हजारों शैव, वैष्णव, जैन और लाखों हिन्दू, ईसाई हैं; लेकिन उनका आचरण क्या है?

धर्म का नाम है, आचरण नहीं

आज अगर ईसा मसीह आये, तो क्या यूरोप में और अमेरिका के ईसाई धर्म का दृश्य देखकर वह संतुष्ट होगा? ईसा ने तो कहा था कि कोई तुम्हारे गाल पर तमाचा मारे, तो दूसरा गाल सामने करो। आज इसका आचरण कौन कर रहा है? आज गिनती के लिए तो करोड़ों की संख्या में ईसाई हैं। वही हालत इस्लाम की है। बड़े-बड़े राजा हुए, जो इस्लाम का नाम लेते थे, तो प्रजा में से भी हजारों लोग मुसलमान बन गये। क्या वह कोई इस्लाम का प्रचार था? अभी हम देखते हैं कि अंबेडकर के साथ दो लाख बौद्ध बने। तो क्या ऐसे धर्मांतरण से बुद्ध भगवान को संतोष होता होगा? क्या उन्होंने इस तरह लाख-लाख लोगों को दीक्षा दी थी? क्या धर्म कोई खेल है कि लाख-लाख लोग एकदम दूसरे धर्म में शरीक हों? आचरण कुछ नहीं और धर्म के नाम से झगड़े चलते हैं। इसलिए जबसे राज-सत्ता धर्म के साथ जुड़ गई, तबसे धर्म की अत्यंत हानि हुई है। इसका परिणाम यह हुआ है कि आज हजारों, लाखों लोग अपने को धार्मिक कहलाने के बजाय नास्तिक कहलाना पसन्द करते हैं।

इसलिए राजसत्ता के जरिये सद्विचार या सद्धर्म फैल सकता है, यह कल्पना ही मन से निकाल दीजिये। बल्कि अगर सच्चे अर्थ में राजसत्ता धर्म के साथ जुड़ जाय, तो धर्म राजसत्ता को ही खतम कर देगा। दोनों एक साथ नहीं रह सकेंगे। अन्धकार और सूर्यनारायण एक साथ नहीं रह सकते। धर्म अगर सचमुच में राजसत्ता के साथ आ गया, तो वह राजसत्ता को तोड़ देगा। दूसरों पर सत्ता चलाना धर्म-विचार नहीं। सबकी सेवा करना, प्रेम से

समझाना ही धर्म-विचार है। लाख-लाख लोग एकदम धर्मनिष्ठ बनें, यह भी क्या कोई धर्मनिष्ठा है?

राजसत्ता और समाज-क्रान्ति

जो धर्म दुनिया में और विचार में क्रान्ति लानेवाला है, वह राजसत्ता के जरिये फैल नहीं सकता। इसलिए बुद्ध भगवान् को राज्य छोड़ना पड़ा। ऐसी ही पुरानी दूसरी भी मिसालें हैं। लेकिन अभी की मिसाल लीजिये। नवबाबू (उड़ीसा के भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री नवकृष्ण चौधरी) ने राजसत्ता के जरिये सेवा करने की काफी कोशिश की। आखिर इन दो सालों से वे उससे छुटकारा पाने के लिए तरसते थे, लेकिन उनका छुटकारा नहीं हो रहा था। अब वे छूट गये हैं। यह छोटी मिसाल है और बुद्ध भगवान् की बड़ी मिसाल, लेकिन दोनों का तात्पर्य एक ही है। दोनों के हाथ में राजसत्ता थी। लेकिन उन्होंने देखा कि समाज आज जिस स्थिति में है, उस स्थिति को कायम रखकर अगर कुछ सेवा करनी हो तो सरकार के जरिये होती है। उससे समाज कुछ थोड़ा-सा आगे भी बढ़ सकता है, लेकिन वह चींटी के जैसा बढ़ता है। अगर राज्य-कर्ता अच्छे हों, तो समाज आगे बढ़ता है। किंतु हमेशा सभी राज्यकर्ता अच्छे नहीं होते, इसीलिए सत्ता के जरिये समाज-रचना में कोई क्रान्तिकारक बदल नहीं हो सकता। लोगों में जाकर उनके मन की शुद्धि का कार्यक्रम किये बिना जन समाज आगे नहीं बढ़ता।

किसी राजा की आज्ञा से काम नहीं चलता

हिन्दुस्तान का कुल इतिहास देखने से यह मालूम होता है कि हिन्दुस्तान का समाज जहाँ-जहाँ आगे बढ़ा, वहाँ-वहाँ सत्पुरुषों के ही जरिये आगे बढ़ा। बुद्ध और महावीर का जो असर आज भी भारत पर दीखता है, वह उनके जमाने के किसी भी राजा का नहीं। कबीर और तुलसीदास का जो प्रभाव आज उत्तर प्रदेश पर हुआ है, वह उत्तर प्रदेश के किसी राजा का नहीं है। चैतन्य महाप्रभु, रामकृष्ण परमहंस और रवीन्द्रनाथ का जो असर आज बंगाल पर है, वह बंगाल के किसी भी राजा का नहीं। शंकर, रामानुज, माणिक्य-

याचकर और नम्मालवार का तमिलनाड पर आजतक जो असर है, वह न किसी पांड्य का है, न पल्लव का है और न चोल राजा का है। यहाँ पर सब लोग भस्म लगाते हैं, तो क्या वह कोई चोल राजा की आज्ञा से करते या पांड्य राजा की आज्ञा से? आखिर किसके नाम पर लोग अपने जीवन में इतना त्याग करते हैं? विवाह-संस्था जैसी उत्तम संस्था किसने बनायी? उसमें कौन-सा कानून आता है? माताएँ बच्चों की परवरिश करती हैं, तो किस राजा के या किस सरकार के हुक्म से? असंख्य यात्राएँ चलती हैं, वह किनकी आज्ञा से? मरने पर स्मशान-विधि और श्राद्ध-विधि आदि होती है, तो किनकी आज्ञा से? यहाँ पर जो 'तिरुकुरल' पढ़ा जाता है, 'तिरुवाचकम्' का रटन किया जाता है, वह क्या किसी युनिवर्सिटी की आज्ञा से होता है, या किसी म्युनिसिपैलिटी या डिस्ट्रिक्टबोर्ड की आज्ञा से? यह बात सही है कि आज उन कम्बख्तों के हाथ में ऐसी ताकत है कि वे कोई भी किताब कुल बच्चों से पढ़वाना चाहें तो पढ़वा सकते हैं। लेकिन बच्चे वैसी किताबें स्कूल में पढ़ते हैं। और स्कूल खतम होने पर फेंक देते हैं, फिर जिन्दगी भर उस किताब को खोलते नहीं। लेकिन लोग तिरुकुरल और तिरुवाचकम् जेब में रखते हैं और बार-बार पढ़ते हैं। आज लोगों की जो विवेकबुद्धि बनी है, वह किसने बनायी है? आज इतना दान दिया जाता है, वह किसकी आज्ञा से दिया जाता है? इतना सारा तप, उपवास, एकादशी, रोजा किया जाता है, वह किसकी आज्ञा से किया जाता है? हिन्दुस्तान में बहुत-से लोग स्नान किये बगैर दोपहर का भोजन नहीं करते, वह किसकी आज्ञा से करते हैं?

सिकंदर और डाकू

आप क्या समझते हैं कि पिनलकोड में चोरी के लिए सजा है, इसलिए इतने सारे लोग चोरी नहीं करते? मान लीजिये कि कल पुलिस, कोर्ट, जेल आदि कुछ नहीं रहे, तो क्या बाबा भूदान का काम छोड़कर चोरी करना शुरू करेगा? चोरी के लिए सजा न हो, तो आपमें से कितने लोग चोरी करना शुरू करेंगे? चोरी नहीं करनी चाहिए ऐसी जो हमारी विवेकबुद्धि बनी है,

क्या यह किसी राजा ने बनायी है ? राजा क्या बना सकते थे, वे खुद ही चोर थे। वे डाका डालनेवाले थे, लोगों को लूटनेवाले थे, लोगों पर सत्ता चलाने वाले थे। क्या वे लोगों के हृदयों पर सत्ता चला सकते थे ? उनकी मिसाल लेकर कौन चोरी छोड़ेगा ?

सिकंदर बादशाह की कहानी है। एक डाकू को पकड़कर उसके सामने लाया गया था। सिकंदर ने डाकू से पूछा : 'तू क्या करता है ?' डाकू ने कहा : 'तू जो करता है, वही मैं करता हूँ।' इस पर सिकंदर ने कहा : 'तेरी और मेरी बराबरी ही क्या ? मैं तो बादशाह हूँ।' डाकू बोला : 'तू जो काम करता है, वही मैं भी करता हूँ। लेकिन तू सफल हुआ और मैं नहीं, इतना ही फर्क है। चोर तू भी है और मैं भी, परन्तु तू सफल चोर है, इसलिए लोगों के सिर पर बैठा है और मैं असफल चोर हूँ, इसलिए तेरे सामने खड़ा हूँ। फिर भी तू मन में यह भलीभाँति समझ ले कि तेरी और मेरी योग्यता समान है।' यह सुनकर सिकंदर अवाक् रह गया। यहाँ ईस्ट इंडिया कंपनी का राज्य चला, उसमें क्लाइव, वॉरेन् हेस्टिंग आदि क्या महापुरुष हो गये ? उस समय उधर इंग्लैंड की पार्लमेन्ट में हेस्टिंग्ज़ पर केस चला था। उसमें बर्क (Burke) ने अभियोग (Impeachment) पर जो व्याख्यान दिया, उसे हम पढ़ते हैं तो मालूम होता है कि हेस्टिंग्ज़ वगैरह कैसे बदमाश थे। लेकिन हिन्दुस्तान में उनकी सत्ता चली और वे राज्यकर्ता बने।

जनशक्ति से स्वराज्य

अब अंग्रेजों के हाथ से हमारे हाथ में सत्ता आयी और हम राज्यकर्ता बने हैं। शास्त्रों में लिखा है कि "राज्यान्ते नरकप्राप्तिः" राज्य-समाप्ति पर नरक-प्राप्ति होती है। यानी राज करनेवाला राजा मरने पर नरक में जाता है। लोग पूछेंगे कि क्या फिर स्वराज्य न चलाना चाहिए ? हम कहते हैं कि स्वराज्य जरूर चलायें, पर राज्य नहीं। वेद का ऋषि कहता है—"यतेमहि स्वराज्ये" हम स्वराज्य के लिए प्रयत्न करें। शास्त्रों में भी यह भी लिखा है कि "न त्वहं कामये राज्यम्" मैं राज्य नहीं चाहता मैं स्वराज्य चाहता हूँ, दिल्ली से जो चलता

है उसे 'राज्य' कहते हैं, चाहे वह अपने लोगों का ही हो। शेन्नै (मद्रास) से जो चलता है, वह 'राज्य' कहलाता है। गाँव-गाँव में हर मनुष्य अपने पर जो चलाता है वह 'स्वराज्य' है। मुझे चाहे भूखा रहना पड़े, लेकिन मैं चोरी न करूँगा, इसका नाम है 'स्वराज्य'। मुझ पर दूसरे किसी की हुकूमत चलती हो, तो क्या वह स्वराज्य है! 'स्वराज्य' का अर्थ है अपना खुद का अपने पर राज्य। इस तरह जब सब लोगों में अपने पर काबू रखने की शक्ति पैदा होगी और उन्हें अपने कर्तव्य का भान होगा, तब 'स्वराज्य' आयेगा। तब तक 'राज्य' ही चलेगा, फिर चाहे वह हिन्दीवालों का राज्य हो या तमिलवालों का राज्य हो। हमें काम स्वराज्य का करना है। उसके लिए जनशक्ति पैदा करनी है, लोगों के हृदय में आत्मशक्ति का भान पैदा करना है। अपने गाँव का कारोबार हम ही चला सकते हैं, कोई भी बाहर की सत्ता हमें रोक नहीं सकती, ऐसी ताकत पैदा होनी चाहिए।

बाबा को स्वराज्य मिला

मैं अपने ऊपर अपनी खुद की सत्ता चला सकता हूँ। बाबा ने तय किया है कि वह पैदल घूमेगा। रोज पचासों रेलें फरफर करती हैं और कई बार बाबा को उनका दर्शन होता है। बाबा का कोई भाई कलकत्ते में पड़ा है। रेल में बैठा जाय, तो दो दिनों में उसे मिलने के लिए जाया जा सकता है। लेकिन कोई भी रेल बाबा को अपने में बिठा नहीं सकती। बाबा का अपने विचारों पर काबू है। वह समझता है कि वह जो संकल्प करेगा, उसके खिलाफ दुनिया की कोई ताकत काम न करेगी। फिर भी बाबा दूसरों पर दबाव डालने का संकल्प न करेगा, वह अपने पर ही दबाव डालने का संकल्प करेगा। बाबा अपने लिए कोई निश्चय करेगा और वह देखना चाहेगा कि क्या उसे तोड़नेवाली कोई शक्ति दुनिया में है। एक जमाना था जब बाबा का अपने पर काबू नहीं था, अपने पर काबू पाने के लिए उसे अभ्यास करना पड़ा। जिस समय उसकी अपने पर सत्ता नहीं थी, तब दूसरों की सत्ता उसपर चलती थी। किंतु जब से उसकी अपने पर सत्ता चलने लगी, तभी से उसे 'स्वराज्य' मिला।

स्वराज्य के दो लक्षण

दुनिया की दूसरी कोई भी सत्ता अपने ऊपर न चलने देना, स्वराज्य का एक लक्षण है और दूसरे किसी पर अपनी सत्ता न चलाना स्वराज्य का दूसरा लक्षण। हम पर किसी की सत्ता नहीं चलेगी और हम दूसरे किसी पर अपनी सत्ता नहीं चलायेंगे, ये दोनों बातें मिलकर ही स्वराज्य होता है।......यह सब काम सरकारी शक्ति से नहीं, लोकमानस में परिवर्तन लाने से ही होगा। उसके लिए हृदय-शुद्धि की जरूरत है। हृदय-शुद्धि लाने का कार्यक्रम जनता में जाकर करना होगा। उसके लिए यज्ञ, दान, तप आदि सब हैं।

मलयकोटाई (कोयम्बतूर)
२९-१०-'५६.

करुणा के समुद्र का दर्शन

: ६९ :

अभी आपने भजन में सुना कि 'परमेश्वर करुणा का समुद्र है।' परमेश्वर को किसने देखा और कैसे मालूम हुआ कि वह करुणा का सागर है? उसे किसी ने अपनी आँखों नहीं देखा। किसी को आँखों से चतुर्भुज विष्णु का दर्शन होता है या किसी का शिव भगवान् की मूर्ति का, तो वह अपनी भावना से मान लेता है कि ईश्वर कहीं है। लेकिन ईश्वर का रूप किसी ने देखा, ऐसा हम नहीं कह सकते। वह तो अपनी भावना का रूप है। भावना को ही हम ईश्वर मानें, तो वह उसके लिए ईश्वर-दर्शन है, किन्तु चर्मचक्षु से ईश्वर का दर्शन किसी को होता नहीं। फिर कैसे पहचाना कि ईश्वर करुणा के समुद्र हैं? पानी से भरा समुद्र सब लोगों ने देखा है, लेकिन करुणा से भरा ईश्वर किसी ने कहाँ देखा? पानी से भरा समुद्र भी सबने नहीं, कुछ ही लोगों ने देखा है। फिर भी सबने पानी तो देखा ही है। दुनिया में ऐसा कोई मनुष्य नहीं होगा, जिसने पानी न देखा हो। जिन्होंने पानी का समुद्र न देखा हो, वैसे लोग लाखों होंगे। मारवाड़ के लोग कहाँ समुद्र देखेंगे? हिमालय के जंगलों में रहनेवालों को समुद्र कहाँ मालूम? ऐसे लाखों

करोड़ों लोग होंगे कि जिन्होंने समुद्र न देखा होगा, लेकिन जिसने पानी नहीं देखा, ऐसा कोई भी शख्स नहीं होगा। बच्चों ने भी पानी देखा होगा।

करुणा और करुणा का समुद्र

किंतु भजन में हमने सुना कि परमेश्वर करुणा का समुद्र है। उन्होंने करुणा के समुद्र को देखा होगा, पर वह आँखों से नहीं, अक्ल से देखा होगा। किसी ने अपनी अक्ल से परमेश्वर को करुणा के समुद्र के रूप में देख लिया होगा। लेकिन सब लोग करुणा के समुद्र को नहीं, करुणा को देखते हैं। करुणा को किसने नहीं देखा? जिसने पानी नहीं देखा, उसने भी करुणा को देखा है। बच्चे का जन्म होते ही माता ने उसे अपने स्तन का दूध पिलाया। बच्चे ने तबतक पानी नहीं देखा, लेकिन करुणा चख ली। जब माता ने उसे स्तन का दूध पिलाया, उसके साथ-साथ उसे करुणा का भी ज्ञान हो गया। इसलिए जिसने करुणा को देखा नहीं, ऐसा दुनिया में कोई नहीं है।

जीवन में करुणा का दर्शन

कुछ लोगों ने करुणा के समुद्र का अपनी बुद्धि से दर्शन किया होगा, किंतु करुणा का दर्शन तो बालक ने भी किया है। बालक ने माता की करुणा देख ली, इसलिए तमिल में माता को 'कण्कण्ड देयूवम्' (प्रत्यक्ष भगवान्) कहते हैं। फिर भी उसको करुणा का समुद्र नहीं दीखता, हाँ, बच्चों को माता में करुणा की नदी काफी मिलती है। समुद्र बहुत बड़ी चीज है, लेकिन नदी भी कोई बहुत छोटी चीज नहीं। बच्चों को करुणा की नदी का दर्शन माँ में हो गया। उसने पहचान लिया कि वहाँ परमेश्वर का एक अंश है। क्योंकि माँ में परमेश्वर की करुणा दीख पड़ती है।

थोड़े दिनों के बाद बच्चों को पिता की करुणा का अनुभव होता है। वह पहचान लेता है कि यहाँ भी ईश्वर का कुछ रूप है। फिर थोड़े दिन बाद वह स्कूल में चला जाता है, तो वहाँ उसे गुरुजी की करुणा का दर्शन होता है। हाँ, हाथ में छड़ी लेनेवाला गुरुजी हो, तो वह दर्शन न हो, पर ज्ञान देनेवाला मिला

तो करुणा का दर्शन अवश्य होगा। फिर वह संसार में काम करने लगे, कई प्रकार की मुसीबतें आयीं और उस समय मित्रों ने मदद दी, तो मित्रों में करुणा का दर्शन हुआ। एक दिन वह नदी में नहा रहा था, डूबने लगा, रास्ते में एक मुसाफिर जा रहा था, कुछ पहचान नहीं थी। उसने देखा कि एक शख्स पानी में डूब रहा है। वह अच्छी तरह तैरना जानता था। पानी में कूद पड़ा और इसे बाहर निकाल दिया। कुछ जान-पहचान न होते हुए भी नदी में कूद कर बचानेवाले मनुष्य में उसे करुणा का दर्शन हुआ। फिर उसके हृदय में भावना पैदा हुई कि सारी दुनिया में कई लोगों ने मुझ पर करुणा की बारिश की, अब मैं भी थोड़ी करुणा करूँ। फिर वह गरीबों की मदद में, बीमारों की सेवा में और दुखियों की सहायता में लग गया। किसी अज्ञानी को ज्ञान देने लगा। इससे उसे अपने में करुणा का दर्शन होने लगा। इस तरह सर्वप्रथम माता में और आखिर में अपने में करुणा का दर्शन हुआ।

पेड़ों में और मृत्यु में करुणा का दर्शन

जब उसे अपने हृदय में ही करुणा का दर्शन होने लगा, तो वह सारी दुनिया की तरफ करुणा की नजर से देखने लगा। जैसे चींटी मिट्टी के कणों में घूमती है, लेकिन जहाँ शक्कर का कण देखती है, वहीं उसे एकदम उठा लेती है। वह खाने की चीजों का भी एकदम संग्रह करती है। वैसे ही उस मनुष्य ने दुनिया में जहाँ-जहाँ करुणा देखी, वहाँ से उसने करुणा लेना शुरू किया। फिर उसे कुत्ते, गाय, घोड़े आदि जगह-जगह करुणा दीखने लगी। एक दिन देखा कि एक मुसाफिर रास्ते पर से जा रहा था। उसके पेट में भूख थी। उतने में रास्ते में आम का एक पेड़ आया। वह उसके नीचे से जा रहा था। इतने में अच्छा पका आम नीचे गिरा। उसने उठा लिया और खाया, तो उसे एकदम ज्ञान हुआ कि पेड़ों में भी करुणा भरी है। वे उत्तम-से-उत्तम फल तैयार करते हैं, परन्तु खुद कभी नहीं खाते। लोग भी बड़े प्यार से आम के फल खाते हैं। कितनी करुणा पेड़ में भरी है! इस तरह पेड़ों में भी उसे करुणा का दर्शन होने लगा।

एक बार एक मनुष्य बहुत बीमार था। उसके पेट में खूब दर्द था। डाक्टरों ने खूब इलाज किये, परन्तु उसका कोई भी अच्छा परिणाम नहीं आया। वह बेचारा दुःख के मारे रोज चिल्लाता। आस-पास के लोग सुनते और उसे मदद करने की कोशिश करते, पर कुछ भी परिणाम न होता। एक दिन सूर्य का उदय हो रहा था, उतने में उस बीमार की आँखें बंद हो गयीं और उसका चिल्लाना भी रुक गया। इसने पूछा : 'अरे इसे क्या हो गया!' लोगों ने कहा : 'वह मर गया।' उसे उस समय मृत्यु में भी करुणा का दर्शन हुआ। कितनी करुणामय मृत्यु है। बेचारा कितना चिल्लाता था, डॉक्टर-मित्र कुछ न कर सकते थे, रिश्तेदार भी जिसे दुःख से नहीं छुड़ा सकते थे, उसे करुणामय मृत्यु ने छुड़ाया।

सारांश, उसे करुणा का दर्शन माँ से होते-होते हृदय में हुआ और उसने बाद में जहाँ-जहाँ देखा, वहीं करुणा का ही दर्शन हुआ। आखिर में करुणा का दर्शन मृत्यु में भी हुआ। वह इधर-उधर की सबकी सब करुणा इकट्ठी करने लगा तो एक दिन बहुत बड़ा भारी समुद्र करुणा का बन गया। उसी को तमिल में 'करुणैकडल' (करुणा का समुद्र) कहते हैं। वही परमेश्वर है। उसी करुणा का एक अंश माँ में है, एक अंश बाप में है, एक अंश गुरु में है, एक अंश मित्र में है, एक अंश भाई में है, एक अंश मनुष्य में है, एक अंश प्राणी में है, एक अंश पेड़ में है और एक बहुत बड़ा अंश मृत्यु में है—इस तरह उसको सर्वत्र करुणा का दर्शन हुआ। अब कहा जायगा कि उसने भगवान् का दर्शन कर लिया। उसने करुणा का समुद्र देख लिया, क्योंकि उसका खुद का जीवन केवल करुणा से भर गया। बोलने में बोला जाता है कि भगवान् करुणा का समुद्र है। पर वह किस तरह देखा जाता है, उसकी एक कला है। वह कला मैंने आप लोगों के सामने खोल दी।

भूदान में करुणा के समुद्र का दर्शन

साढ़े पाँच साल से हम भूदान के काम में घूम रहे हैं। हम कह सकते हैं कि हमें करुणा के समुद्र का दर्शन हुआ। कुल पाँच लाख लोगों ने ४० लाख

एकड़ जमीन का दान दिया है। उसमें कितने ही गरीब लोगों का दान है। बड़े लोगों का भी दान है। दान कैसे माँगा जाता है? दान माँगनेवाले के पास क्या सत्ता और क्या ताकत है? केवल प्रेम से समझाता है। भगवान् ने हमें जो चीजें दी हैं, दूसरे को दिये बिना हम उनका सेवन न करें, जो चीजें हमारे पास हैं, उनका दूसरे को भोग देने के बाद ही भोग करें। अपने पास जमीन हो तो जमीन का हिस्सा, संपत्ति हो तो संपत्ति का हिस्सा, बुद्धि हो तो बुद्धि (ज्ञान) का हिस्सा, शरीर में ताकत हो, तो ताकत का हिस्सा दूसरे को प्रेम से देना चाहिए, यही समझाकर हम जमीन माँगते हैं। इसके सिवा हमारे पास कोई दंडशक्ति नहीं और न कोई सरकारी शक्ति ही है। केवल प्रेम और विचार समझाने की बात है। वह समझकर इतने लाखों लोगों ने दान दिया है। बिलकुल अपने जिगर के टुकड़े उन्होंने दे दिये। इसमें हमें करुणा के समुद्र का दर्शन हुआ।

असुरों पर विजय प्राप्त करें

लोग हमसे पूछते हैं कि बाबा, कबतक घूमते रहोगे? हम उनसे कहते हैं कि हम घूमते नहीं है। यह तो हमारी यात्रा हो रही है? यात्रा भगवान के दर्शन के लिये होती है। हम करुणारूपी भगवान् के दर्शन के लिए घूम रहे हैं। हमें जगह-जगह उसका दर्शन होता है। हमारी यात्रा सफल है, चाहे किसी दिन ५० लोगों ने दान दिया, या किसी दिन एकआध ने। जहाँ प्रेम से दिया जाता है, वहाँ परमेश्वर का दर्शन हो जाता है। हम चाहते हैं कि इस करुणा का अंश जो हरएक के हृदय में पड़ा है, प्रकट हो जाय। यह करुणा सीमित न रहे। बच्चों को माँ में सर्वप्रथम करुणा का दर्शन होता है; पर ऐसी माताएँ भी देखीं, जो अपने बच्चों के लिए करुणामय हैं, लेकिन पड़ोसी के बच्चों के लिए निष्ठुर हैं। उनके हृदयों में करुणा का अंश है और निष्ठुरता का अंश भी—देव भी है और असुर भी है। यह देवासुर-संग्राम हरएक के हृदय में चलता है। हरएक के हृदय में कुछ-कुछ असुर रहते हैं, तो कुछ देव। असुर को वहाँ से भगाना है और देव को विजय प्राप्त करनी है।

ईश्वर का रूप और चिह्न

हम आशा करते हैं कि इस गाँव में करुणा का दर्शन होगा। जब हृदय करुणा से भर जायगा, तभी ईश्वर का दर्शन होगा। कई लोग पत्थर की मूर्ति बनाते हैं और उसी को भगवान् समझते हैं। पर वह तो ध्यान के लिए एक चिह्न बना लिया, जैसे ईश्वर के ध्यान के लिए 'स्वस्तिक' या 'ओम्' बनाते हैं। कहते हैं कि 'ॐ' मूर्ति में 'उ' परमेश्वर का चेहरा और शेषांश सूंड है। वे करुणा, ज्ञान और प्रेम से भरे हैं तथा संकट में मदद करते हैं। इस तरह परमेश्वर का ध्यान-चिंतन करने के लिए एक चिन्ह बना दिया। फिर भी वास्तव में वह ईश्वर का सच्चा रूप नहीं। आपको आम का चित्र दिखाया जाय, तो क्या वह आम है? मान लीजिये, एक गोबर का आम बना दिया और उस पर रंग चढ़ा दिया तो क्या आप उसे खायेंगे और उससे आपकी तृप्ति होगी? स्पष्ट है कि वह आम नहीं, आम का रूप है। आम तो खाने पर मालूम होता है। इसी तरह पत्थर की मूर्ति तो ईश्वर का चिह्न है। उसे हमने ही बनाया है। परन्तु आम हमने नहीं बनाया, ईश्वर ने पैदा किया है। गोबर का आम और यह पत्थर का भगवान् हमने बनाया, वह ईश्वर का रूप नहीं, चिह्न है। जैसे सच्चा आम दूसरा होता है, वैसे ही सच्चा परमेश्वर करुणा है। परमेश्वर का करुणा और प्रेम ही रूप है।

यहाँ 'अन्वे शिवम्' (प्रेम ही ईश्वर है), ऐसा कहा है। शिव का यह एक चिह्न है कि उनके सिर पर गंगा है। याने दिमाग में ठण्डक होनी चाहिए। ठण्डक के बिना सिर में आग लग जायगी, तो करुणा के बदले क्रोध ही प्रकट होगा। इसलिए बिलकुल ठंडी गंगा शिवजी ने सिर पर रख ली है। और गले में साँप रख लिये हैं। यह कितनी करुणा है। वह काटनेवाला साँप नहीं रहा होगा, वह तो पुष्पों का हार ही बन गया होगा। उन्होंने उसे पहन लिया, तो करुणा का रूप सामने खड़ा करने के लिए एक चिह्न हो गया। पर इस चिह्न को ही ईश्वर समझो और करुणा को न पहचानो, तो क्या कहा जायगा? इसलिए वास्तव में परमेश्वर का रूप करुणा समझकर दिन-ब-दिन हम अपनी करुणा बढ़ाते चले जायँ, यही सच्ची साधना है।

हमने आपको यह बात समझायी। अगर आपको यह जँच जाय, तो करुणा ही आपसे आगे काम करायेगी। यहाँ से हम आपके स्थूल रूप की आखिरी स्मृति लेकर जायँगे। लेकिन आपकी करुणा के रूप का निरंतर दर्शन किया करेंगे। परमेश्वर हमारे हृदय में करुणा रखेगा, तो हमारा रूप भी परमेश्वर आपके सामने अवश्य रखेगा। हम आशा करते हैं कि करुणामय परमेश्वर की कृपा से आप और हम करुणामय बन जायँ।

चिन्नमन्नुर (कोयम्बतूर)
२०-१०-'५६

सज्जनों के त्रिविध कर्त्तव्य

: ७० :

दुनिया में अनेक प्रकार के लोग होते हैं—कुछ भले होते हैं, कुछ साधारण और कुछ थोड़े बुरे भी। जो भले होते हैं, वे सदा के लिए बुरे नहीं होते, सुधर सकते हैं। जो भले होते हैं, वे हमेशा भले होते हैं। भले में से कोई बुरा तो बननेवाला नहीं है, जो बुरे हैं उन्हीं में से भले बननेवाले हैं। कारण, भलाई में ही ताकत होती है, बुराई में नहीं।

भलाई का बुराई पर हमला

आप किसी सज्जन का व्याख्यान सुनते हैं। वह आपको भलाई का उपदेश देता है, तो उसका कुछ-न-कुछ असर आप पर होता ही है। पर कोई बुराई का व्याख्यान देगा, तो उसका लोगों पर असर न होगा। चोर चोरी करेगा और दो चार साथी भी इकट्ठा कर लेगा। किन्तु वह लोगों को यह समझा नहीं सकता कि चोरी करना कर्तव्य है, सब को उस काम में लग जाना चाहिये। वह जो कुछ करेगा, छिपे तौर पर करेगा, अन्धकार में करेगा, प्रकाश में नहीं। अच्छाइयाँ प्रकाश में प्रकट की जा सकती हैं और लोग उन्हें ग्रहण करते हैं। अन्धकार का हमला प्रकाश पर नहीं होता, प्रकाश का ही हमला अन्धकार पर होता है। इसी तरह बुराई का हमला भी भलाई पर नहीं हो सकता। अगर वह होता है,

तो छिपे तौर पर होता है। हमेशा भलाई का हमला बुराई पर होता नया आया है।

सज्जनों के कर्तव्य

लोग अगर यह विचार समझेंगे, तो वे कभी निराश न होंगे। लोग पूछेंगे कि अगर भलाई की चलती है और बुराई की ताकत नहीं है, तो दुनियाँ में तो बुराई की ही बहुत चलती दीखती है, इसका क्या कारण है? वह बुराई लोगों में बाहर से आती है। उसके लिए परिस्थिति में परिवर्तन लाना पड़ेगा। यह सारा प्रयत्न भले लोगों को करना होगा। भले लोगों को तिहरा प्रयत्न करना होगा। पहले तो वे अपने चित्त का परीक्षण कर निज की भलाई बढ़ायें। उन्हें यह न लगे कि हम भले हैं। हममें क्या बुराई है? हरएक में कुछ-न-कुछ अवगुण छिपे ही रहते हैं, उन्हें ढूँढ़ कर वहाँ से हटाना चाहिए। व्यक्तिगत आत्मशुद्धि का यह कार्य भले लोगों को सतत करना चाहिए। दूसरे, वे सब भले लोगों को इकट्ठा करें। आज भले लोग अकेले-अकेले काम करते हैं। अपना-अपना विचार सोचते और दूसरे भले सज्जन के साथ सहयोग नहीं करते। उनमें थोड़ा विचार-भेद भी होता है। और उसे महत्त्व देते हुए वे अलग-अलग काम करते हैं। इसलिए उनकी ताकत इकट्ठी नहीं होती। उनके बीच अनेक संप्रदाय बनते हैं।

सोचने की बात है कि भक्तों के अलग-अलग संप्रदाय बनते हैं और अभक्त सब इकट्ठा रहते हैं। उन सबका समूह है। ये भक्त अलग-अलग संप्रदाय में बँटे हुए हैं। इस्लाम धर्म नास्तिकता नहीं मानता। फिर भी ये सारे लोग इकट्ठा होकर नास्तिकता पर हमला नहीं करते, क्योंकि इनकी आपस में बनती नहीं। अल्लाहमियाँ का नाम लेनेवाला, विष्णु भगवान का नाम नहीं लेगा। विष्णु का नाम लेनेवाला शिव के भक्त से एकरूप न होगा। ईसाई के यहाँ अल्ला, विष्णु, शिव कोई नहीं चलता, उसका स्वर्ग में रहनेवाला अलग ही परमेश्वर है, जो सातवें आसमान में रहता है, वे उन्हीं की भक्ति करेंगे। ये सारे आस्तिक बँटे रहते हैं और कुल नास्तिक लोग एक हो जाते हैं। पुण्यवान्

लोग अलग-अलग रहते हैं और पापी लोग इकट्ठे हो जाते हैं। इससे काम न चलेगा। इसलिए पुण्यवान् लोगों को सामूहिक शक्ति प्रकट करनी चाहिये।

सारांश, प्रथमतः तो उनके हृदय में भी कुछ-न-कुछ बुराइयाँ छिपी हैं, जिन्हें दूर करना चाहिए। उसके बाद दूसरे सज्जनों के साथ एक रूप होकर सामूहिक सज्जनता बनानी चाहिये। वे इस तरह का समूह नहीं बनाते, इसका कारण यही है कि उनके हृदय में बुराई पड़ी है। इसलिए हमने पहले अपनी बुराई देखकर बाद में दूसरे के साथ एकरूप होने के लिए कहा है। वे पुण्यवान्, धार्मिक और आस्तिक तो कहलाते हैं लेकिन अपने मन में अहंकार रखते हैं। यही बुराई है। जो सज्जन दूसरे सज्जन के साथ एकरूप नहीं हो सकता, वह पूर्ण रूप में सज्जन नहीं। उसमें अहकार ही बड़ी दुर्जनता है। इसलिये पहले उन्हें अपनी सज्जनता पूर्ण करनी चाहिये। और बाद में सज्जनों के साथ एकरूप होकर सामूहिक काम करना चाहिये।

परिस्थिति में परिवर्तन करने की हिम्मत

तीसरी बात यह है कि उन्हें समाज की रचना में बदल करने की हिम्मत करनी चाहिये। समाज की आज की रचना कायम रखकर अगर भला काम करें, तो सारा भला काम खतम हो जाता है। खारे पानी से भरे समुद्र में दो-चार बोतल शहद डालने से वह मीठा नहीं बनता। यही हालत उन सज्जनों की होती है। आज के सारे समाज में वे अपनी मिठास डालना चाहते हैं, लेकिन उससे कुछ नहीं होता। लोग इधर शराब, सिगरेट, बीड़ी पी रहे हैं। व्यभिचार, अत्याचार होता है और लोग बीमार पड़ते हैं, तो वे सज्जन डाक्टर बनकर औषध देते चले जाते हैं। बीमार दुःखी होता ही रहता है, आखिर वह मर जाता है, तभी उसका छुटकारा होता है। किन्तु डाक्टर समाज की स्थिति में कोई फर्क करने का प्रयत्न नहीं करते। लोग ज्यादा खायेंगे, तो हम नहीं समझाते कि कम खाना चाहिये। परन्तु उनके बीमार पड़ते ही दयालु बनकर सेवा करने लगते हैं। इस सेवा से समाज में कोई फर्क नहीं पड़ता।

पुराने वैद्य इतना तो करते थे कि बीमारों को कुछ मुद्दत का पथ्य देते थे।

औषध देने के पहले परहेज रखने की बात करते थे कि मिर्च-मसाला, शक्कर आदि न खाना होगा, बीड़ी-सिगरेट छोड़ना होगा, तभी औषध का गुण होगा, नहीं तो औषध का कुछ असर नहीं होगा। किंतु आज के डाक्टर के पास रोगी जायगा, तो वह पूछेगा कि क्या हुआ है। वह कहेगा कि छाती दुखती है। ठीक है, औषध देता हूँ, खाने-पीने में कोई परहेज नहीं, सब कुछ खाओ, जरा इतना करो कि ज्यादा मत खाना। यह है आधुनिक डाक्टर। उसे डर लगता है कि परहेज की बात करूँगा तो वह औषध लेने को न आयेगा। यह तो रोगी को भी अच्छा लगता है। फलतः डाक्टर, रोग और रोगी, तीनों की दोस्ती बन जाती है। वह रोग कायम रहेगा, रोगी कायम रहेगा और डाक्टर भी सदा का डाक्टर रहेगा—वह उसका 'फैमिली डाक्टर' बन जायगा। वह सदा औषध देगा और घर में कायम के लिए बीमारी रहेगी। पहले जैसे अपने घर में एक जगह भगवान् की मूर्ति रखते थे, वैसे ही घर में एक कोने में बराबर बोतल रहेगी। उसमें कभी लाल पानी रहेगा, तो कभी हरा। जब घरवाले लोग मर जायेंगे, तभी घर में से बोतल हटेगी।

सारांश, आज की समाज-रचना में फर्क करने की हिम्मत ही किसी में नहीं है। आज के समाज में जो दुःखी हैं उनके सामने दया दिखाते हैं, कोई भी माँगने आया, तो उन्हें बहुत दुःख होगा और दो मुट्ठी धान भी दे देंगे। लेकिन ऐसी कोई योजना न बनायेंगे कि उसे फिर से कभी माँगना ही न पड़े। वे क्यों भीख माँगते हैं, इसके बारे में कभी न सोचेंगे। परिस्थिति बदलने की हिम्मत और कल्पना ही वे नहीं कर सकते।

भूदान में तेहरा कार्य

भूदानयज्ञ में यह तेहरा काम हमें करना है। पहला, सर्वोदय विचार मानने-वाले सज्जनों को अपने हृदय की शुद्धि करनी है। दूसरा, सब लोगों को मिलकर काम करना है। तीसरा, समाज की आज की रचना पर हमला करना है—समाज-रचना बदलनी है। आज एक भाई हमसे मिलने के लिए आये थे। कहने लगे कि

हम आपको मकान बनाने के लिए जमीन दान देना चाहते हैं। मैंने पूछा कि 'यह बात तो अच्छी है, लेकिन मकान कौन बनायेगा?' तो कहने लगे : 'आप के संपत्तिदान में से बनाइये।' आज गाँव-गाँव में ऐसा ही चल रहा है। कोई सरकारी अधिकारी आयेगा, तो गांववाले कहेंगे कि हम आप को जमीन देते हैं, आप एक स्कूल बनवा दीजिये और चलाइये। या यह कहेंगे कि हम स्कूल बना देंगे, आप चलाइये। सारांश अपने गांव के लिए योजना हम ही बनायेंगे और हम ही उसे अमल में लायेंगे, यह सोचने की हिम्मत ही किसी में नहीं है। भूदान में कोई थोड़ी जमीन दे दे, तो इतने से क्रान्ति न होगी। वह तो व्यक्तिगत दान की कीमत रखता है, परंतु समाज-रचना बदलने के लिए सबको सामूहिक रूप से ही काम करना होगा।

भेदक्षय से पीड़ित समाज

हिन्दुस्तान में दान-धर्म कम नहीं होते, लेकिन वे सारे पानी के समुद्र में शहद की एक बोतल डालने जैसे हैं। इस तरह ये छोटे-छोटे दानपुण्य तो समाज में कितने ही जीर्ण हो गये। क्षयरोगी शरीर को दूसरा कुछ इलाज नहीं है, उसे जितना खिलाते हैं, वह सारा खतम होता है। उसको फिर-फिर से खिलाया करो, वह उसका इलाज नहीं, उसका इलाज होना चाहिए। हमारे समाज में भी यह क्षयरोग लागू है। हम एक-दूसरे के साथ मिलजुल कर काम ही नहीं करते। मेरा घर, मेरा लड़का, मैं और मेरे ने ही सारे समाज को जीर्ण कर डाला है। एक गाँव में एक साथ रहेंगे, परंतु एक घर सुखी होगा, तो दूसरा दुखी। दोनों एक साथ सुखी न होंगे। सुखी घरवाला दुःखी पड़ोसी की चिंता न करेगा और दुःखी घरवाला सुखी घरवाले का मत्सर करेगा। दोनों मिलकर एक-दूसरे की चिंता न करेंगे, तो फिर गाँव के बारे में कैसे सोचेंगे?

हमारे देश में भी यह क्षयरोग है। उसमें अनेक संप्रदाय और पंथ हैं। अनेक जातियाँ हैं और आजकल ये (राजनैतिक) पक्ष भी आ गये हैं। यह भी एक क्षयरोग है। इसका उत्तम इलाज होना ही चाहिए।

आजकल जो उठा, तो उत्पादन बढ़ाने की बात करता है। स्वराज्य के बाद

ही यह कहते हैं सो नहीं, उसके पहले भी 'ग्रो मोर फूड' चलता था। उत्पादन बढ़ाने से यह क्षयरोग न मिटेगा। उत्पादन बढ़ाओगे और क्षयरोग कायम रखोगे, तो रोगी दो दिन ज्यादा जियेगा। जल्दी मरता तो बेचारा दुःख से जल्दी छूटता! सारांश, जो समझते हैं कि भारत की मुख्य समस्या 'अन्नोत्पत्ति' है, वे भारत को समझे ही नहीं हैं। भारत की मुख्य समस्या तो ये अनंत भेद हैं, भारत को यह 'भेदक्षय' हुआ है।

प्रेम का दंड

भूदान में थोड़ी-थोड़ी जमीन मिले, तो शुरूआत में ठीक है, लेकिन यह भूदान का ढंग नहीं है। भूदान का ढंग तो यह है कि गाँव की समस्या हाथ में लेकर गाँव में कोई भूमिहीन न रहे। गाँव में जितने भूमिहीन हैं, उन सबको भूमि देने की जिम्मेवारी सबको उठानी चाहिए। जैसे पहले गाँव में कोई बदमाशी करता था और सरकार उसे ढूंढ न पाती थी, तो गाँव पर एक सामूहिक जुर्माना लगाती थी। वैसे ही आपके गाँव में भेदासुर बढ़ाने के अपराध में आपको २०० एकड़ जमीन प्रेम से दान देने का दंड है। गाँव में १२०० एकड़ जमीन है, तो उसका छठा हिस्सा २०० एकड़ जमीन वसूल होनी चाहिए। यह सरकार का दंड नहीं, प्रेम का और समझदारी का दंड है। करीब-करीब गाँव में से सब जमीनवालों को जमीन देनी होगी। सबको मिलकर सब भूमिहीनों को जमीन मिल जाय, उतनी जमीन देनी चाहिए। तभी भेदासुर का हनन होगा। फिर गाँववाले मिलजुल कर काम करेंगे और गाँव की समस्या के बारे में सब एक साथ बैठकर सोचेंगे। इस तरह आदत हो जायगी, तो 'ग्रामराज्य' और 'सर्वोदय' होगा। क्षयरोग मिट जायगा और व्यक्ति, समाज तथा देश को पुष्टि-लाभ होगा।

चेल्लैकोविल (कोयम्बतूर)
३१-१०-'५६

उप-शीर्षकों का अनुक्रम